शक्ति-सङ्गम तन्त्र

काली-खण्ड

•

श्री काली अनादि विद्या श्रीमहा-
दक्षिणेश्वरी हैं। महा प्रलय के होने पर ये
शिव-शक्ति-मय
रहती हैं। उस
विष्णु और
रूप से ना
ब्रह्माण्ड में
भूमि में
चारों वेद
के अन्तर्गत

Tantra

शक्ति-संगम-तन्त्र

(काली-खण्ड)

हिन्दी सारांश

सम्पादक व अनुवादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०,

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग—६

प्रकाशक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग
प्रयाग—२११००६

प्रथम संस्करण
माघ २०३९

मूल्य २५-०० रु०
सजिल्द मूल्य ३५-०० रु०
सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक
परा-वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग
प्रयाग—२११००६

अनुक्रमणिका

(हिन्दी सारांश)

पहला पटल : ग्रन्थ का प्रवर्त्तन	१
दूसरा पटल : काल-नित्या की विधि	५
तीसरा पटल : आठ अष्टकों का निरूपण	८
चतुर्थ पटल : पात्रों का निर्णय	१२
पाँचवाँ पटल : ऋणि-धनि-चक्र का निर्णय	१६
छठा पटल : नामों का विवरण	१९
सातवाँ पटल : कादि दीक्षा का विवरण	२२
आठवाँ पटल : प्रदोष की विधि	२३
नवाँ पटल : मेरु का संसाधन	२६
दसवाँ पटल : मेरु-वर्णन	२७
ग्यारहवाँ पटल : सिद्ध-मत का रहस्य	२८
बारहवाँ पटल : सिद्ध प्रयोग	३०
तेरहवाँ पटल : वीर-शक्ति आदि का निर्णय	३३
चौदहवाँ पटल : ताश-कल्प की अद्भुत सिद्धियाँ	३५
पन्द्रहवाँ पटल : मधुमती-सिद्धि की विधि	३७
सोलहवाँ पटल : क्रम-दीक्षा का विवेचन	३९
सत्रहवाँ पटल : सूत्र का निर्णय	४०
अठारहवाँ पटल : क्रम-दीक्षा में पवित्रारोपण	४२
उन्नीसवाँ पटल : उपाकर्म, पवित्रारोपण और रक्षा की विधि	४४
बीसवाँ पटल : मदनारोपण	४६
इक्कीसवाँ पटल : कामधेनु आदि योग	४८
उपसंहार	५१

ਸਿਫ਼ਾਰਸ਼	ਨੰਬਰ
ਸਿਫ਼ਾਰਸ਼ ਕਰਨਾ : ਕਿਰਿਆ ਕਿਸਮ	੨੮
ਸੁਖਾਲਾ ਕਿਸਮ : ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਣ	੨੯
ਸੁਖਾਲਾ ਕਿਸਮ : ਕਿਰਿਆ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਣ, ਹੋਰਨਾਂ ਸ਼ਬਦਾਂ ਨਾਲ ਜੋੜੀ ਬਣਾਉਣ ਵਾਲੇ	੨੯
ਸੁਣਾਉਣਾ ਕਿਸਮ : ਸਕਰਮਕ ਪ੍ਰੇਰਨਾ ਕਿਰਿਆ	੨੭
ਸੁਣਾਉਣਾ ਕਿਸਮ : ਕਰਮ-ਪ੍ਰੇਰਨਾ ਕਿਰਿਆ	੨੭
ਸੁਣੀ ਕਿਸਮ : ਇਸਤਰੀ ਲਿੰਗ	੨੫
ਸੁਣੀ ਕਿਸਮ : ਇਸਤਰੀ-ਜਾਤੀ ਦਾ ਨਾਂਵ	੨੫
ਸੁਣੀ-ਸੁਣਾਈ ਕਿਸਮ : ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਣ	੨੬
ਸੁਤੰਤਰ ਕਿਸਮ : ਅਵਿਕਾਰੀ ਸ਼ਬਦ	੨੭
ਸੁਤੰਤਰ ਕਿਸਮ : ਸੁਤੰਤਰ ਜੋੜੀ	੨੭
ਸੁਤੰਤਰ ਕਿਸਮ : ਸੁਤੰਤਰ ਜੋੜੀ ਦਾ ਇੱਕ ਸ਼ਬਦ	੨੭
ਸੁਤੰਤਰ ਕਿਸਮ : ਸੁਤੰਤਰ ਜੋੜੀ ਦਾ ਦੂਜਾ ਸ਼ਬਦ	੨੭
ਸੁਤੰਤਰ ਕਿਸਮ : ਸੁਤੰਤਰ ਜੋੜੀ ਦਾ ਪਹਿਲ

हिन्दी शक्ति-संगम-तन्त्र

(काली-खण्ड)

पहला पटल : ग्रन्थ का प्रवर्त्तन

श्री देवी ने पूछा—हे देवाधिदेव शङ्कर ! मैंने तन्त्रार्णव, तन्त्रराज आदि असंख्य तन्त्रों को आपसे सुन लिया है किन्तु 'शक्ति-सङ्गम' नामक श्रेष्ठ तन्त्र को आपने मुझे नहीं सुनाया है। चार खण्डों से युक्त कलियुग में सिद्धि देनेवाले उस तन्त्र को मुझे सुनाइये।

श्रीशिव बोले—'शक्ति-सङ्गम' नामक वृहत् तन्त्र दिव्यौघ द्वारा रचित है और चार खण्डों से युक्त है। पहला काली, दूसरा तारा, तीसरा सुन्दरी और चौथा छिन्नमस्ता-रूप है। सम्प्रदाय के हित के लिये, ब्राह्मणत्व की रक्षा करने के लिये और मन्त्रशास्त्र की सिद्धि के लिये इसका आविर्भाव हुआ है।

श्री काली अनादि विद्या श्रीमहा-दक्षिणेश्वरी हैं। वही परमा श्रीमहा-तारा हैं। ये षट्-शाम्भवेश्वरी हैं और वाणी से अतीत परा कला हैं। महा-प्रलय के होने पर ये शिव-शक्ति-मय एक देह से सदा स्थित रहती हैं। उस श्मशान में अनन्त ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तथा इन्द्रादि प्रेत-रूप से नाचते-गाते रहते हैं। वे चित्-स्वरूप को प्राप्त होकर रहते हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में जितने परमाणु हैं, वे सब उस भूमि में चिति-धूलि के रूप में रहते हैं। वहीं चारों वेद और युग शव-रूप में सप्त-प्रेतों के अन्तर्गत विद्यमान रहते हैं। सामरस्य को प्राप्त कर सर्व-स्वरूपा शिवा इसी काल में अपने बिम्ब को देखती है। वह बिम्ब 'माया' रूप है, उसी में मानसिक शिव रहते हैं। सृष्टि के उत्पादन के लिये उन्हें वह पति-रूप में वरण करती है। मन से कल्पनातीत उन आदिनाथ को देखकर महा-शून्य की रचना कर वह अनन्त-युगों तक विपरीत-रति में प्रवृत्त रहती है। उस विपरीत रति में पुरा-काल में एक 'विन्दु' हुआ, जिससे अति लावण्य-वाली एक सुन्दरी उत्पन्न हुई, जो महा-सुन्दरी की मानसी शक्ति—परमा कला थी। उसका नाम 'महा-काली सुन्दरी' कहा जाता है।

उसे देखकर 'महा-काल' मुग्ध हो उठे और 'काली' के प्रति बोलने को उद्यत हुये। विन्दु की ध्वनि से मातृका-वर्ण उत्पन्न हुये। तव से वह 'अक्षरा' हो गई। उस ध्वनि से यह सारा चराचर जगत् व्याप्त हो गया।

काल ने सुन्दरी से कहा—हे परे! महा-प्राण-प्रिये! त्रैलोक्य-सुन्दरि! श्रीशे! कारुण्यामृत-सागरे! देवेशि! महा-घोरे! शिवा-रावे! क्रूर-दंष्ट्रे! करालिनि! ललज्जिह्वे! भीम-नादे!

इस प्रकार के शब्दों को सुन कर निर्गुणा, पर-चण्डिका, अनादि-रूपा, श्रीकाली माया के उत्पादन में तत्पर हुईं। श्री काली की माया से काल मोह में पड़ गये। अनादि सृष्टि को उत्पन्न करने के लिए ब्रह्माण्डों की अनन्तता को क्षण भर में कह दिया गया। इस प्रकार काल की माया को देकर स्वयं अन्तर्धान हो गईं। काल चकित हो उठे कि वह प्रियतमा कहाँ गई और उनका यह उद्‌गार निकल पड़ा कि 'हा-हा, वह प्राण-प्रिया काली कहाँ गई?'

इस प्रकार मोह में पड़कर वे श्मशान में घूमने लगे। उनका चित्त भ्रान्ति में पड़ गया। दर्शन पाने के लिये उन्होंने अनन्त युगों तक तपस्या की किन्तु काली के दर्शन न मिले।

काल मार्ग से भ्रष्ट हो रहे हैं, यह जानकर महा-काली ने 'आक-र्षणा' नामक बुद्धि देकर उन्हें ज्ञान दिया। वर देने में चतुर होने से ही ये 'दक्षिणा' नाम से प्रसिद्ध हैं। आकर्षण-कर्म से मिथुनत्व की प्राप्ति होती है। मार्ग के अभ्यास के लिए सम-रसों की शक्ति काल को मिली। मार्ग के विना गति नहीं होती। उस अभ्यास के फल-स्वरूप काल कुण्डली के ध्यान में तत्पर हुए।

मनुष्यों की कुण्डली साढ़े तीन फेरों की होती है। श्री देवी की कुण्डली स्वेच्छा से गुणित होती। त्रि-गुणा 'श्रीः' है। वेद (चार) गुणा होने पर 'त्रिशक्ति' होती है। चार वर्ण की 'एकजटा' है, जो चारों वेदों की परा ईश्वरी है।

पञ्च-गुणा 'महोग्रा,' षट्-गुणा 'सिद्धि-काली,' सप्त-गुणा अर्थात् सात वर्णवाली 'काल-सुन्दरी,' अष्ट-वर्णा 'भुवनाम्बिका,' नव-गुणा या नवार्णा 'चण्डिकेश्वरी,' दश-गुणा दश-विद्या-स्वरूपिणी 'शक्ति,' रुद्र (एकादश) गुणा 'श्मशान-कालिका,' सूर्य (द्वादश) गुणा 'चण्ड-भैरवी,' काम (त्रयोदश) गुणा 'तारिणी,' चतुर्दश-गुणा 'वशीकरण-

कालिका,' पक्ष (पञ्चदश) गुणा 'महा-पञ्चदशी,' कला (षोडश) गुणा 'श्री महा-षोडशी,' कलातीत (सप्तदश) गुणा 'छिन्नमस्ता,' अष्टादश-गुणा 'महा-मधुमती,' उन्नीस-गुणा 'महा-पद्मावती,' बीस गुणा—बीस अक्षरवाली 'रमा,' २१ गुणा 'काम-सुन्दरी,' २२ गुणा 'दक्षिण-कालिका,' २३ गुणा विश्वेशी, तत्व (२४) गुणा गायत्री, २५ गुणा पञ्चमी सुन्दरी, २६ गुणा शक्ति 'षष्ठी,' २७ गुणा महा-रत्नेश्वरी, २८ गुणा मृत-संजीवनी, २९ गुणा महा-नील-सरस्वती, ३० गुणा वसो-धारा, ३१ गुणा त्रैलोक्य-मोहिनी, ३२ गुणा त्रैलोक्य-विजया, ३३ गुणा कामाख्य-तारिणी, ३४ गुणा अघोरा, ३५ गुणा सङ्गीत-मोहनी, ३६ गुणा वगला, ३७ गुणा अरुन्धती, ३८ गुणा अन्नपूर्णेश्वरी, ३९ गुणा नाकुली, ४० गुणा त्रिकण्टकी, ४१ गुणा राजेश्वरी, ४२ गुणा त्रैलोक्याकर्षिणी, ४३ गुणा राज-राजेश्वरी, ४४ गुणा कुक्कुटी, ४५ गुणा सिद्ध-विद्या, ४६ गुणा श्री मृत्यु-हारिणी, ४७ गुणा महा-भोगवती, ४८ गुणा वासवी, ४९ गुणा फेत्कारी, ५० गुणा महा-श्रीमातृ-सुन्दरी, ५१ गुणा मातृकोत्पत्ति-सुन्दरी कहलाती है।

एक-एक मातृका-वर्ण एक-एक विद्या का प्रकाश होता है। जिस प्रकार कुण्डली स्वेच्छा से कुण्डल बनाकर स्थित है, उसी प्रकार 'अक्षोभ्य'-मुनि-रूपिणी विद्या उत्पन्न हुई है। कुण्डली से 'विद्या' उत्पन्न हुई, उससे पूर्व-अभ्यास के लिये 'बालाम्बा' हुई। पूर्व-अभ्यास के प्रभाव से 'सुन्दरी' का आविर्भाव हुआ। 'सुन्दरी' के सामरस्य से 'काल' को कालत्व मिला। परमा कला 'पञ्चमी'-रूप से शोभायमाना होती है। उसके सङ्गाभ्यास से 'काल' 'महा-कालत्व' को प्राप्त करता है।

जो जिस विद्या का पहले-पहल दर्शन करता है, वह उसका 'ऋषि' कहलाता है। अन्य लोग 'उपासक' कहे जाते हैं। बीजांकुर स्फटिक-वत् है, उससे उत्पन्न 'ब्रह्म' कहा जाता है। वह ब्रह्म काल और काली से युक्त होता है। जब वह वर्णन करने के योग्य होता है, तब वह 'सगुण' होता है। सगुण ब्रह्म का वर्णन सम्भव है। जब उसका वर्णन करना सम्भव नहीं होता, तब वह 'निर्गुण' कहा जाता है।

'वाग्भव' को 'मुख' कहते हैं क्योंकि मुख से उसका उच्चारण होता है। अवर्णनीय ब्रह्म मुख-गोचर नहीं होता। वह वाक्-शक्ति से नियन्त्रित होता है। इससे शक्ति की प्रधानता है। काली माया-शक्ति है,

जो आद्य विम्ब की प्रतिविम्ब है। काली की व्यापक छाया से युक्त होकर महा-काल प्रसिद्ध होते हैं। महा-काल से जो माया प्रकट होती है, वह भुवनेश्वरी कही जाती है। उससे ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता उत्पन्न होते हैं। तव लोकपाल उत्पन्न होते हैं। मातृकाएँ वाग्भवा कही जाती हैं।

शक्ति के विना शिव सूक्ष्म रहता है। उसका कोई नाम-धाम नहीं होता। शक्ति सर्वाद्या और आनन्द-घन-गोचरा है। ब्रह्म-रूप चिदानन्दा वह केवल परब्रह्म है। प्रकृति परमा शक्ति है, विकृति उसकी छाया है। पहली कृष्णा कालिका है, जो आद्या है। दूसरी सुन्दरी रक्त-वर्णा सुन्दरी है। तीसरी वाल-भैरवी, चौथी पञ्चमी विद्या है, जिसका अभ्यास करने से काल-शक्ति आती है। प्रपञ्च की मूल वह शक्ति प्रपंचेशी कही जाती है। उसकी माया से रूप धारण करनेवाला शिव प्रपञ्चात्मा है। शक्ति त्रिनेत्रा और त्रिगुणा है तथा ईश्वर भी त्रिगुणात्मा है। उसकी कृपा से सदाशिव होते हैं।

शक्ति-कोण में अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। १ ब्रह्म-गोल, २ विष्णु-गोल, ३ रुद्र-गोल, ४ लोकेश-गोल, ५ देव-गोल, ६ ऋषि-गोल—इस क्रम से करोड़ों गोल हैं। महत् तत्व से अहङ्कार उत्पन्न हुआ। फिर क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, औषधियाँ, अन्न, प्राण, जीव, जीवात्मा, परमात्मा यह सव चराचर जगत् ब्रह्म-विम्व से प्रकट हुआ। अतः यह चराचर जगत् ब्रह्म ही है। भावना-वश सनातन ब्रह्म-रूप है।

ज्ञान के उत्पन्न होने पर न सुख की अनुभूति होती है, न दुःख की। देहाभिमान के दूर होने पर परमात्म-ज्ञान होता है और परब्रह्म ही केवल रह जाता है। जिस प्रकार जलाने की शक्ति अग्नि में है, उसी प्रकार ब्रह्म जीव-मात्र में सदा रहता है। जिस प्रकार अग्नि की चिनगारियाँ विभिन्न स्थानों को जाती हैं, जल में वे बुझ जाती हैं और घास में वे बढ़ जाती हैं, उसी प्रकार पात्रता से जीव की गति होती है। ज्ञान होने से जय, लाभ, सुख, दुःख आदि की अनुभूति न रहकर केवल परब्रह्म की भावना रहती है। यह ज्ञान 'मन्त्र-योग' से प्रकट होता है।

काम-क्रोधादि से युक्त होने पर जीव दुःख पाता है। मन कहीं है, शिव कहीं है—तो योग कैसे हो? भावना के होने पर मनुष्य महेश्वर देव-स्वरूप होता है। उसके शिथिल होने से वह जीवेश्वर होता है।

दूसरा पटल : काल-नित्या की निधि

उग्रतारा ने कहा—हे अक्षोभ्य ! पहले आपने जो सूचित किया है, उसे मैं सुनना चाहती हूं।

अक्षोभ्य बोले—हे शिवे ! अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डों की नायिका नील-शारदा हैं। उनके बाद ब्रह्म-गोल की द्रष्टा सुन्दरी और भूगोल की भुवना हैं। भूगोल घटाकार है और दो ध्रुवों से युक्त है। ब्रह्म-गोल छत्राकार है।

परमाणु, अणु, द्वयणुक, त्र्यणुक, लव, त्रुटि, कला, काष्ठा, निमेष, श्वास, क्षण, पल, साठ नाड़ियाँ, घटिका, मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वत्सर, युग और चतुरात्मक प्रलय—ये काल-विभाग हैं। चार युगों का महा-युग होता है और सात महायुगों का एक मनु। चौदह महा-युगों के लिए चौदह मनु निर्दिष्ट हैं। उसी प्रकार १४ इन्द्र कहे हैं। एक हजार चतुर्युगों का ब्रह्मा-दिवस होता है, उतने ही की रात्रि। इस प्रकार के सौ वर्षों की आयु ब्रह्मा की कही है। ब्रह्मा के दश सहस्र दिनों का एक दिन विष्णु का कहा गया है। उसी प्रकार उनके पक्ष, मास, वर्ष आदि को समझना चाहिए। ऐसे दस सहर्ष वर्षों की आयु विष्णु की कही है। वैसे लक्ष वर्षों की आयु शिव की और उससे दशः अधिक आयु ईश्वर तथा सदाशिव की है।

स्वराट् चक्र, विराट् चक्र और सर्व-राट् चक्र के बाद शून्य है। शून्य के परे श्रीमहासुन्दरी-कला है, जो राज-राजेशी ब्रह्माण्ड-नायिका हैं। उनके बाद महा-शून्या तारा हैं। इसी प्रकार महा-दक्षिण-कालिका शून्य को व्याप्त कर रहती हैं।

आणव्य, कार्मण, माया, प्रकृति और अहंकार—ये पाँच हैं। इसी प्रकार सृष्टि, स्थिति, लय, प्रधान और अनुग्रह हैं। जीव आणव्य हैं। ब्रह्मा-विष्णु कार्मण, रुद्र माया-मूल और ईश्वर प्राकृत हैं। सदाशिव अहङ्कार है। पर-शम्भु में कुछ नहीं है। माया द्वारा पर-शम्भु के पञ्च-कृत्य—सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रह कहे गये हैं।

वर्णाध्वा, मात्राध्वा, तत्वाध्वा, मन्त्राध्वा, भुवनाध्वा और कला-ध्वा—ये ऋतु-संज्ञक हैं। ये अध्वा तीन प्रकार के हैं—दैहिक, आधि-भौतिक और आधिदैविक।

लङ्का-पुरी मध्य में है। उसके दक्षिण में सात सागर हैं। अठारह द्वीप हैं। अन्त में नरक हैं, जिनके मध्य में भोगवती-पुरी है। गन्धमादन पर्वत के बगल में हिमालय है। उसके उत्तर में स्वर्ग है। ब्रह्माण्ड के दक्षिण और उत्तर में दो ध्रुव हैं। नीचे सात पाताल हैं और ऊपर सात लोक हैं। इस प्रकार तीन लोक हैं। ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र के धाम हैं, उनके मध्य में किन्नर आदि हैं। तब ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश्वर और सदाशिव के लोक कहे हैं। फिर दण्डिनी-नाथ का लोक है। वहाँ मन्त्रिण्यम्बा का गृह सात प्राकारों से शोभित है। तब परापर, परात्पर, परातीता, चित्परा के बाद उनके ऊपर सातवाँ श्रीपुर है, जो कि कोटि-योजन विस्तृत है। तारिणी-पुर कोटि-लक्ष-योजन विस्तृत है, नौ प्राकारों से शोभित है। वहाँ काल-चक्र है और काल-नित्या के पुर में श्रीचक्र है। उसके विन्दु में निर्वाण-पुर है, जिसके विन्दु में शाम्भव-पुर है। उसके विन्दु में राजस शान्त्यतीत कला-युक्त और चार शवों से युक्त पर्यङ्क पर सदाशिव हैं। वहाँ कामकला से परे महा-कामेश्वर हैं। इस पर्यङ्क पर शान्त्यतीता परा कला—नवात्मकेश्वरी अम्बा हैं, जो कोटि ब्रह्माण्डों की नायिका हैं। कला-प्राकार से युक्त श्मशान में प्रत्यालीढ-पद नामक तारिणी-पुर है। श्री दक्षिणा-श्मशान आठ श्मशानों से युक्त है, सौ द्वार हैं। वहीं सात प्रेतों पर दक्षिणा काली विराजती हैं। उनकी आज्ञा से धनुर्वेद सुन्दरी के द्वार पर स्थित रहते हैं। सुन्दरी के द्वार पर चारों वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वण हैं तथा छहो अङ्ग--शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष और निरुक्त हैं। छहों दर्शन, छहों आम्नाय और छहों शाम्भव हैं। ये कादि और हादि के क्रम से दो प्रकार के हैं। ये दोनों १८-१८ प्रकार के हैं। चार उप-वेद हैं—ऋग्वेद का धनुर्वेद, यजुर्वेद का आयुर्वेद, सामवेद का गन्धर्व-वेद और अथर्वण का निगम उप-वेद है। निगम पचास हैं, जो कालिका के द्वार पर हैं।

ब्राह्मणों के चार पद और क्षत्रियों के तीन पद हैं। अथर्वण में क्षत्रियों का अधिकार नहीं है। ब्राह्मणों के द्वारा वे उसके कर्माचरण को प्राप्त करते हैं।

तारा के छः दर्शन हैं—१ शाक्त, २ शैव, ३ गाणपत, ४ सौर, ५ वैष्णव और ६ बौद्ध। त्रिपुरा के दर्शन हैं—१ वैदिक, २ सौर, ३ गाणपत्य, ४ बौद्ध, ५ चान्द्र, ६ स्वायम्भुव, ७ जैन, ८ चीन, ९ नील।

काली के तीन दर्शन हैं। अठारह पुराण व उप-पुराण कहे हैं—१ एक-वीरा, २ त्वरिता, ३ कालिका, ४ सुन्दरी, ५ छिन्ना, ६ मातङ्गिनी ७ गणेश, ८ अर्क, ९ वगला, १० मालिनी, ११ तारा, १२ त्रिजटा, १३ अक्षोभ्य, १४ कालका, १५ वटुक, १६ सुन्दर, १७ शम्भु, १८ शाम्भव।

वेद श्रुति हैं, उपवेद स्मृति। चौंसठ कलाएँ हैं और चौंसठ सिद्धियाँ हैं। बावन उपनिषद् हैं, जो अन्य उपदिष्टों को मिला कर ६४ होते हैं। सूक्त तीन सहस्र हैं और ताण्डव सौ हैं। कौशल तीन सौ, कौमुदी १६, दीपिका ६४, प्रकाश ७०, सांख्यायन ५०, सूर ५, वार्तिक २, तन्त्रराज २ और नित्या-षोडश तन्त्र ८ खण्डवाला है। हादि-कादि-मत से हादि-कादि-क्रमानुसार पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को मिलाकर विराट् मत होता है। 'शक्ति-सङ्गम' नामक तन्त्रराज कहात्मक है। चार खण्डों से युक्त यह श्रेष्ठ तन्त्रराज है। इस प्रकार आम्नाय में तन्त्र हैं।

अनेक ब्रह्माण्डों के मध्य में सूक्ष्म ब्रह्माण्ड आधार-रूप में है। उसके ऊपर ब्रह्माण्ड-कलिका की आकृति है। जम्बुद्वीप में उसका प्रकाश पड़ता है, अतः वह द्वीपेश्वर है। देह-मात्र से विश्व-रूप का दर्शन मिलता है।

मनुष्य की साठ नाड़ियों से दिवा-रात्रि होती हैं। पितरों के दो मास हैं। सिद्धों की दिवा-रात्रि ऋतुएँ हैं। देवों के दो अयन होते हैं, दक्षिणायन रात्रि है और उत्तरायण दिन।

अनन्त ब्रह्माण्ड स्थूल और सूक्ष्म-भेद से दो प्रकार का कहा है। उसमें 'काल-नित्या' सदा व्याप्त रहती है, जो आदि परमाणु-रूपिणी है, पल और घटी के मध्य में स्थित रहती है। सात वासर और मुहूर्त्त-रूप पक्ष कहे हैं। दो पक्षों से मास होता है, दो मास की ऋतु, तीन ऋतुओं का अयन और दो अयनों का हायन होता है। परमाणु से लेकर हायन तक प्रत्येक को व्याप्त करके 'काल-नित्या' रहती है।

मुहूर्त्त में दो नाड़ियाँ कही हैं। मुख्य मान में ढाई नाड़ियाँ होती हैं। दिन-सप्तक में वासर होते हैं। दिन पञ्चदशान्त, मासान्तक, ऋत्वन्त, अयनान्त और हायनान्त होते हैं। यह स्थूल मान कहा गया है। अब पारायण का क्रम सुनो—

दिन से, वार से, पक्ष से, मास से, ३६ दिनों से, स्थूल और सूक्ष्म के भेद से राशि, लग्नादि होते हैं। ग्रहादि सभी इन्हीं के अनु-

सार होते हैं। जो संक्रम होता है, वही राशि प्रातःकाल होती है। इसे सूक्ष्म राशि कहते है, जिसमें लग्न पल-मात्र रहती है। स्थूल में साठ नाड़ियों से रहती है।

मास पाँच प्रकार के हैं—१ चान्द्र, २ सावन, ३ नाक्षत्र, ४ सौर, ५ बार्हस्पत्य। पूर्णिमा से पूर्णिमा तक 'चान्द्र' मास होता है। अमावस्या से अमा तक 'सावन' मास कहा है। ऋक्ष से ऋक्ष तक 'नाक्षत्र,' संक्रमान्त 'सौर' और छत्तीस दिनों का 'बार्हस्पत्य मास' होता है। सोलह नित्याओं के द्वारा १६ मास होते हैं। इस क्रम में पक्ष १८ दिनों का कहा है।

पूजा-क्रम में १६ नित्यायें कही हैं। 'शान्ति' १७ वीं और उसके बाद 'शान्त्यतीता' १८ वीं नित्या बताई है। नित्या-दिवस के मण्डल में कभी ह्रास या वृद्धि नहीं होती। उदयार्ण के क्रम से पूरा दिन होता है। चौथा 'सौर' मास ५० दिनों का होता है।

तीसरा पटल : आठ अष्टकों का निरूपण

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! मैं भूतादि-युगों का विवरण सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव बोले—ब्रह्मा के जन्म अर्थात् सृष्टि के आदि से आरम्भ करके वर्तमान दिन तक जब दिनों की संख्या ली जाती है, तो उसे 'सिद्धान्त अहर्गण' कहते हैं। जब कलि-युग के आरम्भिक दिन से वर्तमान दिन तक की संख्या ली जाती है, तो उसे 'तान्त्रिक अहर्गण' कहते हैं और जब किसी युग के आदि से शक-सम्वत् के आज के दिन तक की संख्या ली जाती है, तो उसे 'करण अहर्गण' कहते हैं।

[अहर्गण—दिनों का समूह, सिद्धान्त—ज्योतिष-ग्रन्थों के अनुसार, करण—ज्योतिष के 'करण' नामक ग्रन्थों के अनुसार।]

प्रत्येक दिन में ३६ वर्ण होते हैं। १६ नामों का एक वर्ण-युग होता है। एक वर्ण-युग में ५७६ दिन होते हैं। ३६ वर्ण-युगों का एक महा-युग होता है। एक महा-युग में २०७३६ दिन या ५७ वर्ष ७ मास ६ दिन होते हैं।

[३६० दिनों का एक वर्ष होता है। अतः ३६० से २०७३६ में भाग देने से ५७ वर्ष निकलते हैं। शेष २१६ दिन बचते हैं, जिनमें ३० (एक मास की दिनों की संख्या) से भाग देने से ७ मास निकलते हैं और शेष ६ दिन बचते हैं]

उक्त वर्षों का एक पर्याय होता है। कलि-युग में कुल ७६११ पर्याय होते हैं। ❀

देवी बोलीं—हे देवेश ! मैं पीठों का विवरण सुनना चाहती हूँ, जिसके जानने मात्र से साधक को सिद्धि प्राप्त होती है।

शिव ने कहा—पञ्चायतन-मार्ग से 'पीठ' पाँच प्रकार के कहे गए हैं। मेरु-कैलास मार्ग से उसके सात भेद बताए हैं। देवी के पीठ सिंह से, शैव-पीठ नंदी (बैल) से, वैष्णव पीठ गरुड़ से, गणेश-पीठ गज (हाथी) से और सूर्य-पीठ हंस से सुशोभित रहते हैं। काली-पीठ सप्त-प्रेतों से युक्त रहता है। सुन्दरी-पीठ के नौ सोपान होते है और प्रत्येक सोपान क्रमशः एक-एक अंगुल ऊँचा होता है।

चैत्र से फाल्गुन मास तक (१२ मासों में २-२ मास की) वसन्त से आरम्भ कर हेमन्त तक छः ऋतुएँ मैंने बताई हैं। इस सम्बन्ध में शाम्भव क्रम यह है कि कृष्ण और शुक्ल पक्ष के योग से दो मास में ६० दिन होते हैं। इस प्रकार ६० दिन × ६ ऋतु = ३६० रश्मियाँ होती हैं।

शक्ति के बिना हे महेशानि ! जो पूजन करता है, उसका अनिष्ट होता है। शक्ति और शिव की एकात्मता प्राप्त कर ही पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य साक्षात् शिव-रूप होता है, इसमें सन्देह नहीं। दिव्य-भाव का फल पाने के लिये शक्ति-पूजन करना चाहिए।

हे शिवे ! अब पात्र-भेद के सम्बन्ध में सुनो। चौबीस-संख्यक पात्र सर्वोत्तम होते हैं। सोलह पात्रों का होना मध्य श्रेणी का माना गया है। न्यूनतम नौ संख्यक पात्र कहे गये हैं। सामान्य कर्म में पाँच पात्र पर्याप्त हैं। केरल-मत में जल-पात्र दाईं ओर बताया है।

हे पार्वति ! अब प्रणव के सम्बन्ध में कहूँगा। प्रणव पाँच कलाओं से युक्त है—१ अकार, २ उकार, ३ मकार, ४ नाद और ५ विन्दु। पाँच प्रेत—१ ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ रुद्र, ४ ईश्वर और ५ सदाशिव इस प्रणव के आश्रित रहते हैं।

❀ ऊपर के विवरण में कुछ त्रुटि प्रतीत होती है। सम्बन्ध कुछ ऐसा होना चाहिए—

३६ वर्ष = १ दिन, ३६ दिन = १ मास (वृहस्पति-मास), १६ मास = १ युग, १ युग = ३६ × १६ = ५७६ दिन, ३६ युग = १ महा-युग, २०७३६ दिन = ५७ वर्ष, ७ मास, ६ दिन = १ पर्याय।

प्रणव की सात कलाएँ भी होती हैं—१ अकार, २ उकार, ३ मकार, ४ नाद, ५ विन्दु, ६ नादातीता और ७ विन्द्वतीता। इनमें सातवीं कला 'शाम्भवी' कही गई है। इन सातों को शक्ति की सात कलाएँ (कला-सप्तक) भी कहते हैं।

कला के सात भेद हैं— १ परा, २ परात्परा, ३ परातीता, ४ चित्-परा, ५ चित्-परात्परा, ६ चित्परातीता, ७ सर्वातीता।

कला-सप्तक का अन्य रूप है—१ ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ रुद्र, ४ ईश्वर, ५ सदाशिव, ६ शान्ति और ७ शान्त्यतीता। ब्रह्मादि चार पाद हैं और सदाशिव कशिपु-स्वरूप है। कामेश वहाँ आच्छादन-रूप हैं, जिन पर सुन्दरी कला विराजिता है। सात कलाओं से युक्त प्रणव ही सुन्दरी का स्वरूप है।

'काम-कला' हंस-रूपा है। उसे बताता हूँ। हकार से श्वास बाहर जाती है और सकार से पुनः भीतर जाती है। इन दोनों का लोप होने से 'काम-कला' होती है। 'सोऽहम्' ही 'काम-कला' या प्रणव के रूप में निर्दिष्ट हुआ है। 'सोऽहम्' में ही प्रणव परिनिष्ठित है।

'परा-प्रासाद-विद्या' का भी ऐसा ही वर्णन किया गया है। सकार और हकार उसके दो पक्ष हैं। दो रकारों के योग से 'स'कार की उत्पत्ति होती है और ईकार, एकार के योग से 'ह' कार की। इस प्रकार 'परा-प्रासाद-विद्या' चतुष्पक्ष-स्वरूपिणी कही गई है। तदनुसार परा-प्रासाद-देवता चतुश्चरण-रूपा है।

हकार और सकार को अर्द्ध-नारीश्वर कहा गया है। अब काम-कला के रूप का वर्णन सुनो—विन्दु सूर्य-स्वरूप मुख है, उसके नीचे अग्नि और चन्द्र-स्वरूप दो कुच हैं, हकारार्द्ध-कला-रूप, योनि-चक्र को जाने। हे महेशानि! अधोविन्दु को 'परा'-रूप कहा है। योनि-विन्दु 'परापरा'-रूप है और कुच-विन्दु 'परापरातीता' कहा गया है। 'चित्परा' द्वितीय कुच-विन्दु है और 'चित्-परातीत' मुख में है। 'सर्वातीता' बीज के ऊपर चण्ड-रूप में अवस्थिता है। ईकारोर्ध्व-कला वाणी के अतीत कला है।

श्री शिव बोले—अब गृह-वास्तु को बताऊँगा, जिससे निवास-स्थान देव-मय होता है। ईशान से निऋति-कोण तक 'वास्तु-सर्प' कहा गया है। वायु से अग्नि-कोण तक सर्प के दो हाथ होते हैं। पैत्री दिशा में दोनों पैर और ईशान-कोण में शिर है। इस 'सर्प-गात्र' (शरीर) को जानकर कर्म करना चाहिये। शिर पर चोट होने से मृत्यु होती

है और पूंछ में घात होने से सर्वार्थ का नाश होता है। उसकी गोद में कार्य करने से सभी उद्देश्य सिद्ध होते हैं। 'चल' और 'स्थिर' भेद से दो प्रकार 'वास्तु' के कहे हैं। नैऋत्य कोण में गृह-स्वामी को 'वास्तु-सर्प' का पूजन करना चाहिये। वास्तु-पूजा करके कूर्म (कच्छप) को जान कर स्थान-संशोधन कर व्रत करना चाहिये।

पराऽन्न, पर-द्रव्य, प्रतिग्रह, पर-स्त्री और पर-निन्दा—इन्हें मन से दूर रखना चाहिये। दूसरे के अन्न से जीभ जली, दान लेने से दोनों हाथ जले, पराई स्त्री के चिन्तन से मन जला—तो हे वरानने ! सिद्धि कैसे मिले ? प्रतिग्रह अर्थात् दान कभी न ले।

आदि में 'जात-सूतक' और अन्त में 'मृत-सूतक' होता है। इन दोनों सूतकों से युक्त मन्त्र सिद्ध नहीं होता। जन्म-सूतक के दूर करने के लिये दस संस्कार कहे हैं और दस ही दिन का यह सूतक होता है। दसों संस्कारों के कर लेने से 'जात-सूतक' दूर हो जाता है। जप से भोजन तक के दस अङ्गोंवाली पुरश्चरण की क्रिया से दस ही दिन-व्यापी 'मृत-सूतक' दूर होता है।

जीव-हीन देही जैसे सभी कार्यों में समर्थ नहीं होता, वैसे ही पुरश्चरण-हीन मन्त्र कहा गया है।

श्रीदेवी ने कहा—हे विश्वेश ! मैं 'अष्टाष्टक-चक्र' को जानना चाहती हूँ। उसके रहस्य को कहिये।

ईश्वर बोले—शिव-चक्र उत्तम है, वैष्णव चक्र मध्यम और काम-चक्र अधम है। यही 'जीव-चक्र' कहा गया है। इसे 'जीव-मेरु' भी कहते हैं। पंक्ति में बैठकर या चक्राकार में विन्दु-स्थान में स्थित होकर साधक निश्चिन्त हो जप-पूजादि करे।

देवी की आवरण-शक्तियाँ तीन सौ साठ हैं। पचीस पञ्चिका-शक्तियाँ हैं। छः दर्शनों और छः आम्नायों में छः-छः शक्तियाँ हैं। बहत्तर निर्वाण-शक्तियाँ हैं। चौंसठ कोटि योगिनियाँ कही हैं। षोढा-न्यास में जो शक्तियाँ कथित हैं, उनमें से प्रत्येक शक्ति की कोटि-संख्या कही है।

आठ गुना करने से 'अष्टक' होता है। सर्वत्र आठ गुना करने से आठ अष्टक बनते हैं, जो 'शैवाष्टव' कहे गये हैं। षट्-शाम्भव-दीक्षा से लेकर मेधा-दीक्षा तक की अवधि में इन आठ अष्टकों का क्रम विहित है।

वर्णाव अष्टाष्टक में तीन सौ साठ 'आवृत्ति-शक्तियाँ' कही हैं। प्रति शक्ति में आठ शक्तियों की पूजा होती है।

इसी प्रकार आनन्द-भैरव अष्टाष्टक का विधान है। इन आठ अष्टकों का जाननेवाला साक्षात् शिव होता है। अतः यह बहुत गोपनीय है।

स्त्रियाँ देवता हैं, स्त्रियाँ ही सृष्टि हैं, स्त्रियाँ कल्याण करनेवाली हैं। संसार में सब कुछ स्त्री-रूप है। स्त्रियों के दर्शन मात्र से सारे जगत् का पूजन हो जाता है। आनन्द-दायक रूप को देख कर प्रणाम करे। रूपानन्द के मिलने पर और क्या चाहिए ? रूप ही परम धाम है, परम तप और परम वस्तु है, जो न भूत-काल से और न भविष्य-काल से सम्बद्ध है।

चतुर्थ पटल : पात्रों का निर्णय

श्रीदेवी ने कहा—हे महादेव ! आपने पृथ्वी पर सब सिद्धियाँ देनेवाले 'अष्टाष्टक' को बताया। सम्प्रदायों के अनुसार पात्र-सम्बन्धी ज्ञान क्या है ? कृपया मुझे उसे बताइये।

श्री शिव बोले—केरल, कश्मीर और तीसरा गौड मार्ग है। छप्पन देशों के भेद से ये सर्वत्र व्याप्त हैं। नेपाल से कलिङ्ग तक १८ देशों में 'गौड' मार्ग, आर्यावर्त से समुद्र तक १६ देशों में 'केरल' क्रम और शेष १६ देशों में 'काश्मीर' क्रम प्रचलित है।

अब केरलादि क्रम के अनुसार पात्र का निर्णय सुनो। केरल-क्रम में 'विश्वामित्र कपाल' कहा है। काश्मीर-क्रम में 'तुम्बी-कपाल' और गौड-मार्ग में 'महा-कपाल' पात्र है। इस प्रकार सम्प्रदायों के क्रम से कपाल तीन प्रकार के बताये हैं। 'महा-कपाल' तीन प्रकार का है—१ शङ्ख, २ शुक्ति, ३ कर्पदिका। इनमें 'कर्पदिका' श्रेष्ठ है।

सामान्यार्घ्य पात्र स्फटिक का, विशेषार्घ्य विश्वामित्र (नारिकेल) का अथवा अर्घ्य-पात्र चाँदी का होता है। गुरु-पात्र स्वर्ण का, भैरव-पात्र शुक्ति का और वीर-पात्र शङ्ख का कहा है। शक्ति-पात्र कांच का, योगिनी-पात्र कपाल का और बलि-पात्र ताम्र का बताया है। पाद्य-पात्र शुक्ति का और अर्घ्य-आचमनादि कर्मों में शङ्ख के पात्र कहे हैं। अन्य सब पात्र ताम्र के और भोग-पात्र चाँदी का होता है।

गौड-मार्ग में सामान्यार्घ्य शुक्ति का, विशेषार्घ्य कपाल या उसके अभाव में स्फटिक का, घट स्वर्ण का, गुरु-पात्र चाँदी का, भैरव-पात्र नारिकेल का, वीर-पात्र काच का, शक्ति-पात्र चाँदी का, योगिनी-पात्र रत्न का, बलि-पात्र कूर्म का और पाद्यादि पात्र जो वस्तु उपलब्ध हो उसके बताये हैं।

भोग-पात्र को काश्मीर और गौड-क्रम में आत्म-पात्र माना जाता है तथा केरल में उसे दिव्य पात्र कहते हैं।

केरल में सारे कार्य नारिकेल से करे। या सब पात्र स्वर्ण के रखे। या चाँदी के ही सब पात्र बनाए। उक्त पात्रों के सम्बन्ध में कथित किसी एक वस्तु से सभी पात्रों की रचना कर सकते हैं। सम्प्रदाय-क्रम से कांस्य, लोह, रौप्य, स्वर्ण, स्फटिक, पारद, मरकत, रत्न-वैडूर्य, नव-रत्न, नारिकेल, महा-शङ्ख—ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहे गये हैं।

पात्रों का आकार पीपल के पत्ते जैसा हो या त्रिकोणाकार हो। पुष्प की पंखड़ी के समान अथवा त्रिकोणाकार पात्र सभी मन्त्रों की साधना में विहित हैं। गोलाकार पात्र वैष्णव और सालम्बा (आधार-युक्त) शिव-उपासना में प्रशस्त हैं।

कपाल-पात्र के अभाव में विश्वामित्र (नारिकेल) पात्र ग्रहण करे। वह भी न हो तो तदनुरूप धातु का पात्र रखे। बगला की उपासना में यत्न करके काच का पात्र प्रयोग करे।

ताम्र में देवता की स्थिति ६४ वर्षों तक, रौप्य में सौ वर्षों तक, स्वर्ण में एक हजार वर्षों तक, स्फटिक में दस सहस्र वर्षों तक, नारिकेल में एक लाख वर्षों तक और कपाल में दस लाख वर्षों तक रहती है।

नारिकेल या कपर्दी या किसी एक कपाल के सभी पात्र बनाए। जिस प्रकार शिव और शक्ति का ज्ञान किसी को नहीं होता, उसी प्रकार कपाल का विज्ञान कोई नहीं जानता।

अब क्रमशः पात्रों की संख्या बताते हैं—१ सकल सामान्यार्घ्य, २ निष्कल अर्घ्य, ३ घट, ४ विशेषार्घ्य, ५ दिव्यौघ, ६ सिद्धौघ, ७ मानवौघ, ८ गुरु, ९ भैरव, १० शक्ति, ११ वीर, १२ योगिनी, १३ बलि, १४ पाद्य, १५ आचमनीय, १६ अर्घ्य, १७ मधुपर्क, १८ पञ्चामृत, १९ स्नानीय, २० प्रोक्षणी, २१ कर-क्षालन, २२ गन्ध, २३ पुष्प, २४ नैवेद्य, २५ शुद्धोदक, २६ भोग, २७ आत्म, २८ पाचक,

२६ नीराजन, ३० पीठ, ३१ दीप। इनमें बलि-पात्र नौ, पाद्य तीन, अर्घ्य तीन, पंचामृत पाँच, स्नानीय तीन, दीप-पात्र चार संख्या में बताए गए हैं। इस प्रकार केरल-क्रम में ६४ पात्र निर्धारित हैं।

मुख्य रूप से १६ पात्र काश्मीर-क्रम में माने गये हैं। यथा—१ सामान्यार्घ्य, २ विशेषार्घ्य, ३ श्री-पीठ, ४ गुरु, ५ भैरव, ६ वीर, ७ शक्ति, ८ योगिनी, ९ बलि, १० पाद्य, ११ आचमनीय, १२ मधुपर्क, १३ पञ्चामृत, १४ स्नान, १५ हस्त-शुद्धि, १६ प्रोक्षणी। केरल-क्रम में भी इन १६ पात्रों को मान्यता प्राप्त है। कौलिक मत में मधुपर्क के बाद शङ्ख-पात्र की व्यवस्था है।

चिदानन्द-सम्प्रदाय में पात्र—१ सामान्यार्घ्य, २ विशेषार्घ्य, ३ कलश, ४ गुरु, ५ भोग, ६ शक्ति, ७ योगिनी, ८ वीर, ९ बलि, १० पाद्य, ११ आचमनीय, १२ अर्घ्य, १३ स्नानीय, १४ देवी, १५ शङ्ख, १६ बलि। अथवा कलश, शङ्ख और शक्ति—ये तीन पात्र होते हैं।

आनन्द-मत में श्रीपात्र, गुरु-पात्र और भोग-पात्र—इन तीन पात्रों की विधि बताई है। इस मत के अनुसार पात्रों का विवरण यह है—१ सामान्यार्घ्य, २ विशेषार्घ्य, ३ घट, ४ श्री गुरु, ५ शक्ति, ६ योगिनी, ७ वीर, ८ बलि, ९ पाद्य, १० आचमनीय, ११ भोग।

चैतन्य-मार्ग के पात्र—१ देवी, २ गुरु, ३ भोग, ४ योगिनी ५ ब्रह्म, ६ शक्ति।

सामान्य रूप से सबसे आदि के पात्र हैं—१ सामान्यार्घ्य, २ विशेषार्घ्य, ३ कलश, ४ गुरु, ५ भैरव। इनमें बलि, पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य पात्रों को मिलाने से नौ पात्र होते हैं। यह विवरण पञ्चमा-नन्दनाथ के मार्ग के अनुसार है।

ओड्यान-पीठ चौकोर, काम-रूप गोलाकार, जालन्धर अर्धचन्द्राकार और पूर्णगिरि त्रिकोणाकार है।

शङ्ख, मन्त्र, भोग, पूजा और बलि—इन पाँच पात्रों को अपनी दाईं ओर से बाईं ओर तक स्थापित कर शिवा की पूजा करे, यह कुलनाथ का मत है। भैरव-मत के अनुसार अपने बाएँ भाग में अर्घ्यादि स्थापित करे। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, सामान्यार्घ्य, विशेषार्घ्य, घट, श्रीपात्र—इन्हें देवता के आगे रखे। अपने बाएँ कलश के निकट मधुपर्क-पात्र, उसके दाएँ आचमनीय और पान-पात्र रखें।

शम्भुनाथ मत के अनुसार क्रमशः कुम्भ, शङ्ख, श्रीपात्र, शक्ति, गुरु, भोग, बलि, पाद्य, योगिनी, वीर, सामान्यार्घ्य, घट, श्रीपात्र को वामावर्त क्रम से रखे। श्रीपात्र और घट के बीच सभी पात्रों को रखे।

घट के बाद गुरु-पात्र, तब भोग, शक्ति, योगिनी, वीर, बलि, पाद्य, आचमनीय, अर्घ्य, पुनराचमनीय, मधुपर्क, स्नानीय, प्रोक्षणी, कर-क्षालन और पञ्चामृत—यह १६ पात्रों का काश्मीर-क्रम है।

काश्मीर-मत में १८ पात्रों का क्रम भी बताया है—१ सामान्यार्घ्य, २ विशेषार्घ्य, ३ श्रीपात्र, ४ घट, ५ गुरु, ६ भैरव, ७ शक्ति, ८ वीर, ९ बलि, १० योगिनी, ११ भोग, १२ स्नानीय, १३ पाद्य, १४ अर्घ्य, १५ आचमनीय, १६ मधुपर्क, १७ पञ्चामृत, १८ प्रोक्षणी।

गुरु-पात्र से गुरु-पादुका-मन्त्र द्वारा, भैरव-पात्र से बटुक-मन्त्र द्वारा, शक्ति-पात्र से भुवनेश्वरी-बीज द्वारा, वीर-पात्र से शिव-मन्त्र द्वारा, बलि-पात्र से गणेशादि-मन्त्रों द्वारा, योगिनी-पात्र से उनके मन्त्र द्वारा और अन्य पात्रों से प्रणव द्वारा तर्पण की विधि है।

विशेषार्घ्य से दिव्यौघों का और गुरु-पात्र से गुरुओं का पूजन करे। भैरव-पात्र से पुरुष-देवताओं का और श्रीपात्र से मूल-देवी का पूजन करे। आनन्दभैरव देवता का तर्पण भैरव-पात्र से, गणेशादि का बलि-पात्र से और योगिनियों का योगिनी-पात्र से तर्पण करे। वीर-पात्र से लोकेश्वर देवों का और शक्ति-पात्र से ब्राह्मी आदि माताओं का तर्पण करे।

तीन-सम्प्रदायों में 'सायुधा, सवाहना, सशक्ती, समुद्रा, ससिद्धी' पदों का उच्चारण कर मुद्रादि-प्रदर्शनपूर्वक आवरण-पूजा की विधि निर्दिष्ट है। विशेष पूजन में केवल १ सामान्यार्घ्य, २ घट, ३ विशेषार्घ्य—इन तीन ही पात्रों की विधि है।

गौड-मार्ग में द्वार-देश और अन्तः-देश के क्रम से दो सामान्यार्घ्य होते हैं। देवता के आगे विशेषार्घ्य और घट के बाद गुरु-पात्र रहता है। विशेषार्घ्य को ही श्री-पात्र कहते हैं। तब क्रमशः भोग, शक्ति, योगिनी, वीर, बलि और आचमनीय पात्र बताए हैं।

यजुर्गौड के अनुसार तीन अर्घ्य, गुरु, भैरवी, शक्ति, योगिनी और बलि-पात्रों की विधि है। अर्घ्य के तीन और पाद्य के भी तीन पात्र होते हैं। आचमन के तीन पात्रों के बाद मधुपर्क, स्नानीय और कर-शुद्धि-पात्र की विधि है। अपनी दाईं ओर प्रोक्षणी-पात्र रहता है, जिसमें अर्घ्य का कुछ जल छोड़ा जाता है। उसके बाद पाद्य, अर्घ्य,

आचमनीय, मधुपर्क, पुनरा चमनीय, स्नानीय-पात्र रहते हैं। दाईं ओर गन्ध-पुष्प और पीछे क र-क्षालन-पात्र रहता है। अपनी बाईं ओर कुम्भ को स्थापित करे।

प्रोक्षणी के जल से गायत्री और मूल-मन्त्र द्वारा अपना, याग-वस्तुओं तथा गन्ध-पुष्पादिकों का प्रोक्षण करे।

पूज्य और पूजक के बीच में छतीस अंगुल का अवकाश होना चाहिए। बारह-बारह अंगुल ऊपर और नीचे छोड़कर मध्य स्थान में पात्रों की स्थापना करे। अपने सामने बाईं ओर पृथ्वी पर छः त्रिकोण लिखे। अर्घ्य के लिये बारह त्रिकोण लिखे। १ आवाहन, २ स्थापन, ३ पूजन, ४ पूरण, ५-६ गन्ध और पुष्प द्वारा मण्डल-सज्जा, ७ पुष्प-संश्रय, ८ अमृतीकरण और ९ प्रतिपत्ति—ये नौ क्रियाएँ हैं।

साम-गौड-मार्ग में २० पात्रों की और क्रूर-गौड-मार्ग में २१ पात्रों की विधि है। शङ्ख-पात्र को मुख्य नहीं माना जाता। लोक-दर्शन हेतु ही उसे स्थापित करते हैं।

पूजा-सामग्री दाईं ओर, नैवेद्य और कर-क्षालन-पात्र पृष्ठ-भाग में कहे गये हैं। घी का दीपक दाईं ओर, तेल का बाईं ओर रखे। अपनी बाईं ओर घट के बाद सब पात्र स्थापित करे। घट का मुख चारों ओर होता है।

केरल में 'पूजयामि तर्पयामि नमः,' काश्मीर में 'तर्पयामि पूजयामि नमः' और साम्राट् केरल में 'पूजयामि नमो तर्पयामि नमः' कहा जाता है।

गौड मार्ग में आदि, मध्य और अन्त में—तीन बार बलि देने की विधि है। काश्मीर में केवल आदि में और केरल में केवल अन्त में एक-एक बार बलि दी जाती है।

पाँचवाँ पटलः ऋणि-धनि-चक्र का निर्णय

श्रीदेवी ने कहा—मैं सबसे अधिक रहस्य की बात सुनना चाहती हूँ। श्रीशिवने कहा—सुनो, सबसे अधिक रहस्य की बात कही जाती है। सद्-ब्रह्म की पहले भावना की जाती है। फिर पर-शिव के ध्यान की संश्रुति होती है, जो ब्रह्म की ही वासना से उत्पन्न है। उससे विज्ञान के परम मनोहर रूप हुए, जिनसे सारे प्रपञ्च का

विकास हुआ। यदि केवल एक कादि-मत होता, तो सभी पुरुष महा-काल-स्वरूप और सभी स्त्रियाँ काली-तारा-स्वरूपा होतीं। ऐसी बुद्धि होने पर संसार की कल्पना न रहती।

संसार की उत्पत्ति के लिए यह प्रपञ्च है। शाक्त, शैव, गाणपत्य, वैष्णव, सौर और बौद्ध—इस क्रम से बहु-संख्यक मत हैं। जैसे अम्भोधि, जलधि, समुद्र और सागर एक ही अर्थ के वाचक शब्द हैं, उसी प्रकार ये सभी मत भी वास्तव में एक ही तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं।

वैदिक मत में शक्ति-मत की निन्दा है, शैव-मत में वैष्णव-मत की, वैष्णव में गणप-मत की, गणप में सौर-मत की, सौर में चान्द्र-मत की और चान्द्र में बौद्ध-मत की निन्दा है। स्वायम्भुव की निन्दा बौद्ध-मार्ग में है और सौभरी में चीन-मत की, चीन में जैन-मत की निन्दा है। पौराणिक मत में जैन-मत की निन्दा है और जैन में पौराण की, पौराण में मन्त्र-शास्त्र की निन्दा है। इसी प्रकार धर्मशास्त्र में कौलिक-मत की निन्दा है।

इन भिन्न मतों और वेदों आदि बहुत से शास्त्रों की उत्पत्ति प्रपञ्च के लिए है। निन्दा-पूर्ण और विभिन्न भेदों के होने से किसी का भी किसी एक मत में मन नहीं लगता। सर्वत्र एक दूसरे की निन्दा होने से एक-भाव नहीं आ पाता। एक-भाव की सिद्धि के लिए ही प्रपञ्च कहा गया है। विभिन्न की प्रशंसा करने और एक-दूसरे की निन्दा करने से विद्या की सिद्धि नहीं होती और पिशाच के समान भटकना पड़ता है।

ऐक्य-भाव की सिद्धि के लिए कालिका, तारिणी की आराधना करे। दैत्यों का नाश और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शिवा सुन्दर और अति उग्र क्रूर रूप धारण करती हैं। प्रपञ्च के लिए ही मेरे द्वारा ये रूप तुम्हें बताए गए हैं।

पुराण, न्याय, मीमांसा, सांख्य, पातंजल (योग), वेदान्त, व्याकृति (व्याख्या), धर्म-शास्त्र के अङ्ग, छन्द, ज्योतिष, वैद्यक आदि १४ विद्याएँ मैंने प्रपञ्च के लिए कही हैं, जो परिणाम में एक ही हैं। मैं प्रकृत—वास्तविक बात कहता हूं, ध्यान से सुनो।

श्री महा-भव-तारिणी चतुर्वेदेश्वरी कही गई हैं। परा श्री महा-कालिका अथर्व-वेद की अधिष्ठात्री हैं। काली और तारा के बिना

कहीं अथर्वण की विधि नहीं है। केरल में कालिका, काश्मीर में त्रिपुरा और गौड़ में तारा कही गई हैं। हादि-क्रम में ये तीनों हैं।

कादि-क्रम के अनुसार केरल में वह त्रिपुरा कही गई है, काश्मीर में तारिणी बाला और गौड़ में काली। दक्षिणामूर्ति के भेद से शिवा-देवी परा हुईं। आनन्दभैरव के मत-भेद से स्वगुरु तक शक्ति देवी से आद्या की प्राप्ति हुई। शक्ति की परम्परा अविच्छिन्न है, जो उनके नामाज्ञा-क्रम से प्रकट है। वही देवी-परम्परा है। शम्भु से स्वगुरु तक जो आद्या की प्राप्ति हुई, वह उनके नामाज्ञा-क्रम से प्रकट है। वही शिव-परम्परा है। इसी प्रकार दक्षिणामूर्ति के नामाज्ञा-क्रम से उनकी परम्परा ज्ञात होती है। चतुः-शङ्कर-योग से अन्य समुदाय उत्पन्न हुए हैं।

केरल, काश्मीर और गौड़ ये तीन सम्प्रदाय हैं। चौथे विलास सम्प्रदाय में तीनों का मिश्रण है। पान-कर्म में १ विलास, २ केरल और ३ काश्मीर सम्प्रदाय में क्रमशः निम्न पदों का उच्चारण होता है—

१ गृह्णामि च प्रगृह्णीयात।

२ जुहोमि च जुषस्व।

३ होष्यामि च प्रजुषस्व।

दाएँ हाथ से पूजन और बाएँ हाथ से तर्पण करने से 'कौल' और दाएँ हाथ से केवल पूजा करनेवाला 'दक्षिण' कहलाता है तथा बाएँ हाथ से ही पूजा और पान करनेवाला 'वामी' कहा जाता है।

दक्षिणामूर्ति के अनुसार दिव्यौघादि तीन गुरु-मण्डल हैं, जिनमें से प्रत्येक के तीन भेद होने से नौ भेद होते हैं। आनन्द-भैरव मत में दिव्य, सिद्ध, मानवादि पचासी गुरुओं का क्रम है। नव-नाथ के क्रम से नौ भेद होते हैं और क्रम-दीक्षा के भेद से चौरासी सिद्ध होते हैं।

ऋणी, धनी को जानकर गुरु नामाज्ञा प्रदान करे। साध्य और साधक के वर्णों को स्वर और व्यञ्जन के भेद से अलग करे। फिर मातृका के गणना-क्रम से उनके अङ्कों को ग्रहण करे। साध्य-नाम को त्रिगुणित और साधक नामांक को समन्वित करे (जोड़े)। उन्हें अलग-अलग सात से भाग दे। जिसका शेषाङ्क कम हो, उसे धनी माने। मन्त्र को ऋणी और साधक को धनी होना चाहिये।

साधक की भक्ति ही मन्त्र को ऋणी बनाती है। पूर्व-सेवा के फल-स्वरूप जिस मन्त्र में साधक की दृढ़ भक्ति होती है, वह मन्त्र साधक का ऋणी होता है।

गुरु द्वारा साधक को प्रसिद्ध नाम दिया जाना चाहिये। इससे साधक में जाग्रति आती है। दिव्यौघ का नाम भाग्य से ही गुरु द्वारा दिया जाता है। सिद्धौघ का नाम सिद्धि-दायक होता है और मानवौघ का ऋणी नाम भाग्य से मिलता है। पूर्णाभिषेक-दीक्षा में नाम दिया जाता है।

छठा-पटल : नामों का विवरण

श्री देवी ने पूछा—हे देव ! इन सबका अब फल बताइये।

श्री शिव ने कहा—हे महेशानि ! इन सबका जाननेवाला शिव ही होता है, इसमें सन्देह नहीं। स्तम्भन, आकर्षण, वशीकरण, अंजन, तिलक, पादुका, गुटिका, वेताल, यक्षिणी, खेचरी, पर-काय-प्रवेश, शाप, अनुग्रह, वाक्-सिद्धि, काम-रूपत्व, रसायन, इन्द्रजाल, अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ, खड्ग-सिद्धि, अदृश्य-सिद्धि, मूकान्ध-स्तब्धीकरण, संहार, युद्ध-जय, वन्ध्यात्व-नाशन, पुंसत्व, मन की स्थिरता, स्वर्ण-भैरव, धनदा, शास्ता, पद्मा, पद्मावती आदि की सिद्धियाँ बहुत ही रहस्यमयी हैं, अति गोपनीय हैं। संक्षेप में मैंने बताया है। अब क्या सुनना चाहती हो ?

श्री देवी बोली—मैं परम श्रेष्ठ रहस्य को सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—कादि-क्रम को सुनो। यह दिव्य, सिद्ध, मानवेश, महाकाल, अतिकाल, काल, कराल, वीर और नाथ आदि के क्रम से अनेक भेदों का है। शम्भु की प्रधानता से 'शाम्भव' और शक्ति की प्रधानता से 'शाक्त' क्रम होता है। कालिका और तारा-रूप मैं ही हूँ।

दिव्य, वीर और पशु-मार्ग से क्रमशः पूर्णाभिषेक होने पर आज्ञा नाम प्रदान करे। पूर्णाभिषेक हादि और कादि-क्रम से कहता हूँ। शुभ-मास, नक्षत्र, लग्न हो या काल-रात्रि, वीर-मोह-रात्रि, महा-रात्रि, क्रोध-रात्रि, घोर-रात्रि, तारा-रात्रि, अबला-रात्रि, दारुणा-

रात्रि हो, या मकर-संक्रान्ति कुम्भ-पर्व में सङ्गम-क्षेत्र में हो—ऐसे पवित्र दिन में उचित स्थान में पहुँचकर स्थान-शुद्धि करे।

पर्वत, वन, शून्य गृह, श्मशान, एक-लिङ्ग, शिव-मन्दिर, विष्णु-मन्दिर, नदी-तट, पुरी, पीठ, गङ्गा, जलाशय, वेश्या-गृह, सङ्गम, कुल-वृक्ष-वन, कदली-वन, पूग-वन, नारिकेल-वन, उपवन, पालाश-वन आदि किसी विशेष स्थान में जाकर मण्डप बनाये। मण्डप १६, १२, ६ या ५ हाथ लम्बा-चौड़ा नव-कुण्डी या एक-कुण्डी की विधि के अनुसार बनाये।

जैसी दीक्षा हो, उसी के अनुरूप मण्डप को सुसज्जित करे। मण्डप में सर्वतोभद्र मण्डल की रचना करे। श्रीविद्योपासकों की परम्परा यह है—पहले बाला, फिर पञ्चदशी, श्री षोडशी, तब परा। उसके बाद चरण-दीक्षा, निर्वाण-दीक्षा, षट्-शाम्भवा, मेधा, साम्राज्य, दिव्य-साम्राज्यादि दीक्षाएँ क्रमशः होती हैं।

बगला श्रीविद्या की और छिन्नमस्ता तारा की अङ्गभूता हैं। बाला से देह की शुद्धि होती है, तब विद्या का अधिकार होता है। अधिकार होने पर श्री षोढोपासना करे। षोढाधिकारी अपने शरीर में पञ्च-षोढा का न्यास करे। पञ्च-षोढा का न्यास करनेवाला सदा परा-विद्या का जप करे। परा-षटक के बाद चरण-चिन्तन, फिर निर्वाण-न्यास कर शाम्भवाचार करे।

षोढा-त्रितय का न्यास कर श्री रश्मि और परा-रश्मि इन दोनों का चिन्तन करे। इस प्रकार मेधा-दीक्षा सम्पन्न होती है। मेधा के बाद साम्राज्य-मेधा, फिर दिव्य-मेधा का न्यास करे। इससे साधक सदाशिव के समान होता है।

पूर्वोक्त प्रकार मण्डप बनाकर उसके मध्य में चक्र की रचना कर कुम्भ की स्थापना करे। क्वाथोदक से कलश को भर 'अभिषिञ्चामि' मन्त्र का उच्चारण करे। क्रमागत समाचार में हो, तो षोडश-त्रिकोणात्मक चक्र की रचना कर उसके मध्य में कुम्भ स्थापित करे। कुम्भ स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांच या मृत्तिका का हो। उसमें नव-रत्न, विविध धान्य, ताम्र-सहित स्वर्णादि छोड़े और उसे वस्त्र से लपेटे। रक्त-चन्दन से उसे लिप्त करे और शतक्रतु लता से बँधे पनस, अश्वत्थ के पत्तों और फलों से उसे युक्त करे।

पूर्णाभिषेक के पूर्व दिन काल-नित्या और आत्म-नित्या मन्त्रों का जप करे। कादि-क्रम में श्रीचक्र के स्थान में काली-चक्र की प्रतिष्ठा होती है। तारा-विषय में तारा-चक्र की स्थापना होती है। काल-नित्या और आत्म-नित्या के स्थान पर अङ्ग-देवताओं को ग्रहण करते हैं।

जन्म-नक्षत्र में प्रातः उठकर अपनी नित्या का पूजन करे। काली और तारा की विधि में नित्या के स्थान पर मन्त्र का जप करे। सहस्र जप कर होम करे। उसके पूर्व सोलह दिन प्रायश्चित्त करे। नाम-पारायण, मन्त्र-पारायण, चक्र-पारायण, मन्त्र-पारायण स्वयं करे या अपने गुरु से करवाये। चारों सन्ध्यायें करे। विद्या के अनुसार तिलक धारण करे।

गुरुदेव स्वयं षोढाभिषेक-मन्त्रों से अभिषेक करें। स्वस्तिक मण्डल पर शिष्य को बिठाकर चक्षुष्मती से लेकर मेधा तक के मन्त्रों से प्रयत्नपूर्वक अभिषेक करना चाहिये। १ चक्षुष्मती, २ वाङ्मती, ३ स्पर्श-नित्या, ४ वर्ण-दीक्षा, ५ क्रिया-दीक्षा, ६ कलावती, ७ पञ्चायतनी, ८ वेध-मयी, ९ पूर्ण-दीक्षा, १० ऊर्ध्वाम्नाय-मयी, ११ निर्वाण-दीक्षा, १२ शाम्भव-भेदजा, १३ मेधा, १४ साम्राज्य-मेधा, १५ दिव्य-साम्राज्य-दीक्षा—ये सब केरल-क्रम में हैं। काश्मीर में चक्षुष्मती से ऊर्ध्वाम्नाय दीक्षा तक की विधि है और गौड़-क्रम में चक्षुष्मती से पूर्णदीक्षा तक बताया है। शत्रु द्वारा किया कोई भी क्षुद्र या क्रूर कर्म, कृत्यादि-दोष दीक्षाभिषेक के बल से साधक को स्पर्श नहीं कर पाता।

श्रीदेवी ने पूछा—हे परमेश्वर! इस अभिषेक को वह बल कैसे मिलता है, जिससे समस्त क्लेश नष्ट हो जाते हैं?

श्री शिव ने कहा—सोम (चन्द्र), सूर्य, अग्नि रूपों द्वारा जल से स्पर्श होने से सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। अतः अभिषेक के समान कोई कर्म नहीं है। जल का सोम-सूर्याग्नि-रूपत्व कहा गया है। उससे सभी दुःखों और कष्टों की शान्ति होती है। दक्षिणा के सहित प्रत्यक्ष गुरुदेव का पूजन करे।

प्रति वर्ष अभिषेक कराना चाहिये। पूर्णाभिषेक-युक्त साधक, ऊर्ध्वाम्नायादि से युक्त गुरुदेव को पाकर उनका विधिपूर्वक पूजन करे। संक्षेप में मेधा-दीक्षा का वर्णन किया गया।

'काद्य' काली-मत को कहते हैं, 'हाद्य' श्रीत्रिपुरा-मत और 'कहाद्य' तारिणी-मत कहा गया है। कादि-मत में स्पर्श-मणि, चिन्ता-मणि, सिद्ध-काली, महा-विद्या-राज्ञी, कामकला, हंस-काली, गुह्य-काली—इन मन्त्रों से मेधा-दीक्षा सम्पन्न होती है।

केरल-क्रम में भावना से, काश्मीर में अनुकल्पों से, गौड़ में प्रत्यक्ष तत्वों से—इस प्रकार तीन प्रकार चक्रार्चन करने की विधि कही है।

जिस प्रकार वेद-बाह्य को निन्दित कहा है, उसी प्रकार सम्प्रदाय-हीन साधक को गर्हित माना गया है।

सातवाँ-पटल : कादि दीक्षा का विवरण

श्री देवी ने पूछा—हे महादेव! कादि, हादि, कहादि के क्रम से तीन सम्प्रदायों का वर्णन करिये।

श्री शिव ने कहा—केरल सम्प्रदाय मेधा-दीक्षा से युक्त कहा गया है। उसके चार भेद हैं : १ ऋक्-केरली, २ यजुः-केरली, ३ साम-केरली ४ अथर्व-केरली। अथर्व सम्प्रदाय में दिव्य, सिद्ध, मानव औघों द्वारा बहुत से भेद हैं। दायें हाथ से पूजन और बाएँ से तर्पण होता है।

काश्मीर सम्प्रदाय ऊर्ध्वाम्नायादि और शक्ति-पात से युक्त कहा गया है। उसके भी चार भेद हैं : १ ऋक्-काश्मीर, २ यजुः काश्मीर, ३ साम-काश्मीर, ४ अथर्वण-काश्मीर। इस सम्प्रदाय में बाएँ हाथ से पूजन और दाएँ से तर्पण होता है।

गौड़-सम्प्रदाय पूर्णाभिषेक से युक्त कहा गया है। उसके भी चार भेद हैं : १ ऋक्-गौड़, २ यजुर्गौड, ३ साम-गौड, ४ अथर्व-गौड। इस सम्प्रदाय में भी बाएँ हाथ से पूजन और दाएँ से तर्पण होता है।

उक्त तीनों सम्प्रदायों में नाम-पारायण, मन्त्र-पारायण, नाड़ी-पारायण और चक्र-पारायण की विधि समान रूप से है।

देश और आम्नाय के अनुसार बहुत से भेद हैं। दाएँ हाथ से पूजन और बाएँ से तर्पण करने की विधि प्रसिद्ध है। बाएँ हाथ से देवता का तर्पण करना चाहिये और दाएँ से गुरु का। केवल बाएँ या दाएँ ही हाथ से दोनों के तर्पण की भी विधि है। ब्रह्म-कौल मत

में दाएँ हाथ से गुरु का तर्पण कर बाएँ से देवता का तर्पण होता है।
होम करके आज्ञा-नाम देने की विधि है।

आठवाँ पटल : प्रदोष की विधि

श्री शिव ने कहा—वीरादि कौलों के भेद पहले बता चुका हूँ। अब विष्णु और पाशुपत आदि के भेद कहते हैं।

पञ्च-रात्रि व्रत के करनेवाले 'पाञ्चरात्र' कहलाते हैं। पाषण्ड-करनेवाले 'पाखण्ड' और कपाल-पात्र में भोजन करनेवाले, मद्य-मांस-सेवी, मुण्ड-माला-धारी, श्मशानाग्नि में भोजन बनानेवाले 'कापालिक' कहे जाते हैं। कापालिक १२ प्रकार के कहे हैं, जिनमें श्रेष्ठ महा-कापालिक है। स्नान-दान से रहित, पवित्रापवित्र न माननेवाले, जप-तप-नियमादि से दूर रहनेवाले 'चीन' कहलाते हैं। वे सकल और निष्कल दो प्रकार के होते हैं। 'जैन' कमण्डलु-धारी होते हैं। इसी प्रकार 'बौद्धादि' मत हैं।

अब 'मुद्रा' (शरीर में अङ्कित चिह्न) के अधिकारियों का वर्णन करते हैं। ब्राह्मणों को मुद्रा नहीं धारण करनी चाहिये। वेद-रहित ही मुद्रा को धारण करता है। 'मुद्रा' के चार प्रकार हैं—१ ब्राह्मण विष्णु-भाव के बोधन के लिये देह में मुद्रा की भावना करता है, २ क्षत्रिय शरीर में रेखा बनाता है, ३ वैश्य देह में चिह्न स्थापित करता है और ४ शूद्रादि श्रेणी के लोग तप्त-मुद्रा देह में अङ्कित करते हैं।

देवता बनकर देवता की पूजा करनी चाहिये, इस निर्देश के अनुसार अपने में विष्णु-स्वरूप की भावना करनी चाहिये। तब जप करना चाहिये। इससे मन्त्र की सिद्धि मिलती है। शैवादि का भी ऐसा ही क्रम है।

शक्ति का उपासक 'शाक्त' कहा जाता है। वैखानस आदि दीक्षा से युक्त 'वैष्णव' होता है। षडध्व शाम्भवादि से युक्त 'शैव' कहा जाता है। केवल शिव को माननेवाला 'वीर-शैव' और केवल विष्णु को माननेवाला 'वीर-वैष्णव' कहा जाता है। चन्द्रमा का मन्त्र जपनेवाला 'चान्द्र' कहलाता है। सूर्य का भक्त 'सौर' और ब्रह्मा का उपासक 'स्वायम्भुव' कहा जाता है। दुर्गा, चण्डी आदि से सम्बन्ध रखनेवाला 'दौर्ग' कहलाता है।

सभी क्रियाओं का मूल वेद में है। जिसका मूल वेद में है, वही श्रेष्ठ स्मृति है। जो वेद से रहित है, उसे द्विज कभी न करे। वेद-मार्ग में सदा तत्पर रहनेवाला ब्राह्मण होता है, यह निश्चित है। जो वेद-रहित है, वही चाण्डाल कहा गया है।

स्व-धर्म को आगे रखकर सभी कर्म करने चाहिये। स्व-धर्म में लगा हुआ व्यक्ति सदा सुख पाता है, यह निश्चित है।

श्री देवी ने कहा—मैं वैष्णवों और शैवों के भेद सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—वैष्णव के १० भेद हैं : १ वैखानस, २ राधा-वल्लभ, ३ गोकुलेश, ४ वृन्दावनी, ५ पाञ्चरात्र, ६ वीर-वैष्णव, ७ रामानन्दी, ८ हरि-व्यास, ९ निम्बार्क, १० भागवत। पाशुपत (शैव) के सात भेद हैं : १ शिखी, २ मुण्डी, ३ जटी, ४ द्वि-दण्डी, ५ त्रि-दण्डी, ६ एक-दण्डी ७ वीर-शैव।

अब इनकी भावना सुनो। सबको व्याप्त करके जो रहता है, वह वैष्णव है। वैखानस आदि दीक्षा से भूषित स्मार्त्त वैष्णव है। वैष्णवाचार में तत्पर, विष्णु-तन्त्र में पारङ्गत, विष्णु-चिह्नों में लगा हुआ, शान्त आत्मावाला अनन्य भक्त राधा-वल्लभ है। विविध आभूषणों से युक्त, विविध सुगन्धियों से भूषित, गायों को प्रसन्न करनेवाला, अन्दर से शक्ति का भक्त और बाहर से वैष्णव-रूप-धारी गोकुलेश सम्प्रदाय पृथ्वी पर प्रसिद्ध है। विष्णु-भक्त, वन-क्रीडा और स्त्री-ध्यान-परायण, सुगन्धित शरीरवाला वृन्दावनी कहा जाता है। पाञ्चरात्र और वीर-वैष्णव का परिचय पहले दिया जा चुका है। 'रा' शक्ति है और 'म' शिव—इस विचार से आनन्दित रहनेवाला, शान्त-चित्त, सर्वत्र सम-भाव रखनेवाला रामानन्दी है। पापों को नष्ट करने में समर्थ, विष्णु-भक्त, जितेन्द्रिय, यम-नियमादि का पालन करनेवाला, परोपकारी हरिव्यासी शिव-शक्ति-रूपधारी है। निम्बार्क-सम्प्रदाय नित्यार्चन में तत्पर, बाह्य पूजन में लगा अनन्य भक्त होता है। भागवत केवल विष्णु-भक्त होता है।

इन वैष्णव सम्प्रदायों के व्रतादि का निर्णय इस प्रकार है—एकादशी का पालन भक्ति के साथ सदा करते हैं। एकादशी के दिन-रात में कभी भोजन नहीं करते हैं। यह स्मार्तों का मत है। वैखानस के अनुसार एकादशी के दिन भोजन करनेवाले की आयु, विद्या, यश और बल इन चारों का नाश होता है। गोकुलेश मत के अनुसार विष्णु-रूप-

वाले शम्भु हैं और शम्भु-रूपवाले विष्णु हैं। रुद्र एकादश कहे गये हैं, विष्णु के मिलन से द्वादशी कही गई है। रुद्र की एकादशी है, श्रीपति की द्वादशी है। एकादशी में रोहिणी में भोजन करने से पाप होता है। सुरेन्द्र-संहिता, षट्-शाम्भव, गोपाल-पाञ्चरात्र, षडन्वय-मत, श्री गोपी परिशिष्ट, मोह-शक्तीश्वर और षट्-शाम्भव-रहस्य—इन ग्रन्थों में विवेचन किया गया है।

अब पाशुपतों की भावना सुनो। शिखा-सूत्र धारण करनेवाले शिखि पाशुपत समाधि में शिव-पीठ का ध्यान करते हैं। रुद्राक्ष, भस्म और लिङ्ग शैव के लक्षण हैं। ब्रह्मचारी शान्त-चित्त और प्रसन्नात्मा होता है। मुण्डी तीस प्रकार के होते हैं, जिनका वर्णन तारा-सूक्त में है। जटी पाशुपत दस प्रकार के हैं। तीन जटा, एक जटा और बहु जटा धारण करनेवाले, तपस्वी, शान्तात्मा, देह-कष्ट सहन करनेवाले, क्रम-त्रितय से युक्त जटी पाशुपत कहे गये हैं। वाक् और मन का दण्ड (संयम) ग्रहण करनेवाले द्विदण्डी तथा शरीर, वाक् और मन का दण्ड लेनेवाले त्रिदण्डी कहलाते हैं। वीर-शैव का परिचय पहले दे चुके हैं। सर्वोत्तम शैव शाम्भव कहा जाता है, जो चतुर्दशी का व्रत कर प्रदोष-व्रत में तत्पर रहता है। शनि-प्रदोष का महा-व्रत करता है। इस व्रत का नाम 'दारिद्र्य-दहन' है। विशेष-कर कृष्ण-पक्ष में और शुक्ल-पक्ष में भी किया जाता है। अष्टमी-सप्तमी के सन्धि-काल में प्रदोष-व्रत कहा गया है। इस व्रत से युक्त होकर शिव-पूजा-परायण होता है। नव-कन्या के प्रभेदों के अनुसार कुमारी-पूजा कर शुभाशुभ कर्म और षट्-कर्म-साधन ज्ञात करे।

षट्-कर्म तीन प्रकार के कहे हैं—१ वश्य, आकर्ष, स्तम्भन, विद्वेष उच्चाटन, मारण—विरूपाक्ष के अनुसार। २ वश्य, स्तम्भन, सम्मोह, मारण, उच्चाटन, विद्वेषण—विराट् के अनुसार। ३ शान्ति, स्तम्भ, वशीकार, मारण, उच्चाटन, द्वेषण।

वश्य में वगलेशी, स्तम्भन में बगला, वश्य में पञ्चदशी—इस प्रकार वशीकरण तीन प्रकार का है। आदि में प्रीति, दूसरे में मोहन और तीसरे में वशीकरण होता है। एक के होने पर तीनों हो जाते हैं।

शनि-प्रदोष का आश्रय लेकर शैव विभूषित स्थान में नन्दी-हीन प्राचीन पश्चिमाभिमुख लिङ्ग के समक्ष अनुष्ठान करे। चार-पाँच कोस

तक जहाँ दूसरा शिव-लिङ्ग न दिखाई दे, वह 'एक-लिङ्ग' कहा गया है। उसके पास उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है।

शनि-प्रदोष में ऊर्ध्व-पुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र या पट्ट-बन्धन धारण कर यत्न से शिव-पूजा करे और ब्राह्मणों को भोजन कराये।

नवाँ पटल : मेरु का संसाधन

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! तीनों सम्प्रदायों में पूजा-द्रव्य का रहस्य क्या है, उसे सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—सामान्य रूप से गौड मार्ग में मद्य, मांस, मत्स्य मुद्रा और मैथुन—ये पाँच मकार प्रसिद्ध हैं। केरल-क्रम में दूध से, काश्मीर-क्रम में भावना से और गौड-क्रम में प्रत्यक्ष मकारों से पूजा करने की विधि है।

जल से दस गुना उत्तम शीतल जल, उससे सौ गुना सुगन्धित जल, उससे सौ गुना दही, उससे सौ गुना दूध, उससे सौ गुना घी, उससे सौ गुना मधु, उससे सौ गुना सम्विदा (भांग), उससे सौ गुना मद्य उत्तरोत्तर उत्तम मानी गई है। यह गौड़ और केरल मार्गों का मत है।

काश्मीर-क्रम में पहले मकार का अनुकल्प ताम्र पात्र में गव्य (गाय के पदार्थ—दूध, दही आदि), दूसरे मकार का अनुकल्प पिण्याक (आटे का लड्डू) आदि, तीसरे मकार का गृञ्जन (लहसुन), चौथे मकार का खीर, दूध आदि और पाँचवें मकार का अनुकल्प मिथुन माना गया है।

ब्राह्मण अनुकल्प देता है, तो वह चाण्डाल-स्वरूप बनता है।

श्री देवी ने कहा—हे प्रभो, अनुकल्पों के कहे जाने से मुझे सन्देह होता है। दूध आदि की कल्पना किस प्रकार की गई है ?

श्री शिव ने कहा—ताम्र पात्र में गव्य पदार्थ मद्य के ही समान है। इसी से होम में ताम्र-पात्र का विधान किया गया है।

पूजा-द्रव्य गौड़ और काश्मीर दोनों सम्प्रदायों में समान हैं—ताम्र-पात्र में दूध, मक्खन, दही, फटा दूध, मधु (शहद), तैल, गुड़ और अदरक का रस, सम्विदा (भांग, विजया), लवण-युक्त दूध,

जायफल, नारिकेल-जल कांस्य पात्र में आदि। अरिष्ट, आसव, सीधु आदि भेद से मदिरा तेरह प्रकार की होती है। वीर साधना में प्रत्यक्ष द्रव्यों को अर्पित करे।

श्री देवी ने कहा—हे देवेश, पहले आपने जिसकी सूचना मात्र दी है, उसे कहिये।

श्री शिव ने कहा—हे पार्वति ! मेरु सामान्यतः तीन प्रकार के हैं—न्यास-मेरु, २ यन्त्र-मेरु, ३ अग्नि-मेरु। तीन प्रकार के प्रस्तार हैं—१ मेरु-प्रस्तार, २ कैलास-प्रस्तार, ३ भू-प्रस्तार। पाँच प्रकार के मेरु ये हैं—१ लय-मेरु, २ योग-मेरु, ३ नाद-मेरु, ४ योग-वीणा-मेरु और ५ कन्या-मेरु। तारिणी मत से दो मेरु हैं—१ मन्त्र-मेरु, २ वर्ण-मेरु। इनके शिवा वह्नि या अग्नि-मेरु होता है। मेरु का संसाधन पूर्णाभिषेक-प्राप्त साधक ही कर सकता है। अन्य व्यक्ति यदि करे, तो उसका पतन होता है।

दीक्षा का क्रम इस प्रकार है—१ दृग्-दीक्षा, २ वाग्-दीक्षा, ३ स्पर्श-दीक्षा, ४ वर्ण-मयी दीक्षा, ५ क्रियावती दीक्षा, ६ कलावती दीक्षा, ७ आणवी दीक्षा, ८ षड्-दर्शनी दीक्षा, ९ पञ्चायतनी दीक्षा, १० पञ्च-पञ्चिका दीक्षा, ११ पूर्णाभिषेक दीक्षा। षडाम्नाय-क्रम से इन्हें कर अन्त में मेधा-दीक्षा प्राप्त करनेवाला साक्षात् शिव होता है, इसमें सन्देह नहीं।

श्री देवी ने कहा—हे शङ्कर ! सभी मेरुओं का फल क्या है, उसे बताइये।

श्री शिव ने कहा—न्यास-मेरु से देह-सिद्धि, यन्त्र-मेरु से त्रैलोक्य-विजय, अग्नि-मेरु से लोक-सम्मोहन आदि होता है।

दसवाँ पटल : मेरु-वर्णन

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! पूर्वोक्त मेरु आदि का रहस्य सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—हे देवि ! मेरु-प्रस्तार का निर्णय प्रारम्भ से कहता हूँ। एकाग्नि से लेकर श्रीमेधा तक परम्परा-क्रम से प्रस्तार बताया गया है। आदि में एकाग्नि का साधन है, एकाग्नि 'सूर्य' को

कहते हैं। फिर पञ्चाग्नि-साधन के लिए चार कुण्ड बनाये, पाँचवीं अग्नि 'सूर्य' है। तब नन्दाग्नि-साधन में आठ कुण्ड आठ दिशाओं में बनाए, नवीं अग्नि 'सूर्य' है। फिर द्वादशाग्नि-साधन में ग्यारह कुण्ड और बारहवीं अग्नि 'सूर्य' है।

१ महाकाल, २ अक्षोभ्य, ३ नीला, ४ कराल—इन चार मतों के अनुसार विविध-संख्यक कुण्डों को यन्त्र के भिन्न-भिन्न प्रस्तारों पर बनाने की विधि है, जो कर्मकाण्डी आचार्यों द्वारा ही ज्ञातव्य है। इसी प्रकार यज्ञ-मण्डप को जिन तोरणों और पताकाओं से सज्जित करना है, उनकी माप तथा उनके लक्षण भी निर्दिष्ट हैं। इस प्रकार विधिपूर्वक कुण्ड स्थापित कर ऋतु के अनुसार प्राप्य पुष्प, फल और धान्य से होम करने से साधक सिद्धियों का स्वामी होता है। यज्ञ के आचार्य को सन्तुष्ट कर यत्नपूर्वक गुरुदेव का पूजन करे। ब्राह्मणों का पूजन कर स्वर्ण-वस्त्रादि से उन्हें प्रसन्न करे। विभिन्न वाद्यादि से उत्सव मनाये। इस प्रकार छः पारायण करने से सभी सिद्धियाँ साधक के हाथ में आ जाती हैं और वह इन्द्र तथा कुबेर के समान ऐश्वर्यशाली होता है।

ग्यारहवाँ पटल : सिद्ध-मत का रहस्य

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! मैं सबसे अधिक रहस्य की बात को सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—हे देवि ! ध्यान से सुनो। कुण्डों को दल (कमल की पंखुड़ी) के आकार का बनाये या श्रीचक्र के समान उनका क्रम रखे। नौ चत्वार बनाये। पहले १ विन्दु का सङ्गम करे। वहाँ त्रिकोण की रचना करे। फिर २ अष्टार, ३ दशार बनाकर, ४ दूसरे दशार को बनाये। तब, ५ मन्वस्र की रचना कर, ६ षोडश-दल को बनाये। तब, (७-९) तीन वृत्तों की रचना कर चार-द्वारों से मेरु-स्वरूप 'श्रीचक्र' को सम्पन्न करे। इनमें से प्रत्येक को क्रमशः एक दूसरे से उन्नत बनाते हुये रचना करे। इन नौ चत्वारों के ऊपर मण्डप बनाये। इस प्रकार वहाँ नौ कुण्ड क्रमशः बन जाते हैं। उन कुण्डों में भगवती सुन्दरी का ध्यान करते हुये अग्नि प्रज्वलित करे।

इस महा-मेरु को दलाकार बनाये। ऐसा जो करता है, वह सर्व-सिद्धियों का स्वामी होता है।

पूर्णाभिषेक से दिव्य-साम्राज्य तक के साधक के लिये यह रहस्य-मय योग कहा है। पूर्णाभिषिक्त साधक सदा ध्यान और पूजन में तत्पर रहे। तत्व-चिन्तन में लगे रहने से वह मनुष्य देव-स्वरूप हो जाता है। दूसरों की निन्दा, स्त्रियों का अपमान, दूसरों का द्रव्य-स्त्री-अन्न-ग्रहण कभी न करे। सदा एकान्त में और विशेष कर पर्वत पर रहे। इस सारे चराचर-जगत् को स्त्री-रूप में ध्यान करे। सदा आनन्द-युक्त रहता हुआ देवी के आनन्द में तन्मय रहे। सिन्दूर का तिलक धारण करे, स्वच्छ रहे, जितेन्द्रिय रहकर स्वेच्छाचार करे। क्रोध, लोभ, मद, दम्भ, मात्सर्य, चञ्चलता से दूर रहे। बहुत बात-चीत न करे। आसन, निद्रा और आहार को जीते अर्थात् एक ही आसन पर देर तक बैठ सके, निद्रा के वश में न हो और भूख-प्यास से व्याकुल न हो। जहाँ कहीं नित्य रहे, भगवती व शिव का ध्यान करता रहे। घोर वन में, स्त्रियों के बीच पूजन करे। वेश्याओं के मध्य में भी शिवा भगवती का चिन्तन करे। कम बोले, कम खाये और कम ही ग्रहण करे। इस चराचर जगत् को तेजो रूप भावना कर नित्य मन्त्र-जप करे। माया का त्याग यत्न-पूर्वक करे।

"मैं कौन हूँ, किसका हूँ, आत्म-तत्व क्या है, मैं किस रूपवाला हूँ, मेरी स्थिति कैसी है, कहाँ मैं उत्पन्न हुआ, कैसे मेरा जन्म हुआ, किस रूप में जन्म हुआ, मेरा क्या है, क्या आज्ञा मुझे दी गई"—इस प्रकार विचार कर सब कुछ तिनकों के समान त्याग दे। "मैं तारा-रूप होता हूँ, आज मैं तारा-रूप हूँ, मैं ही वह (तारा) हूँ। जो कुछ सूचित होता है, स्मरण में आता है, प्रेरित होता, दिखाई देता, दिया जाता है, वह सब उसी के द्वारा किया जाता है। भू-तल में कोई दूसरा करनेवाला नहीं है"—इस प्रकार की भावना करे।

पूर्णाभिषेक-संस्कार से युक्त साधक जिस देश में रहता है, वह देश एक लाख योजन तक धन्य होता है। पूर्णाभिषेक से रहित दीक्षा फल नहीं देती। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, शीत-उष्ण में सम-भाव रख कर सदा देवता में मन लगाये रहे। देवता में लीन होकर मनुष्य देव-स्वरूप होता है। पूर्णाभिषेक से विहीन लोगों की दीक्षा और पूजा निष्फल होती है। पूर्ण-दीक्षा से युक्त साधकों का आशीर्वाद

ग्रहण करे, उन्हें प्रसन्न करे क्योंकि उनके प्रसन्न होने मात्र से सभी देवताओं की सन्तुष्टि होती है। सभी मन्त्रों का अधिकार पूर्णाभिषिक्त साधक के हाथ में होता है। वह साक्षात् महाविद्या-स्वरूप ही माना जाता है। नील-सरस्वती उसके मुख में, काली उसके हाथ में, सुन्दरी उसके घर में, कमला उसके नेत्रों में, बगला उसके क्रोध में, वालाम्बा उसके हृदय में वास करती हैं। इसी प्रकार हे पार्वति ! अन्य महा-विद्यायें और सिद्ध-विद्याएँ उसके हाथ में रहती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

पूर्णाभिषिक्त साधक को कभी कुपित न करे क्योंकि उसके क्रोध से सारा जगत् नष्ट हो जाता है। उसके प्रसन्न होने से तीनों लोकों की रक्षा होती है। पाँच वर्ष का वालक भी पूर्ण-दीक्षा से युक्त हो तो वही सबसे ज्येष्ठ माना जाता है। आयु अधिक होने से कोई ज्येष्ठ नहीं होता। चाण्डाल भी पूर्ण दीक्षा से यदि युक्त है तो वह दीक्षोक्त कर्म में ब्राह्मण से भी ज्येष्ठ होता है। आयु, जाति, पाण्डित्य, धनाढ्यता आदि से ज्येष्ठता नहीं होती। पूर्णाभिषिक्त का कभी अपमान न करे। यदि कोई प्रमाद-वश ऐसा करता है, तो उसका पतन होता है। उसका सदैव यत्न करके पूजन करे। पूर्णाभिषिक्त साधक के साथ सदा देव-वत् व्यवहार करे। जैसे मन्दिर में देवता रहता है, वैसे ही पूर्णाभिषिक्त साधक में भगवती विद्या सदा वास करती हैं।

बारहवां पटल : सिद्ध प्रयोग

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! पहले आपने मुझे जो सूचित किया है, उसे कहिये।

श्री शिव ने कहा—हे देवेशि ! अत्यन्त रहस्यमय तारा-योग को सुनो। तारा-योग ही योग है, तारा-जप ही जप है। तारा-मन्त्र महा-मन्त्र है, सब उत्तम मन्त्रों में उत्तम है। तारा-जप करनेवाला धन्य है, वह सब देवों द्वारा वन्दनीय होता है। पूर्ण-दीक्षा से युक्त साधक स्वयं तारिणी-स्वरूप है।

पुस्तक में लिखे मन्त्र का जप करने से सिद्धि नहीं मिलती। यदि दीक्षा द्वारा मन्त्र को प्राप्त कर उसका जप किया जाता है, तो उसकी सिद्धि अवश्य मिलती है, इसमें सन्देह नहीं। तारा के सिद्ध मन्त्र का

पुरश्चरण कर घट का स्पर्श करने से घट-सरस्वती दो प्रहर के भीतर सब कुछ साधक को बता देती है।

महेशानि ! महा आपत्ति में, प्राण-सङ्कट होने पर, राज्य-द्रव्य-पुत्रादि के नाश का समय आने पर, महा-मारी का भय होने पर, राष्ट्र-भङ्ग का अवसर आने पर राज्य की रक्षा करनेवाले, शत्रु के राज्य का नाश करनेवाले, प्रगाढ़ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करनेवाले षट्-कर्म-साधन को कहता हूँ, ध्यान से सुनो।

पहले 'पञ्चाक्षरी' तारा (ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्) का जप 'कुल्लुका' (ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं) के सहित करे। इस मन्त्र की अधिष्ठात्री 'चण्डघण्टा' हैं, जो 'परा कूर्च बीज' (हूँ) कही गई हैं। वही काली की शक्ति हैं और वही तारा का बीज हैं। उसी को तारा-प्रणव कहा गया है। छिन्नमस्ता का भी वही एकाक्षरी मन्त्र है। इस प्रकार इस एक बीज में तीनों का समावेश होने से इसे 'महा-क्रोध' कहते हैं। केवल इसी का जप करने से तीन शक्तियों के जप का फल मिलता है। कूर्च-बीज के बाद जो 'फट्' है वह शक्ति है और 'स्त्रीं' कीलक है।

त्रैलोक्य-विजया नामक त्र्यक्षरी विद्या (मन्त्र) के छः भेद हैं—

१ काली तारा छिन्ना—क्रीं स्त्रीं हूं
२ तारा काली छिन्ना—स्त्रीं क्रीं हूं
३ तारा छिन्ना कालिका—स्त्रीं हूं क्रीं
४ काली छिन्ना तारा—क्रीं हूं स्त्रीं
५ छिन्ना काली तारिणी—हूं क्रीं स्त्रीं
६ छिन्ना तारा कालिका—हूं स्त्रीं क्रीं

जिस देवता का बीज आदि में हो, उसी के आयुध और आभूषण धारण करनेवाली विजया देवी का ध्यान करे। मध्य में जिस देवता का बीज हो, उसी देवता के स्वरूप के अनुसार विजया देवी का चिन्तन करे और अन्त में जिस देवता का बीज हो, उसी देवता के वाहन को विजया देवी का वाहन समझे। जिस देवता का बीज आदि में हो, उसी देवता के पूजा-यन्त्र में पूजन करे या जिस पीठ में भक्ति हो, उसी में पूजन करे।

उक्त मन्त्रों के सिवा नौ अक्षर, चार अक्षर, उन्नीस अक्षर, तीस अक्षर आदि वाले मन्त्र भी हैं। इन सभी मन्त्रों की साधना में जप, पूजा, बलि, गन्धादि विधिपूर्वक प्रदान करे। सूर्योदय से सूर्यास्त तक

स्थिर आसन पर बैठकर तीन मास तक जप करे। इस प्रयोग से सभी सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं।

पताका में यन्त्र लिखे। उसके मध्य कोष्ठ में बालक-वेष वाले बटुक-भैरव को चित्रित करे। वे नाग-यज्ञोपवीत पहने हों, कपाल और शूल लिए हों, नौ रङ्गों के कुत्तों से घिरे हों। ऐसे ब्रह्म-स्वरूप बटुक-भैरव से युक्त पताका रखने से कलियुग में प्रत्यक्ष फल देखने को मिलता है। विशेष पञ्चाङ्ग पुरश्चरण करने से यथोक्त फल मिलता है।

बलि तीन प्रकार की होती है—१ सात्विक, २ राजस और ३ तामस। महिष के स्थान पर कूष्माण्ड (कुम्हड़ा), छाग के स्थान पर कर्कटी, मनुष्य के स्थान पर बीजपूर (नीबू), घोड़े के स्थान पर रम्भा-पुष्प और मत्स्य के स्थान पर मूली का विधान किया गया है। जैसा सम्भव हो, वैसा बलिदान करे।

श्री देवी ने कहा—हे प्रभो, श्री बटुक का विशेष वर्णन कीजिए। उनका स्वरूप, शक्ति बताइये। वे शिव-शक्त्यात्मक हैं या ब्रह्म-विष्ण्वात्मक ? पति, पुत्र या भाई—किस रूप में उनकी साधना करे ?

श्री शिव ने कहा—हे पार्वति ! मैं इस रहस्य को बताता हूं। वेताल, प्रेत-कूष्माण्ड, यक्ष, राक्षस, किन्नर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य ग्रहादि उत्पन्न हुए और वे चराचर जगत् में व्याप्त हो गए। कुछ प्राणी ब्रह्मा की सेवा करने लगे, तो कुछ शिव, विष्णु, महाविद्या आदि की किन्तु इस सेवा का फल प्राणियों को नहीं मिल पाता था क्योंकि वेतालादि जप-पूजादि के फल को ले लिया करते थे। उनके नाश के लिए और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये तारा-काली द्वारा इन बटुक-भैरव की भावना की गई। सर्व-मय तेज से सनातन बटु-रूप का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर क्रमशः सत्व, रज और तमोगुण-प्रधान हैं। तदनुरूप ही बटुक के तीन स्वरूप हैं। उस स्वरूप के भी दश भेद दस महा-विद्याओं के अनुसार हैं।

बटुक-भैरव को महोग्रतारा ने उपवीत दिया, छिन्ना ने कपाल और काली ने काल का त्रिशूल दिया। शूल-रूप से काली, तारा और छिन्ना ही विद्यमान रहती हैं। अन्य देवता, सिद्धियाँ, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि कुत्तों का रूप धारण कर निरन्तर बटुक-रूप की सेवा

करते रहते हैं। जब से शिव ने इस 'बटुक' नाम का रूप धारण किया है, तब से बेतालादि की बाधा दूर हो गई और अपने-अपने देवता के दर्शनार्थी भक्त-जन अपनी अभीष्ट-सिद्धि को प्राप्त करने लगे। इन पूज्य बटुक-भैरव की जो मनुष्य पूजा करते हैं, वे शिव-स्वरूप होते हैं और सभी सिद्धियों के स्वामी होते हैं।

ज्येष्ठ मास की शुक्ला दशमी बटुक-भैरव की उत्पत्ति-तिथि कही गई है। वे देवी के पुत्र-स्वरूप हैं। उनके प्रसन्न होने से काली, तारा आदि सभी महाविद्यायें प्रसन्न होती हैं और साधक के सभी प्रयोग सिद्ध होते हैं।

तेरहवाँ पटल : वीर-रात्रि आदि का निर्णय

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! मैं वीर आदि रात्रियों का निर्णय सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—१ वीर-रात्रि, २ महा-रात्रि, ३ काल-रात्रि, ४ मोह-रात्रि, ५ घोर-रात्रि, ६ क्रोध-रात्रि, ७ अबला-रात्रि, ८ तारा-रात्रि, ९ शिव-रात्रि, १० दिव्य-रात्रि, ११ दारुणा-रात्रि—इन सबको मैं बताता हूँ, सुनो।

चतुर्दशी से युक्त कुल नक्षत्र और कुल दिवस हो, तो अर्ध-रात्रि में 'वीर-रात्रि' होती है। आश्विन के शुक्ल पक्ष के नवरात्र में अष्टमी के मध्य रात्रि में 'महा-रात्रि' कही गई है। चतुर्दशी का अमावास्या से योग होने पर दीपोत्सव होता है, वही 'काल-रात्रि' है, जो तारा और काली को प्रसन्न करती है। कृष्णावतार के समय तक जन्माष्टमी के दिन तारा का शाप बताया गया है, उस समय के बाद कृष्ण-जन्म के अनन्तर परमा तारिणी विद्युत्-रूप में विन्ध्य-वासिनी के स्वरूप में आविर्भूत होती हैं, उसी समय 'मोह-रात्रि' कही गई है, जिसमें स्मरण करने मात्र से भगवती साधक को सिद्धि प्रदान करती हैं। चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी की मध्य निशा में 'क्रोध-रात्रि' होती है, जो तारा-रूप है। मार्गशीर्ष की कृष्णाष्टमी में महा-काल-स्वरूपा 'घोर-रात्रि' और फाल्गुन कृष्ण एकादशी मङ्गल या शुक्र से युक्त होने पर 'अबला-रात्रि' कही जाती है। ज्येष्ठ की दशमी शुक्रवार को हो और दश योगों से युक्त हो व रात्रि में एकादशी हो तो उसे 'दिव्य-रात्रि' कहते हैं। ज्येष्ठ की शुद्ध दशमी तिथि दश योगों से युक्त होने पर, बटुक की जन्म-तिथि मानी जाती है। अमावास्या मंगलवार से युक्त हो, कुल नक्षत्र

हो और ग्रहण का समय हो, तो 'तारा-रात्रि' कही जाती है, जो भाग्य से ही प्राप्त होती है। फाल्गुन कृष्ण शुक्रवार की अर्ध-रात्रि में सब सिद्धियाँ देनेवाली 'शिवरात्रि' होती है। अमावास्या शुक्रवार को हो, साथ ही अपराह्न में सूर्य-ग्रहण हो, तो वह 'मृत-संजीवनी तिथि' मानी जाती है, जिसमें स्नान, दान से लेकर होम तक के कर्म करने से अनंत पुण्य की प्राप्ति होती है। चैत्र मास की अष्टमी संक्रमण से युक्त हो, तो 'सिद्धि-रात्रि' कहलाती है, जो तारा और काली की उपासना के लिये प्रशस्त है। माधव (वैशाख) मास की तृतीया कुल-नक्षत्र और कुल-वार से युक्त हो, तो उस दिन 'दारुणा रात्रि' होती है, जो सर्व-सिद्धि-दायिनी है।

अब 'पर्व-राज' को बताते हैं। पौष तृतीया शुक्रवार को मकर राशि से आक्रान्त हो और कुल-नक्षत्र से युक्त हो तथा यदि वह चतुर्थी और रेवती-नक्षत्र के साथ हो, यह उत्तम पर्वों से भी श्रेष्ठ पर्व होता है।

चैत्र तृतीया रेवती से युक्त हो, तो 'ऋद्धि-योग' होता है, जो होम-कर्म के लिये प्रशस्त है। प्रति मास की पूर्णिमा मास-नक्षत्र और कुल-वार से युक्त हो, तो 'सुन्दरी' तिथि होती है। प्रति मास की कृष्णाष्टमी भौमवार को हो या कुल-नक्षत्र से युक्त हो, तो सर्व-सिद्धि-दायिनी 'देवी-रात्रि' कही जाती है। माघ चतुर्थी मकर से युक्त होने पर 'गणप-रात्रि' मानी जाती है। कृष्ण पक्ष की नवमी कुल-नक्षत्र या वार से युक्त हो, तो 'सिद्धि-रात्रि' होती है। कृष्णा चतुर्थी कुल-नक्षत्र-वार से या केवल भौमवार से युक्त हो, तो 'बाल-रात्रि' होती है। अमावास्या भौमवार को हो और कुल-नक्षत्र से युक्त हो तो 'कृष्ण-रात्रि' कही जाती है, जो अक्षोभ्य को प्रसन्न करती है। पौष-माघ की अमावास्या श्रवण नक्षत्र से युक्त हो, तो 'धर्म-रात्रि' होती है। अमावास्या भौम, सोम, शुक्र, गुरु या रविवार को हो और कुल-नक्षत्र से युक्त हो, तो 'दिव्य माण्डलिक योग' होता है। माघ शुक्ला सप्तमी सौरी-तिथि कही गई है, उसमें जप-होमादि करे। वह रविवार को हो और कुल-नक्षत्र से युक्त हो, तो 'महा-सौरी' कहलाती है, जो तीनों लोकों को उत्पन्न करने की क्षमता रखती है। प्रति मास की सप्तमी यदि रविवार को हो, तो 'हंसी' तिथि कही जाती है, जो मोक्ष-दायिनी है। प्रतिमास की बुधाष्टमी को 'विष्णु-रात्रि' होती है, विशेष कर

भाद्रपद मास में। माघ शुक्ला पञ्चमी शुक्रवार को हो, तो वह 'वसन्त-पञ्चमी' काम-संजीवनी तिथि कही जाती है, जिसमें आरती, जप, होम, कीर्तन-नर्तन आदि विशेष फलदायक होते हैं। श्रावण पूर्णिमा को पवित्रारोपण और दश-विधि रक्षा-कर्म करे। चैत्र पूर्णिमा के दिन मदन-पूजा करे।

प्रति विद्या के अनुसार कथित 'योग' में विशेष पूजन करे। इस प्रकार 'योग'-काल में पूजा करने से अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है।

चौदहवाँ पटल : तारा-कल्प की अङ्गभूत सिद्धियाँ

श्रीदेवी ने कहा—हे महा-देव ! त्रैलोक्य-तारिणी तारा किस प्रकार सिद्धि प्रदान करती हैं ? श्रीमहा-दक्षिणा काली हमें क्या सिद्धि देती हैं ? यह सब मुझे बताइए।

श्रीशिव ने कहा—यह अति रहस्यमय विषय बताता हूँ, सुनो। 'मधुमती' नाम की सिद्धि तुम्हारी आज्ञा से उत्पन्न हुई। तुम्हारे सान्निध्य से काली-तारा-मय धाम हुआ है। उक्त 'मधु-मती सिद्धि' को श्रीविद्या ने मुख दिया, काली ने दोनों हाथ, तारा ने अँगुलियाँ और भुवनेशी ने हृदय-कमल। छिन्ना ने उसे दोनों चरण, मातङ्गी ने दोनों नेत्र, लक्ष्मी ने ललाट, सिद्ध-विद्या ने केश और ब्रह्मास्त्र-विद्या (बगला) ने दोनों गुल्फ प्रदान किए। बाला ने मुख की मुस्कान और अश्व दिया। श्री ने रुचि और धूमावती ने निग्रह-शक्ति प्रदान की। इस प्रकार सब देवों के अंश से तेजो-राशि से उत्पन्न हुई 'महा-मधुमती' त्रैलोक्य का आकर्षण करनेवाली परा-सिद्धि-शक्ति है। पार्वती, अरुन्धती, दुर्गा, मृत-संजीवनी और परा शक्तियाँ सबका आकर्षण उसके द्वारा करती हैं। काली-तारा-मय धाम में उसका आविर्भाव हुआ। वह 'पायस' (खीर) से परम सन्तुष्ट होती है। यह 'महा-मधुमती' विद्या भैरव, वेताल, किन्नर, देवादि का आकर्षण करती है। त्रैलोक्य का आकर्षण करनेवाले उसके मन्त्र को बताता हूँ।

'प'-वर्ग का पाँचवाँ = 'म' पावक (अग्नि)—'र' से युक्त, नाद-विन्दु—'ँ' से विभूषित और महा-काम-कला—'ई' से युक्त होकर एकाक्षरी कला, '**म्रीं**' कही गई है।

ॐ मधु-मतीं स्थावर-जङ्गमाकर्षणीं ठः ठः स्वाहा (१८)

यह त्रैलोक्य का आकर्षण करनेवाली अठारह अक्षरों की परा-विद्या है। इसके ऋषि कामदेव, छन्द निवृद्-गायत्री, देवता मधु-मती, बीज ह्रीं, शक्ति स्वाहा और विनियोग स्थावर-जङ्गमाकर्षण के लिए कहा है। बीज को षड्-दीर्घ कर अर्थात् 'ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः' से क्रमशः कर और षडङ्ग न्यास करे। ध्यान निम्न प्रकार करे—

गौरांगीं शरदिन्दु-सुन्दर-मुखीं पीतांशुकां पीवराम्,
प्रोत्तुङ्ग-स्तन-मण्डल-प्रविलसज्जाम्बू-नदैकावलीम् ।
श्वेतोत्तुङ्ग-तुरङ्गगां त्रि-नयनां पीताङ्ग-राग-स्रजाम्,
ध्यायेत् पायस-लालसां मधुमतीं दोर्भ्यां दधानां सृणिं ॥

गौर-वर्णा, शरद्-कालीन चन्द्र के समान सुन्दर मुखवाली, पीली साड़ी पहने, पुष्ट एवं उन्नत पयोधरा, श्वेत-वर्ण अश्व पर आसीना, त्रि-नेत्रा, पीले पुष्पों की माला धारण करनेवाली, खीर-लुब्धा मधु-मती देवी को दोनों हाथों में खड्ग लिए ध्यान करे।

भगवती काली के पूजन-विधान के अनुसार दिग्-बन्ध, भूतशुद्धि आदि कर्म करे। इस देवता के सम्बन्ध में यन्त्रावरण-पूजा की विधि नहीं है। केवल पूजन करे। सारी विधि त्रि-शक्तियों की पूजा के समान है। विशेष यह है कि उक्त प्रकार ध्यान कर सर्वाकर्षण-कारिणी विद्या के पुरश्चरण की सिद्धि के लिए उसका सत्तर हजार जप करे। मन्त्र के सिद्ध होने पर सिद्ध चर्या करे। यथा—

एक वर्ष तक केले के वन में रहता हुआ पायसान्न खाकर निरन्तर मन्त्र का जप करे। तब वीर-साधन के अनुसार एक लाख जप करे। फिर प्रत्यक्ष दर्शन के लिए सत्तर हजार जप करे। केले के पत्ते पर पायस (खीर) और घी-शक्कर का भोजन करे। एकान्त स्थान में आलस्य-रहित होकर जप करे। गन्धर्व-वेश धारण करे। पायस के दो भाग करके उसे ग्रहण करे। उसकी विधि यह है कि एक केले के पत्ते पर 'ह्रीं' लिखे। प्रथम सप्तक (सात हजार जप का पुरश्चरण) सम्पन्न होने पर शान्ति होती है। द्वितीय सप्तक के होने पर प्रतिमा की आभा स्वर्ण-जैसी होती है और तृतीय सप्तक के पूर्ण होने पर देवी साक्षात् होकर पायस को खाती हैं और साधक के अभीष्ट वर को प्रदान करती हैं। वे साधक के साथ अहर्निश रहने लगती हैं। वे सागर, सुमेरु पर्वत, पाताल, इन्द्र-लोक, श्री शैल आदि दूरस्थ

स्थानों से अलभ्य वस्तुओं को आकृष्ट करती हैं। नदी, पुरी और रत्नों को क्षण भर में आकर्षित कर लेती हैं। रहस्य—गोपनीय बातों को, चाहे वे शासक की हों या शत्रु की, साधक को बता देती हैं। ऐसी त्रैलोक्याकर्षणी विद्या जिस किसी को न देना चाहिए।

'वटुक ! इमां गृहाण त्वं सिद्धिदो मेऽस्तु सर्वदा'—

यह साधन का मन्त्र-भेद है, जो संक्षेप में कहा गया है।

पन्द्रहवाँ पटल : मधुमती-सिद्धि की विधि

श्री देवी ने कहा—मैं अन्य मन्त्रों का साधन सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—(१) आदि-बीज 'श्रीं' से एकाक्षरी विद्या (मन्त्र) बनती है। (२) 'ठ-युग्म' अर्थात् 'ठः ठः' जोड़ने से तीन अक्षर की विद्या 'श्रीं ठः ठः' होती है। (३) 'ठः ठः' को हटाकर 'स्वाहा' जोड़ने से दूसरी त्र्यक्षरी विद्या 'श्रीं स्वाहा' द्वारा कामदेव ने उपासना की। इसी प्रकार अन्य मन्त्र निम्न प्रकार हैं—

४ पञ्चाक्षरी—श्रीं मधुमति ! (पञ्चार्णा)
५ सप्ताक्षरी—श्रीं मधुमति ! ठः ठः। (मुनि-प्रिया)
६ द्वितीय सप्ताक्षरी—श्रीं मधुमति ! स्वाहा। (ऋषि-पूजिता)
७ षडक्षरी—मधुमति ! ठः ठः। (सकलार्थदा)
८ द्वितीय षडक्षरी—मधुमति !स्वाहा। (सर्वाकर्षण-कारिणी)
९ दशाक्षरी—श्रीं स्थावर-जङ्गमाकर्षणी। (विश्व-रूपिणी)
१० एकादशाक्षरी—स्थावर-जङ्गमाकर्षणी ठः ठः। (रुद्रार्णा)
११ विद्याद्या—स्थावर-जङ्गमाकर्षणी स्वाहा।
१२ महाविद्या—श्रीं स्थावर-जङ्गमाकर्षणी मधुमती ठः ठः।
१३ सिद्ध-विद्या—श्रीं स्थावर-जङ्गमाकर्षणी स्वाहा।
१४ परा कला—श्रीं मधुमति !स्थावर-जङ्गमाकर्षणी।
१५ परा —श्रीं मधुमति !स्थावर-जङ्गमाकर्षणी ठः ठः।
१६ परा—श्रीं मधुमति !स्थावर-जङ्गमाकर्षणी स्वाहा।
१७ परा—श्रीं मधुमति !स्थावर-जङ्गमाकर्षणी ठः ठः स्वाहा।
१८ विद्यान्या—श्रीं ठः ठः स्वाहा।
१९ सर्वार्थदा—मधुमति !ठः ठः स्वाहा।
२० सर्वाङ्ग-सुन्दरी—श्रीं स्थावर-जङ्गमाकर्षणी ठः ठः स्वाहा।
२१ परा—मधुमति !स्थावर-जङ्गमाकर्षणी ठः ठः।

२२ परा—मधुमति ! स्थावर-जङ्गमाकर्षणी ठः ठः स्वाहा ।
२३ शिवसुन्दरी—मधुमति ! स्थावर-जङ्गमाकर्षणी स्वाहा ।

इस प्रकार मूल-मन्त्र को लेकर २४ भेदवाली परमा कला कही गई है । बाला, मधुमती और सुन्दरी के मन्त्र भिन्न हैं । निधि-सिद्धि के तीन भेद कहे हैं । इस प्रकार त्रैलोक्याकर्षणी परा-विद्या के तीस भेद कहे हैं ।

निर्जन केले के वन में रात्रि के प्रारम्भ में जाये । शुभ लग्न, शुभ दिन में कामनानुसार सङ्कल्प करे । यथा—

अष्टादशाक्षरस्यास्य महा-मधुमती-मनोः मन्त्र-सिद्धयर्थं अद्य-प्रभृति एक-विंशति-दिवसान्तं जप-रूपं पुरश्चरणमहं करिष्ये ।

पहले दोनों षडङ्ग (करन्यास, अङ्गन्यास) करके ध्यान करे और पूजन करे । फिर गो-दुग्ध की खीर बनाकर उसका आधा भाग केले के पत्ते पर रखे और निम्न मन्त्र से उसे निवेदित करे—

ॐ मधुमत्यै स्वाहा

फिर आचमन कराकर, ताम्बूल देकर प्रणाम करे और शेषार्द्ध खीर को अलग पत्ते पर रख कर स्वयं खाये । रक्त-पुष्पमाला, दिव्य वस्त्रादि से गन्धर्व वेष धारण कर प्रतिदिन तीन हजार, तीन सौ चौंतीस जप करता हुआ इक्कीस दिन तक जप-पुरश्चरण करे । उसे देवता वरदायिनी होती है । वटुक की उपासना साथ-साथ करने से सिद्धि मिलती है, अन्यथा नहीं । श्री तारा और कालिका के उपासक इस विद्या को सिद्धि करके सिद्धि पाते हैं, अन्यथा नहीं ।जो जो कामना वे करते हैं, उन्हें क्षण मात्र में यह पूरी करती है । यह परा-विद्या सबका आकर्षण करनेवाली सब कुछ देती है । कुबेर, शङ्कर, विष्णु, पार्वती, अरुन्धती और दश-महा-विद्याओं को यह तुरन्त आकृष्ट करती है । समुद्रों, द्वीपों, सिद्ध-यक्ष, महासर्पों और न सुनी हुई अकल्पनीय वस्तुओं को भी क्षण मात्र में यह आकर्षित करती है । किन्नरों, राक्षसों, निधियों को, सुमेरु और कैलास को यह तुरन्त आकृष्ट करती है । त्रिकाल ज्ञान को और सब कुछ यह साधक को बता देती है और सावधान करती है । यह त्रैलोक्याकर्षणी विद्या परम गोपनीय है ।

सोलहवाँ पटल : क्रम-दीक्षा का विवेचन

देवी ने कहा—हे देवेश ! मैं क्रम-दीक्षा का विवेचन सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण विषय से भी अधिक रहस्य-मय है। तथापि कहता हूँ, सुनो। षट्-शाम्भव-क्रम से षट्चक्रों का भेदन कर देह-विज्ञान और पर-काया में प्रवेश करने का ज्ञान प्राप्त करने से 'मेधा-दीक्षा' होती है। यह हादि-क्रम में कहा है।

कादि-क्रम में राज्ञी के बाद महा-राज्ञी हैं। फिर महा काम-कला काली के बाद गुह्य-काली हैं, जो 'सकला' और 'निष्कला'-रूप से दो प्रकार की हैं। दश-वक्त्रा 'सकला' कही गई हैं, जो वशिष्ठोपासिता हैं और १ उग्रा, २ सौम्या, ३ महा-क्रूरा—इन तीन रूपों वाली हैं। 'निष्कला' गुह्यकाली हैं। इनसे साम्राज्य-दायिनी मेधा-दीक्षा होती है।

तीसरी दीक्षा दिव्य साम्राज्य-मेधा कही गई है। सिद्धि और ऋद्धि के क्रम से अनेक भेद हैं। छिन्नमस्ता की विधि में 'विद्या-राज्या' नाम की दीक्षा कही है।

सबसे बाद में श्री दिव्य-सर्व-साम्राज्य-दीक्षा होती है।

दश-विद्याओं के भेद, महा-विद्याओं के भेद और सिद्धि-विद्याओं के भेद से महा-मन्त्र होते हैं। उनके अङ्ग-मन्त्र, दश-शाबर, काल--शाबर, सिद्ध-शाबर मन्त्र और तीन प्रकार के दर्शन-मन्त्र तथा आम्नाय क्रम से उत्पन्न मन्त्र, कादि-हादि-कहादि मत से और ऊर्ध्वाम्नाय से कलियुग में जो मन्त्र प्रकट होते हैं, इनके सिवा पञ्चायतन के मन्त्र तथा अन्य मन्त्र-जाल जो हैं, उन सबका अधिकार इस दीक्षा-विधि से मिल जाता है। इस दीक्षा से युक्त साधक साक्षात् श्री कालिका-स्वरूप हो जाता है।

आठ प्रहरों के क्रम से दश-विद्या के स्वरूप को धारण करनेवाला साधक होता है। भेदों सहित 'काम-कला' नाम की विद्या, वृत्ति-देवता, उसके अङ्ग-मन्त्र तथा अन्य सभी मन्त्र उसके मुख में सदा रहते हैं। 'क्रम-दीक्षा' पाँच विद्याओं में कही है। अङ्ग-मन्त्र, गायत्री और कुल्लुका-पञ्चक अन्य विद्याओं की विधि में कहे हैं।

'क्रम-दीक्षा' के बिना जो अधम साधक मन्त्र-जप करता है, वह दरिद्र और लक्ष्मी-हीन होकर निन्दनीय होता है। अन्धा, काना, दुर्बल, कुबड़ा, लँगड़ा, कुष्ठी, सब रोगों से पीड़ित होकर चिन्ताओं से व्याकुल रहता है। अथवा देवता का शाप पाकर पागल होता है।

'क्रम-दीक्षा' से युक्त साधक निश्चय ही महान् वैभव-शाली होकर सभी सिद्धियों से सम्पन्न होता है। तीनों कालों का ज्ञाता होकर वह राज-राजेश्वर और महा-काल के समान होता है।

गुरु से हीन होने से, क्रम को छोड़ने से, सम्प्रदाय से अलग होने से दरिद्रता पहले आती है, इसमें सन्देह नहीं। जहाँ चिन्तामणि गृह है, जहाँ रत्नों का मन्दिर है, नव-रत्नों का सोपान है और सर्वैश्वर्य से युक्त गृह है; जहाँ कल्पवृक्ष है, पारिजात का वन है और स्पर्श-मणि का प्राकार (चारदीवारी) है, वहाँ दरिद्रता कभी नहीं आ सकती।

'क्रम' से विहीन साधक को पग-पग पर दारिद्र्य का सामना करना पड़ता है। अतः क्रम से सम्पन्न गुरुदेव को पाकर उनसे 'क्रम' देने की प्रार्थना करे अन्यथा गुरु की मूढ़ता से शिष्य दरिद्रता को प्राप्त करता है या अल्पायु होता है, इसमें सन्देह नहीं।

सत्रहवाँ पटल : सूत्र का निर्णय

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! पहले जो रहस्य की बात आपने कही है, उसे अब कहिये।

श्री शिव ने कहा—जो रहस्य की बात किसी को नहीं बताई है, उसे कहता हूँ, हे देवि ! सुनो। १ उत्सर्जन २ उपाकर्म, ३ पवित्रा-रोपण को विधिपूर्वक करके ४ रक्षा-बन्ध को करे। साधक इन कर्मों को क्रमशः सदैव करे या करवाये।

चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन 'मदनारोपण' करे। श्रावण मास के आने पर 'पवित्रारोपण' की क्रिया करे। जो साधक ऐसा नहीं करता, उसकी सभी क्रियायें निष्फल होती हैं। वर्ष भर किये जाने-वाले जप, होम, पूजादि सत्क्रियायें इनके बिना नष्ट हो जाती हैं। अतः इन्हें अवश्य करे।

हे महेशानि ! पहले नित्य-कर्म करे, तब नैमित्तिक कर्म करना चाहिये। 'उपाकर्म' नित्य-कर्म के समान कहा गया है। 'पवित्र' नामक कर्म नैमित्तिक कर्म है और 'रक्षा'-विधि काम्य-कर्म है। जहाँ दो नैमित्तिक कर्म होते हैं, वहाँ अन्तिम कर्म 'काम्य' कहा जाता है और जहाँ दो काम्य कर्म होते हैं, वहाँ आदि कर्म निमित्तज माना जाता है। इसी प्रकार जहाँ दो नित्य कर्म होते हैं, वहाँ अन्तिम 'काम्य-नित्य' कहा जाता है।

'उपाकर्म' के बाद नित्य-पूजा' करनी चाहिये। तब 'पवित्र-पूजा' कर 'रक्षा'-विधि करे। दोनों सूतकों में, ग्रहण-काल में, संक्रान्ति में और भाद्रपद मास में 'उपाकर्म' करना चाहिए। भाद्रपद की पञ्चमी, दशमी और चतुर्दशी के दिन 'पवित्र-रक्षण शान्ति' कर्म अवश्य करे। पूर्णिमा के दिन, कुल-योग होने पर और ग्रहण के समय विशेष कर 'रक्षा'-योग करे।

'सूत्र' रेशम, स्वर्ण, कुश, लोम, रत्न, रौप्य, ताम्रादि का बनता है। ढाई या साढ़े तीन या एक ग्रन्थि का बनाए। ढाई ग्रन्थि का सूत्र 'नाग-पाश', साढ़े तीन ग्रन्थि का 'ब्रह्म-ग्रन्थि' और एक ग्रन्थि का सूत्र 'चन्द्र-ग्रन्थि' कहा जाता है। 'ग्रन्थि' बनाकर ग्रन्थि-देवता की पूजा करे। वैष्णवों के लिये सूत का, शैवों के लिए रेशम का और शक्ति-मन्त्रोपासकों के लिये स्वर्ण का सूत्र बताया गया है। पञ्च-सिद्धि की विधि में रत्न का सूत्र कहा है।

वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण, अष्ट-दल, नव-कोण, दश-कोण, एकादश-कोण, द्वादशार, चतुर्दशार, षोडशार आदि में से कोई यन्त्र बनाए। मध्य में यन्त्र रहे और उसके चारों ओर विविध रत्न जड़े हों। इस प्रकार के यन्त्र को 'पवित्र-रक्षण' के क्रम से धारण करे। स्वर्णादिक में शृङ्खला-रूपी ग्रन्थियाँ होती हैं। उत्तमादि क्रम से माणिक्य, हीरक, वैडूर्य, गोमेद आदि रत्नों को ग्रहण करे। सब कार्यों की सिद्धि के लिए श्रीविद्या, कालिका, तारा, छिन्ना, मातङ्गी, भुव-नेश्वरी और कमला की विधि से इन यन्त्रों को लिखना चाहिए।

चतुर्दल में चार वर्णों के मन्त्र को लिखे। जितने दल या कोष्ठ हों, उतने ही विद्या के अक्षर होना चाहिए अथवा केवल बीज को ही लिखे। पवित्र-मन्त्र या आपदुद्धारक-मन्त्र या मूल-विद्या से रक्षा-बन्धन करे, जिससे सभी प्रकार की रक्षा होती है।

श्वेत, रक्त, पीत, नील, हरित, कर्बुर (कबरा) या बहु-रङ्गी—जैसा योग हो, वैसा सूत्र ग्रहण करे। कामना-भेद से सूत्रों का रङ्ग होता है। प्रत्येक विद्या की विधि में 'पवित्रारोपण' और 'रक्षा'-कर्म होते हैं। अष्ट-गन्ध, अगरु-सार, और पुष्प-सार से बने सूत्र कहे गए हैं। यह बड़ा रहस्य-मय विषय है। 'रक्षा' को धारण करनेवाले साधक को सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और उसकी सभी वाञ्छायें पूरी होती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

अठारहवाँ पटल : क्रम-दीक्षा में पवित्रारोपण

श्री शिव ने कहा—पूर्णाभिषेक-दीक्षादि से युक्त साधकों के लिए भी 'पवित्रारोपण' रक्षा के साथ कहा है। तुरन्त अधिवासन या पहले ही अधिवासन कर सब कामनाओं की सिद्धि के लिए 'पवित्र'-कर्म करना चाहिए।

श्रावण की पूर्णिमा के दिन दश प्रकार की रक्षा करे—१ गो-रक्षा, २ हय (अश्व) रक्षा, ३ गज-रक्षा, ४ जन-रक्षा, ५ देश-रक्षा, ६ गृह-रक्षा, ७ धन-रक्षा, ८ बाल-रक्षा, ९ क्षेत्र-रक्षा और १० सर्व-रक्षा। दोनों पक्षों की पञ्चमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा के दिन में पहले 'उपाकर्म' कर 'पवित्र' धारण करे, तब 'रक्षा-बन्ध' करे। इस प्रकार क्रमशः तीन कर्म करे। चतुर्थी को 'अधिवास' गणेश में कहा है। पञ्चमी में 'धारण' करे, मातृका में 'अधिवास'। दशमी में 'धारण' और सप्तमी में 'अधिवासन' करे। अष्टमी में पूजन करे और सौर में 'धारण'। अष्टमी में 'अधिवास' और नवमी में 'धारण' करे। शक्ति-उपासना का यह क्रम है, अब पाञ्चरात्र का क्रम सुनो—

नवमी में 'अधिवास' कर दशमी में 'धारण' करे। वैष्णव-क्रम में द्वादशी और त्रयोदशी में 'धारण'-कर्म होता है। शैव-कर्म में चतुर्दशी में 'अधिवास' और पूर्णिमा में पूजन करे। राजाओं के लिए स्वर्ण-सूत्र, क्षत्रियों के लिये रौप्य-सूत्र और द्विजों के लिये सामान्य सूत्र प्रशस्त हैं।

प्राचीन काल में पार्वती ने कार्तिकेय के लिए 'रक्षण' किया था, शची ने देवेन्द्र की विजय और वृत्तासुर के नाश के लिए इसे किया था। महा-विद्याओं द्वारा वटुक की रक्षा की गई थी। क्षत्रिय राजा नहुष 'उपाकर्म' कर 'पवित्रारोपण' में स्थित था कि मार्ग में 'रक्षा'-हीन होने से बुद्धि-भ्रष्ट हो गया।

रक्षा-बन्धन मात्र से बारह मास तक व्यक्ति का रक्षण होता है। न करने से मति भ्रष्ट होती है। अङ्क-यन्त्र हो, बीजाङ्क-यन्त्र हो या अङ्क-बीज यन्त्र हो—सभी से रक्षा होती है। वैदिक संस्कार ही 'उपाकर्म' कहलाता है और गृहीत वेद-मन्त्र का रक्षण 'पवित्र'-कर्म कहा जाता है, उसके अधिष्ठाता के रक्षार्थ 'रक्षा-बन्धन' बताया गया है। अतः प्रयत्न करके 'रक्षा-बन्धन' करना चाहिये। रक्षा के बिना वर्ष भर में की गई सारी क्रियायें निष्फल होती हैं और देवता विमुख

हो जाती है। अतएव सर्वस्व देकर भी 'रक्षा-बन्धन' करे। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—क्रमशः ये तीन कर्म कहे गए हैं।

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! 'पवित्रारोपण' और 'मदनारोपण' कर्मों को बताइये।

श्री शिव ने कहा—आषाढ़ उत्तम, श्रावण मध्यम और भाद्रपद हीन माना गया है। शुक्ल पक्ष प्रशस्त है, उसमें सम्भव न हो, तो कृष्ण-पक्ष में करे। पञ्चमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, द्वादशी, चतुर्दशी या पूर्णिमा तिथि ग्रहण करे। रेशम या कपास के सूत्र को त्रिगुणित कर उसे निर्मल जल से धोये। फिर पश्चिम-मुख के मन्त्रों से उसका शोधन कर पवित्राओं को मनोरम बनाए। १०८ बार जप करना श्रेष्ठ है, उसका आधा मध्यम और आधे का आधा कनिष्ठ कोटि का माना गया है। पूर्वोक्त तन्तु या द्रव्य-भेद के अनुसार सविधि ग्रन्थि प्रदान करे। उत्तर-मुख के मन्त्रों से दस ग्रन्थियाँ दे। कुंकुमादि से उसे चित्र-विचित्र करे। पवित्र दान के दिन पूर्वोक्त अधिवास करे या तुरन्त ही अधिवासन कर रात्रि में साधकों के साथ नित्य-पूजा करे। ऊर्ध्व-सिंहासन के मन्त्रों से वामावर्त क्रम से सूत्र-पात करे। स्तव से प्रार्थना कर अवगुण्ठन-मुद्रा से रक्षा करे। पूर्वादि दिशाओं में अश्वत्थ-पत्र के बने पात्रों में पवित्र सूत्र-भाजन को छोड़े। त्रि-सूत्र में ब्रह्मा, बिष्णु और ईशान का पूजन कर सूत्रों की ग्रन्थियों में स्थित देवताओं—१ कृपा, २ पौरुषी वाणी, ३ गायत्री, ४ अपराजिता, ५ विजया, ६ जया, ७ मुक्तिदा, ८ सदाशिव, ९ मनोन्मनी और १० सर्वतोमुखी का षोडशोपचारों से पूजन करे। मूल-मन्त्र से आमन्त्रित कर पवित्रों में कलाओं की पूजा करे।

श्री विद्या में षोडश नित्याओं की, तारा में अष्ट-ताराओं और अष्ट-वाणियों की तथा काली में काली आदि नित्याओं की पूजा उक्त कलाओं के स्थान में करे। इस प्रकार 'अधिवास'-विधि कही गई है। तब आराधना करे। नित्यार्चन के बाद नैमित्तिक कर्म होता है। पवित्रा-अर्चन कर कन्याओं को भोजन कराये। तब वस्त्रालङ्कार, गो, धनादि यथा-शक्ति गुरुदेव को देकर उनका पूजन करे और उन्हें देवी-रूप समझे। गुरु-पूजा के बिना सभी क्रियायें निष्फल होती हैं। यदि वे उपलब्ध न हों, तो उनके पुत्र की, पुत्र न हो, तो उनकी पत्नी की और वह भी न हों, तो उनके पौत्र, दौहित्र की पूजा करे। ये सब

कोई न हों, तो गुरु के गोत्र में उत्पन्न दीक्षा-प्राप्त अन्य व्यक्ति की पूजा करे। तभी ये क्रियायें सफल होंगी। अन्त में चक्रार्चन-पूर्वक अग्नि में पूर्णाहुति देकर पवित्रक को दग्ध करे। अग्नि में पूजन न करने से धर्म-कार्य निष्फल होता है।

उन्नीसवाँ पटल : उपाकर्म, पवित्रारोपण और रक्षा की विधि

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! मैं प्राचीन इतिहास को सुनना चाहती हूं।

श्री शिव ने कहा—प्राचीन काल में पृथ्वी के अनेक ऋषियों, महापुरुषों ने सिद्धि प्राप्त की। यथा—पौरव, वृहदश्व, सोमदत्त, वृहद्रथ, अजमीढ, कार्तवीर्य, भद्रसेन, पुरुरवा, पृथुग्रीव, रन्तिदेव, मान्धाता, नहुष, रघु, विदूरथ, भरत, दिवोदास, प्रतर्दन, कृशाश्व, जमदग्नि, जैगीषव्य, देवल, पैठीनसि, वीतिहव्य, कश्यप, भृगु, अङ्गिरा, सम्वर्त्त, वसिष्ठ, अत्रि, व्यास, शातातप, उद्दालक, भारद्वाज, जाबाल, जैमिनि। इन्हें सातों द्वीपों का स्वामित्व और चक्रवर्ती राज्य प्राप्त हुआ तथा ये दीर्घजीवी हुये। योग-सिद्धि, तपो-सिद्धि और शापानुग्रह की शक्ति मिली। तीनों लोकों का स्वामित्व इनके हाथ में था।

कृत-युग में दिति के पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष और विन्द्युमाली तीन भाई हुए। उन्होंने अयुत वर्षों तक घोर तपस्या की। अतः प्रजापति ने उन्हें सभी प्राणियों से अवध्य होने का वर दिया, इस शर्त के साथ कि वे किसी एक उपाय के द्वारा अपना वध किया जाना स्वीकार कर लें। इस पर उन्होंने कहा कि हममें से प्रत्येक अलग-अलग एक पुर में रहता है। इन तीनों पुरों को एक ही वाण यदि भेदन करता हुआ उन्हें दग्ध कर सके, तो वही हमारी मृत्यु सिद्ध होगा। ब्रह्मा जी 'ऐसा ही हो,' कहकर अपने लोक को चले गये। तदनन्तर ताराक्ष सबसे ऊपर स्थित अपनी स्वर्ण-पुरी में, कमलाक्ष अपनी रजत-पुरी में और विद्युन्माली अपनी लौह-पुरी में सुरक्षित होकर रहने लगे। युद्ध-पिपासु दानवों के सहित उन्होंने देवताओं पर आक्रमण किया और देवों को स्वर्ग-लोक छोड़कर इधर-उधर भागना पड़ा। लाचार होकर देवराज प्रजापति को आगे कर रुद्र की शरण में गए और पिनाक-धारी उमा-पति को दण्डवत् प्रणाम कर यह प्रार्थना की कि "तपस्या द्वारा ब्रह्मा से वर पाकर त्रिपुरों के असुर हमें बहुत सता रहे

हैं। पृथ्वी मनुष्यों से रहित हो गई है और अमरावती देवों से। सातों सागरों के रत्न उन्होंने हड़प लिए हैं। उनको नियन्त्रित करनेवाला तीनों लोकों में कोई नहीं है। आप उनका वध करके हमें पुनः स्वर्ग दिलाने की कृपा करें।" यह सुनकर वृषभ-ध्वज शङ्कर ने हँस कर कहा कि : "मेरे लिए रथ की रचना करो।" तब ब्रह्मा ने मुस्कराते हुए महेश्वर से कहा कि : "आपके चढ़ने योग्य रथ की रचना कौन कर सकता है ? अपने योग्य रथ, अस्त्र, कवचादि की रचना आप ही करें क्योंकि आपके समान बुद्धि अन्य किसी में नहीं है।" इस पर शङ्कर ने देवताओं को प्रसन्न करते हुये कहा कि : "चारों वेद अश्व-रूप हों और सारी पृथ्वी रथ-रूपा हो। सूर्य और चन्द्र उसके दो पहिए बनें। विन्ध्य-गिरि उस रथ की नाभि, कैलास उसका अक्ष (धुरी) और मेरु ध्वज का दण्ड हो। सारथि भगवान् ब्रह्मा बनें। धनुष-रूप मन्दर हो, वासुकि उसकी प्रत्यञ्चा और विष्णु बाण-रूप हों। यम, मृत्यु और काल बाण के फणों के बीच में स्थित रहें, कुबेर और वरुण दोनों बाण के पीछे हों।' इस प्रकार की व्यवस्था कर अपनी रक्षा के लिए शम्भु चिन्तित हुए। तीनों नेत्रों को बन्द कर उन्होंने ध्यानस्थ हो विश्व-तारिणी की प्रार्थना की। उन्होंने दश-विद्या-मयी 'त्रैलोक्य-विजया' नाम की दश-विधा रक्षा को, जो पृथ्वी पर 'स्तम्भनास्त्रा,' पाताल में 'आकर्षणास्त्रा' और वैरियों के बीच 'काली-तारा-छिन्ना-मुखा' कही जाती है, उक्त तीनों असुरों के नाश के लिए शङ्कर को प्रदान किया। तब सन्तुष्ट होकर वे त्रिपुर की ओर गए और पाशुपत अस्त्र का सन्धान कर एक ही बाण से उन्होंने तीनों पुरों को क्षण भर में भस्म कर उन दैत्यों का नाश कर डाला। तभी से 'रक्षा' की ख्याति सारे लोकों में हो गई।

विद्या से अभिमन्त्रित सूत्र को जो मनुष्य धारण करता है, उसकी रक्षा सभी दुष्टों से होती है। उसके प्रभाव से भयंकर विष और भूत-प्रेतादि बाधा तुरन्त नष्ट हो जाती है। दश-महाविद्याओं ने बटुक-भैरव के लिए इस 'रक्षा' का प्रकाश किया था। श्रावण मास में यह घटना घटित हुई थी। अतः प्रयत्न करके मन्त्राक्षरों से युक्त यन्त्र, पताका और सूत्र को बांधना चाहिए, जिससे सब प्रकार की 'रक्षा' होती है।

बीसवाँ पटल : मदनारोपण

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! मदनारोपण की क्रिया को मैं सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—पवित्रारोपण जैसे होता है, वैसे ही मदन का पूजन। चैत्रादि तीन मासों के शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में से जितने पहले का समय लिया जाय, वह उतना ही उत्तम होता है। अष्टमी, चतुर्दशी या पूर्णिमा की तिथि हो। पूर्व रात्रि में अधिवासन करे। वेदी के ऊपर चतुःकल्प-लतादि के साथ मदन का आवाहन निम्न मन्त्र से करे—

'काम-नेत्र-समुद्भूत ! रति-नेत्र-जलाप्लुत ! ऋषि-गन्धर्व-सिद्धानां विमोहक ! नमोऽस्तु ते। शिव-प्रसाद-सम्भूत ! अत्र सन्निहितो भव। शिवा-कार्यं समुद्धिश्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया।'

इस प्रकार मदन को आमन्त्रित कर वहाँ रति और काम का पूजन करे। मूल और पल्लव-सहित मदन (अशोक वृक्ष) को स्वयं उखाड़ लाये या अन्य किसी से उसे मँगवाये। उसे सर्वतोभद्र-कमल पर बायें हाथ से अष्ट-दलों के मध्यस्थ पात्र में स्थापित करे। फिर रति-मन्त्र से उसका पूजन करे—

'ॐ भुवनेशानि ! रतये नमः।'

तब काम-मन्त्र से पूजन करे। यथा—

'ॐ क्लीं कामाय नमः।'

इसके अष्ट-दल कमल के आठों दलों में से प्रत्येक में आठ मन्त्रों से आठ द्रव्यों के साथ पुटिका-न्यास करे। १ काम, २ भस्म-शरीर, ३ अनङ्ग, ४ मन्मथ, ५ वसन्त-सख, ६ स्मर, ७ इक्षु-धनुर्धर और ८ पुष्पवाण—इनमें से प्रत्येक के आदि में तार (ॐ) जोड़ ले। १ कपूर, २-३ दोनों रोचना, ४ कस्तूरी, ५ अगुरु, ६ कुंकुम, ७ धात्री-फल और ८ चन्दन—इस प्रकार सुगन्धि और फूलों से आठ द्रव्यों की कल्पना करे। गन्ध, पुष्पाक्षत से मदन की पूजा कर अनङ्ग-गायत्री का प्रसन्नतापूर्वक यथा-शक्ति जप करे—

'काम-देवाय विद्महे तन्नो अनङ्गः प्रचोदयात्।'

तब उन्हें निम्न मन्त्र से प्रणाम करे—

'नमोऽस्तु पुष्प-वाणाय जगदानन्द-कारिणे ।
मन्मथाय जगन्नेत्र-रति-प्रीति-प्रियाय च ॥'

तदनन्तर विज्ञापन-मन्त्र से त्रि-शक्तियों को प्रसन्न करे—

'आमन्त्रिताऽसि देवेशि ! सद्यः काले मया शिवे !
कर्तव्यं तु यथा-लाभं पूर्व-पूर्वं तवाज्ञया ॥'

गन्धाक्षत-पुष्पादि से देवी-पूजा कर प्रार्थना करे—

षोडशार्ण - जगन्मातर्वाञ्छितार्थ - फल - प्रदे !
कृत्यान् पूरय मे देवि ! कामान् कामेश्वरेश्वरि ॥'

फिर अवगुण्ठन कर अस्त्र मन्त्र से मदन को रक्षित कर जागरण करे। प्रातः उठ कर नित्य-पूजन कर नैमित्तिक पूजा करे। विधिवत नैवेद्य देकर कर्पूर-युक्त ताम्बूल प्रदान करे और यह प्रार्थना पढ़े—

'समस्त-चक्र-चक्रेशि ! सर्व-विद्या-शरीरिणि !
देव-मातर्ममैतत् तु भवत्विष्टं तवाज्ञया ॥'

तब अपने गुरुदेव का पुष्प, धूप, वस्त्रादि से पूजन कर उन्हें मदनक प्रदान कर नमस्कार करे। फिर साधकों के साथ जल-केलि कर अन्न-दान करे।

इस प्रकार जो मदनारोपण-क्रम करता है, उसकी यह वार्षिक पूजा तीनों शक्तियों को प्रसन्न करती है।

विशेष इतिहास पहले बताया है। अब सामान्य कहूँगा, जिससे सिद्धि मिलती है। मेरे तप को भङ्ग करने के लिये जब मदन आया और भस्म हो गया, तब रति और प्रीति बहुत दुखी हुईं। उनके नेत्रों के जल से मदन-लता उत्पन्न हुई, जिससे बड़ी सुगन्धि फैली। उससे सन्तुष्ट होकर मैंने वर दिया और रति-प्रीति के लिये मदन प्रकट हुआ। उस मदन से जो साधक पूजन नहीं करता, उसकी साम्वत्सरी पूजा मदन के लिए होती है। ऐसा वर मेरे द्वारा दिया गया है कि मदन-पूजा न करने से सारा फल काम को मिलता है। अतः मदन-पूजन पहले करना चाहिये। चैत्र मास की चतुर्दशी के दिन मदनारोपण होता है। उस दिन प्रातःकाल नित्यार्चन कर सिन्दूर से नव-कोणात्मक मण्डल बनाए। नव पात्रों को स्वर्ण, रौप्यादि से संस्कृत कर

स्थापित करे या एक ही सुन्दर कलश स्थापित करे। दाईं ओर मण्डल बनाकर अशोक वृक्ष को अङ्कित कर त्रिकोण-मण्डल बनाए। उसके मध्य में कामदेव का पूजन करे। पञ्च-बाण-धारी कामदेव की बाईं और दाईं ओर क्रमशः रति और प्रीति हों तथा वसन्त के साथ उसकी पूजा करे। इससे सब सिद्धियाँ मिलती हैं।

'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कामाय नमः'—

यह काम का नवार्ण मन्त्र है। रति का आठ अक्षरों का मन्त्र है—

'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं रत्यै नमः'।

इस मन्त्र में 'रत्यै' के स्थान पर 'प्रीत्यै' रखने से प्रीति का अष्टाक्षर मन्त्र बनता है। रति गौर-वर्णा है और प्रीति श्याम-वर्णा। माला और आभूषण दोनों पहने हैं। रति कमल-वर्णा है और प्रीति ताम्बूल-वर्णा। दोनों रक्त-वस्त्र-धारिणी हैं। वसन्त की पूजा कदम्ब-वन के मध्य में करे। वह गौर वर्ण है, बाएँ हाथ में सुधा-पूर्ण घट और दाएँ हाथ में विविध प्रकार के पुष्पों का गुच्छा लिए है। इस प्रकार अङ्गों सहित सर्व-देव-शरीरी कामदेव का पूजन कर धूप-दीप दिखाए। तब कुमारी-भोजन कराकर सुवासिनी स्त्रियों और योगिनियों का अर्चन करे। अन्त में ब्राह्मणों का पूजन कर हवन करे और गुरुदेव को स्वर्ण, वस्त्रादि से सन्तुष्ट कर 'मदनारोपण'-कर्म को सम्पन्न करे। ऐसा करने से साम्वत्सरी-पूजा सफल होती है।

इक्कीसवाँ पटल—कामधेनु आदि योग

श्री शिव ने कहा—हे प्रिये! सिद्ध-योग को बताता हूँ, सुनो। १ पत्नी, २ पुत्री, ३ दासी, ४ दास, ५ परि-वेत्ता, ६ पारि-वेत्ता—ये छः ताम्बूल देनेवाले व्यक्ति प्रशस्त हैं। म्लेच्छ, शत्रु और सन्देहास्पद व्यक्ति के हाथ से ताम्बूल नहीं लेना चाहिए। १ ताम्बूल-पत्र, २ सुपाड़ी-फल, ३ खदिर (कत्था), ४ चूने का चूर्ण, ५ मुख और ६ राग (लाली)—ताम्बूल के ये छः अङ्ग षडैश्वर्य दिलानेवाले कहे गए हैं। जहाँ षडैश्वर्य है, वहाँ लक्ष्मी सदा निवास करती हैं।

श्री देवी ने पूछा—ताम्बूल (नागवल्ली) की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इसे बताइये।

श्री शिव ने कहा—जनमेजय-यज्ञ के अन्त में अष्ट-नागों को भस्म-साद् कर हे देवि! शाप देकर सिस वृक्ष के फल खाकर नागों का

निर्मूलन कर दिया गया। उनके उद्धार के लिए मैंने स्वयं भैरव-रूप से दूती-याग किया। फलतः मेरे शरीर से पसीने की बूंदें गिरीं और उस यज्ञ की भस्म से मिलीं, जिससे मगध, बङ्गाल, कलिङ्ग, कर्नाटक, सौराष्ट्र, मालवा, केरल और समुद्र-तट पर 'नागवल्ली'-लता उत्पन्न हुई। इस प्रकार विभिन्न देशों में उत्पन्न नागवल्ली (ताम्बूल, पान) लता को स्थूल और सूक्ष्म भेद से विविध गुणोंवाली जानना चाहिए। ताम्बूल से, हे महा-देवि ! मन्त्र-सिद्धि प्राप्त करे। जो अपना कल्याण चाहता है, वह कभी ताम्बूल की शपथ न ले। ताम्बूल के बिना जो मन्त्र का दश बार जप करता है, उसे इस लोक में क्षोभ होता है और मरने पर नरक जाना पड़ता है। ताम्बूल के बिना दीक्षा आदि संस्कार निष्फल होते हैं।

साधक अकेले ही सम्बिदा के आनन्द में होकर केश खुले रखकर निर्वस्त्र हो अँधेरे घर में शय्या पर या श्मशान में बैठकर 'लता' को देखते हुए रात्रि में यदि जप करे, तो वह 'कल्प-लता' के समान अभीष्ट फल-दायिनी होती है।

सुनयना कुमारी बाला को लाकर उसका पूजन करे और रात्रि में बिना दीपक के अकेले मन्त्र का जप करे, तो वह 'कल्प-लता' के समान होती है।

हे महेशानि ! मङ्गल के दिन आधी रात के समय यत्न-पूर्वक बाला का पूजन कर चारों ओर दीपक जलाकर मध्य में यन्त्र का पूजन करे, तो वह 'कल्प-लता' के समान होती है। दीपावली में ऐसा ही करने से यही फल होता है।

शक्ति को बुलाकर उसके शरीर में न्यास-जाल का न्यास करे और उसे स्पर्श कर रात्रि में जप करे, तो वह 'कल्प-लता' होती है।

पुष्प-शय्या के मध्य में शक्ति को सविधि बिठाकर जप करे, तो वह 'कल्प-लता' के समान होती है।

शुभ-लक्षणों वाली बाला को लाकर उसके साथ रात्रि में जप करे, तो वह 'कल्प-लता' के समान होती है।

पर्वत में, वन में जाकर शक्ति को बुलाकर उसे सन्तुष्ट करे। फिर उसके साथ रात्रि में निरन्तर जप करे, तो वह 'काम-धेनु' के समान होती है और साधक सर्व-सिद्धियों का स्वामी होता है।

सुन्दरी बाला शक्ति को, जो शुभ लक्षणोंवाली हो, लाकर उसके शरीर में न्यासों को करे। तदनन्तर आवरण-देवताओं के सहित मूल-देवी की पूजा करे। उसके पैरों को धोये, मस्तक पर और केशों में सुगन्धित तैल लगाये। मार्जन, प्रोक्षण कर मूल-मन्त्र का जप करे। शक्ति के पैरों को जिस जल से धोये, उसी प्रक्षालित जल द्वारा साधक स्वयं स्नान करे, तो साधक त्रैलोक्य-विजयी होता है। शक्ति के मुख को देखते हुए जप करने से साधक तीनों लोकों का नायक होता है और उसके हाथ में अपना हाथ देकर जप करे, तो तीनों लोकों की सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं। तिथि-सिद्धि, जाप-सिद्धि, पीठ-सिद्धि, स्थिति-सिद्धि, द्रव्य-प्राप्ति आदि सिद्धियाँ उसके हाथ में रहती हैं।

रात्रि के आदि प्रहर की छः घटिकाओं को छोड़कर अन्त की छः घटिकाओं में नाड़ी-चतुष्टय में और नाड़ी-युग्म के मध्य में 'काम-धेनु' योग होता है, जो ब्रह्माण्ड में सिद्धि-दायक है। यह योग अति गोपनीय है।

श्री देवी ने कहा—हे देवेश ! मैं 'चिन्तामणि'-योग को सुनना चाहती हूँ।

श्री शिव ने कहा—हे महेश्वरि ! 'चिन्तामणि' और 'स्पर्श-मणि' इन दो योगों को सुनो। सुन्दर अङ्गोंवाली बाला को लाकर न्यास-जाल द्वारा उसे संशोधित करे। फिर ऊँचे पीठ पर उसे बिठाकर विधिपूर्वक जप करे, तो वह जप 'चिन्ता-मणि' के समान फल-दायक होता है। इसी प्रकार बाला को लाकर उसे विपरीत कर, अधोस्थित होकर साधक यदि विधिपूर्वक जप करे, तो वह जप 'स्पर्श-मणि' के समान सिद्धि-दायक होता है। ऐसा साधक जो कुछ मुख से कहता है, वह सत्य होता है।

विशेष : पुस्तक में लिखी साधना अनुभवी गुरुदेव की अनुमति लेकर ही करे, अन्यथा सफलता नहीं मिलती और अनिष्ट होता है।

उपसंहार

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल का सङ्कल्प था कि अप्राप्य तन्त्र-ग्रन्थों को हिन्दी-सारांश-सहित इस रूप में प्रकाशित किया जाय कि तन्त्र-प्रेमी जिज्ञासु व्यक्ति उनका अध्ययन सरलतापूर्वक कर सकें। उसी सङ्कल्प की पूर्ति के उद्देश्य से उनके द्वारा संग्रहीत पाण्डुलिपियों के आधार पर 'शक्ति-सङ्गम' तन्त्र का प्रथम 'काली-खण्ड' आधुनिक ढंग से सम्पादित कर प्रकाशित किया जा रहा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र' के अंशों को १७ वीं शती के आरम्भ में कृष्णानन्द आगम-वागीश ने अपने 'तन्त्रसार' नामक ग्रन्थ में और १८ वीं शती के अन्त में उमानन्दनाथ ने अपने 'नित्योत्सव' में प्रमाण-रूप में यत्र-तत्र उद्धृत किया है। इससे स्पष्ट है कि 'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र' कम से कम ४०० वर्षों पूर्व से इस देश में प्रचलित रहा है।

'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र' में दस वैष्णव सम्प्रदायों के नाम गिनाये गये हैं, जिनमें से निम्बार्क, रामानन्द, राधावल्लभ और हरिव्यास सम्प्रदाय का नामोल्लेख ध्यान देने योग्य है। निम्बार्क जी की मृत्यु ११६२ ई० में और रामानन्द जी का जन्म १३०० ई० में माना जाता है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक हरिवंश गोस्वामी का जन्म आगरा में १५०३ ई० में हुआ था। उन्होंने वृन्दावन में राधावल्लभ मठ की स्थापना १५८५ ई० में की। हरिव्यास सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हरिराम शुक्ल (हरिव्यास मुनि) का जन्म बुन्देलखण्ड में १५१० ई० में हुआ था और १५५५ ई० में वे वृन्दावन गये थे, जहाँ उन्होंने अपने सम्प्रदाय का सूत्रपात किया। इन ऐतिहासिक सम्प्रदायों का उल्लेख 'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र' में होने से यह अनुमान करना उचित ही होगा कि इस तन्त्र की रचना १५५५ ई० से १६०७ ई० के मध्य में हुई होगी। इस प्रकार इसकी प्राचीनता चार सौ वर्षों से अधिक ही सिद्ध होती है।

'शक्ति-सङ्गम-तन्त्र' कितना लोक-प्रिय रहा है, इसका प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि उसकी पाण्डुलिपियाँ देश के विभिन्न स्थानों में आज भी संगृहीत हैं। उदाहरण के लिये विजयानगरम्, मदुरा-स्थित रामनाथ मठ, बङ्गाल, नेपाल, वाराणसी, फैजाबाद, पंजाब,

अलवर, बीकानेर, बड़ोदा और पूना में इस तन्त्र की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। इंग्लैंड स्थित इण्डिया आफिस लाइब्रेरी और आक्सफोर्ड लाइब्रेरी में भी यह तन्त्र संग्रहीत है।

महा-महोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज ने अपने 'तान्त्रिक साहित्य' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ६११-१३ में इस तन्त्र की विविध पाण्डुलिपियों का रोचक परिचय दिया है। उसका सारांश यह है—

'१ इण्डिया आफिस पुस्तकालय, लन्दन की एक पाण्डुलिपि

यह अक्षोभ्य-महोग्रतारा (शिव-पार्वती) संवाद-रूप है। इसमें चार खण्ड हैं—१ काली, २ तारा, ३ सुन्दरी और ४ छिन्नमस्ता-खण्ड। पूर्ण तन्त्र में ६०,००० श्लोक हैं।

२ एशियाटिक सोसायटी, बंगाल की चार पाण्डुलिपियाँ

इनमें चार खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड का नाम स्पष्ट रूप से नहीं कहा है। तृतीय खण्ड के १० और ११ वें पटलों की पुष्पिका में क्रमशः 'तपस्या-खण्ड' और 'काली-खण्ड' नाम प्राप्त होते हैं।

३ राजेन्द्रलाल मित्र की एक पाण्डुलिपि

श्री मदक्षोभ्य-तारा-संवाद-रूप। ४ खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में २० पटल हैं।

४ बीकानेर पुस्तकालय की एक पाण्डुलिपि

यह मौलिक तन्त्र शाक्त सम्प्रदाय के सब विषयों का साकल्येन प्रतिपादक है। यह ६०,००० श्लोकात्मक है, ४ खण्डों में विभक्त है। प्रथम में २०, द्वितीय में ६५, तृतीय में १६, चतुर्थ में ११ पटल हैं।'

कविराज जी के अनुसार 'पुरश्चर्यार्णव' और 'प्राण-तोषिणी तन्त्र' में शक्ति-सङ्गम-तन्त्र के उद्धरण मिलते हैं।

प्राचीन तन्त्रों की भाषा और शैली सङ्केतात्मक है क्योंकि इस विषय में 'गोपनीयता' का पालन करना अनिवार्य है और पुराकाल में आचार्य-गण इस सम्बन्ध में विशेष सतर्क रहते थे। यही कारण है कि कहीं-कहीं वर्णित विषय विज्ञ पाठकों की भी समझ में नहीं आता!

काली-खण्ड का हिन्दी में जो सारांश पिछले पृष्ठों में दिया गया है, उससे जिज्ञासु बन्धुओं को इस तन्त्र के समझने में कुछ सहायता मिलेगी, ऐसी आशा है। साथ ही तन्त्र के आचार्यों को भी इसकी विस्तृत व्याख्या करने की प्रेरणा मिलेगी, यह भी अपेक्षा है। यदि ऐसा हुआ, तो हम अपने श्रम को सार्थक समझेंगे।

• • •

गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्रमाला–भाग १; १९८१

शक्ति-संगम-तन्त्र

(काली खण्ड)

सम्पादक

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग–६

अनुक्रमणिका

प्रथमः पटलः—ग्रन्थ-प्रवर्त्तनम् १

(चतुः-खण्ड-समायुक्तं शक्ति-संगम-नामाख्यं श्रीवृहत्-तन्त्रराजकम्, काली-तारा-सुन्दरी-छिन्नमस्ता - आविर्भावः, सृष्टेरुत्पादनम्, श्रीकाली-मायया कालस्य मोहः, दक्षिणा-महा-काल्या ज्ञान-प्रदानं, सार्द्ध-त्रिवलया कुण्डली, कुण्डलीतः विद्योत्पत्तिः, ऋषि-उपासक-निर्णयः, ब्रह्म-व्याख्या, शक्तेः प्रधानता, मन्त्र-योगेन ज्ञानम्)

द्वितीयः पटलः—काल-नित्या-विधिः १२

(ब्रह्माण्ड-वर्णनम्, ध्रुव-द्वय-समन्वितो भू-गोलः, काल-नित्या-निरूपणम्, त्रिदेवानां आयुः, स्वराट्-विराट्-सर्व-राट् चक्राणि, श्रीमहा-सुन्दरी, तारिणी परा, ब्रह्म-गोलके रचना, स्थूल-मानं, पारायण-क्रमम्)

तृतीयः पटलः—अष्टाष्टक-निरूपणम् २३

(अहर्गण-विज्ञानं, पीठ-निर्णयम्, ऋतु-षट्कम्, षट्-शाम्भव-क्रमः, शक्ति-पातः, शक्ति-पूजनम्, पात्र-भेदं, प्रणव-निर्णयम्, काम-कला-स्वरूपम्, गृह-वास्तुम्, प्रति-ग्रह-निषेधम्, सूतक-द्वयम्, संस्कार-दशकं, अष्टाष्टक-चक्रम्, स्त्री-महिमा)

चतुर्थः पटलः—पात्र-निर्णय-कथनम् ३५

(सम्प्रदाय-मार्गेण पात्र-ज्ञानं, केरल-काश्मीर-गौड-मार्गाः, धातु-भेदेन पात्र-विवेचनं, पात्रस्य आकार-

निर्णयं, संख्या-भेद-क्रमेण पात्र-निर्णयं, पूजन-तर्पण-बलिदान-विधिः)

पञ्चमः पटलः—ऋणि-धनि-चक्र-विनिर्णयम् ५०

(प्रपञ्चार्थं बहु-संख्यानि मतानि, शक्तेः परम्परा, ऋणि-धनि-चक्रम्, भक्ति-रूपं ऋणं, नाम-दानम्)

षष्ठः पटलः—नाम-विवरणम् ५६

(कादि-क्रमम्, पूर्णाभिषेक-विधिः, कुण्डादि-रचना, पञ्च-विधो वेधः, अभिषेक-महिमा, मेधा-दीक्षा)

सप्तमः पटलः—कादि-दीक्षा-विवरणम् ७४

(कादि-हादि-क्रमेण सम्प्रदाय-त्रयम्, केरल-भेदाः—१ ऋक्-केरली, २ श्री यजुः केरली, ३ श्री साम-केरली, ४ अथर्व-केरली; काश्मीर-भेदाः—१ ऋक्-काश्मीरः, २ यजुः काश्मीरः, ३ साम-काश्मीरः ४ अथर्व-काश्मीरः गौड-भेदाः—१ ऋग्-गौडः, २ यजुर्गौडः, ३ साम-गौडः ४ अथर्व-गौडः, सम्प्रदाय-भेदेन पूजन-तर्पण-विधिः)

अष्टमः पटलः—प्रदोष-विधिः ८०

(विष्णु-पाशुपतादीनां भेदाः, मुद्राधिकारिणः चतुर्विधा, मुद्रा, वेद-मूलाः क्रियाः, स्वधर्म-महिमा, व्रतादिकानां निर्णयः, प्रदोष व्रतम्, षट्-कर्म-विवरणम्)

नवमः पटलः—मेरु-संसाधनम् ८६

(पूजा-यन्त्रम्, पूजा-द्रव्य-भेदं, पञ्चानुकल्पाः, पञ्चामृतं, मेरु-भेदाः—१ न्यास-मेरुः, २ यन्त्र-मेरुः, ३ अग्नि-मेरुः, मेरु-प्रस्तारः, कैलास-प्रस्तारः, भू-प्रस्तारः, पञ्च-मेरवः—१ लय-मेरुः, २ योग-मेरुः, ३ नाद-मेरुः, ४ योगवीणा-मेरुः ५ कन्या-मेरुः, मेरु-द्वयं—१ मन्त्र-मेरुः, २ वर्ण-मेरुः, पूर्णाभिषेक-रहिते मेरु-संसाधन-निषेधः, दीक्षा-क्रमः, सर्व-मेरूणां फलम्)

दशमः पटलः—मेरु-कथनम् ९७

(मेरु-प्रस्तार-निर्णयम्—१ महाकाल-मतं, २ अक्षोभ्य-मतं, ३ नीला-मतं, ४ कराल-मतं, मण्डप-वर्धनं, पताका-तोरण-चत्वर - लक्षणम्, होम-द्रव्यम्, आचार्य-गुरु-ब्राह्मण-पूजनम्)

एकादशः पटलः—सिद्ध-मत-रहस्यम् १०३

(श्रीचक्र-क्रमेण नव-कुण्ड-विधिः, पूर्णाभिषेक-संयुक्त-स्याचारः, पूर्णाभिषिक्त-महिमा)

द्वादशः पटलः—सिद्ध-प्रयोगः १०८

(तारा-योग-महिमा, त्रि-विधं बलि-दानम्, वटुकोत्पत्ति-वर्णनम्, वटुक-महिमा)

त्रयोदशः पटलः—वीर-रात्र्यादि-निर्णयः ११५

(वीर-रात्रिः, महा-रात्रिः, काल-रात्रिः, मोह-रात्रिः, घोर-रात्रिः, क्रोध-रात्रिः, अबला-रात्रिः, तारा-रात्रिः, शिव-रात्रिः, दिव्य-रात्रिः, दारुणा-रात्रिः, सिद्धि-रात्रिः, पर्व-राजाभिधं पर्वम्, देवी-रात्रिः, गणप-रात्रिः, बाल-रात्रिः, कृष्ण-रात्रिः, धर्म-रात्रिः, विष्णु-रात्रिः, हंसी तिथिः, दिव्य-माण्डलिको योगः, काम-सञ्जीवनी बसन्त-पञ्चमी)

चतुर्दशः पटलः—तारा-कल्पाङ्ग-सिद्धिः ११९

(महा-मधुमती-सिद्धेः प्रादुर्भावः, मधु-मती मन्त्र-विधिः, त्रैलोक्याकर्षणी विद्या)

पञ्चदशः पटलः—मधु-मती-सिद्धि-विधिः १२२

(मधुमती-मन्त्र-भेदाः, बाला मधुमती, पुरश्चरण-विधिः)

षोडशः पटलः—क्रम-दीक्षा-विनिर्णयम् १२५

(मेधा-दीक्षा, साम्राज्य-दायिनी मेधा-दीक्षा, दिव्य-

साम्राज्य-मेधा-दीक्षा, श्रीदिव्य-सर्व-साम्राज्य-दीक्षा, क्रम-दीक्षा-महिमा, क्रम-हीनस्य फलम्)

सप्तदशः पटलः—सूत्र-निर्णयः १२८

(उत्सर्जनं, उपाकर्म, पवित्रारोपणं, रक्षा-बन्धः, मदनारोपणं, सार्ध-ग्रन्थि-द्वयं नाग-पाशः, सार्ध-ग्रन्थि-त्रयं ब्रह्म-ग्रन्थिः, रक्षा-यन्त्र-फलं, सूत्र-भेदाः)

अष्टादशः पटलः—क्रम-दीक्षा-पवित्रारोपणम् १३२

(दश-विधा-रक्षा-विधानं, उपाकर्म, पवित्र-धारणं, रक्षा-बन्धः, पाञ्चरात्र-क्रमं, इतिहास-त्रयं, पवित्र-दान-विधिः)

ऊन-विंश पटलः—उपाकर्म-पवित्रारोपण-रक्षा-विधिः १३७

(पुरातनं इतिहासं, त्रिपुर-वर्णनम्, दश-विद्या-मयी रक्षा, त्रिपुर-नाशः, रक्षा-महिमा)

विंशः पटलः—मदनारोपणम् १४३

(मदन-पूजा-विधिः, रति-मन्त्रः, काम-मन्त्रः, अनङ्गः-गायत्री, मदनारोपण-क्रमम्, काम-नवार्ण, अष्ट-वर्णा रति-मन्त्रः, प्रीति-मन्त्रः रति-प्रीति-ध्यानम्, साम्वत्सरी वसन्त-पूजा)

एक-विंशः पटलः—काम-धेन्वादि-योगः १४८

(समय-क्रमः, ताम्बूल-समयं, सिद्धि-योगं, ताम्बूल-षडङ्गम्, ताम्बूलोत्पत्ति-कथा, ताम्बूल-महिमा, कल्पलता-कामधेनु-चिन्तामणि-स्पर्शमणि-योगाः)

प्रथमः पटलः

ग्रन्थ-प्रवर्तनं

श्रीदेव्युवाच—

अनादि-रूप भूतेश शशि-शेखर शङ्कर !
देवाधिदेव विश्वेश विश्वाराध्य सुरेश्वर ॥ १
निरञ्जन निराकार नित्यानन्द गुणाकर !
गुणातीत पर-स्वामिन् सर्वातीत परात्पर ॥ २
त्वत्-सम्भूतं जगत् सर्वं स्थावरं जङ्गमादिकम् ।
श्रुतानि सर्व-तन्त्राणि लक्ष-कोट्यर्बुदानि च ॥ ३
तन्त्रार्णवादिकं देव राज-राजेश्वर प्रभो !
तन्त्र-राजः श्रुतो देव ! नाना-भेदाश्च संश्रुताः ॥ ४
रसायनं श्रुतं देव ! सिद्धयो विविधाः श्रुताः ।
शक्ति-सङ्गम-नामानं तन्त्र-राजोत्तमोत्तमम् ॥ ५
सूचितं देव-देवेश ! मन्त्र-सिद्ध्यभिधागमे ।
न मह्यं कथितं देव ! संशयं छेदय प्रभो ॥ ६
चतुः-खण्डेन संयुक्तं सर्व-सारोत्तमोत्तमम् ।
तन्त्रं कथय देवेश ! सम्प्रदाय-क्रमागतम् ॥ ७
समग्रं तन्त्र-राजेन्द्रं सापेक्ष-रहितं प्रभो !
सम्प्रदाय-प्रभ्रष्टानां मार्ग-सन्दर्श-कारकम् ॥ ८
कलौ सिद्धि-प्रदं तन्त्रं कथयस्व मम प्रभो !

श्रीशिव उवाच—

तन्त्र-राजः पूर्वमुक्तः खण्डाष्टक-समुज्वलः ॥ ९
पूर्वार्द्धमुत्तरार्द्धं च सार्द्ध-द्वय-समन्वितः ।
पूर्वार्द्धं कादि-संज्ञं तु द्वितीयं हादि-संज्ञकम् ॥ १०
कादौ तु वेद-खण्डानि हादावपि चतुष्टयम् ।
प्रति-खण्डे महेशानि ! त्रि-सहस्रं च षट्-शतम् ॥ ११

प्रत्यध्याये शत-श्लोकाः षट्-त्रिंशत्-पटलानि च ।
इत्येकं खण्डमित्युक्तमेवं खण्डाष्टकं विदुः ॥ १२

दिव्यौघ-रचितो ग्रन्थो गुरु-द्वारो भविष्यति ।
शक्ति-सङ्गम-नामाख्यं श्रीबृहत्-तन्त्रराजकम् ॥ १३

वेद-खण्ड-समायुक्तं षष्टि-साहस्रिकं शुभम् ।
दिव्यौघ-रचितं तन्त्रं सर्व-तन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ १४

अनादि-काल्या रचितं तारा-रूपं द्वितीयकम् ।
तृतीयं सुन्दरी-रूपं चतुर्थी छिन्न-मस्तका ॥ १५

युगे युगे चन्द्र-संख्यं कलौ खण्ड-चतुष्टयम् ।
षट्-शती-वत्सरान्ते तु द्वि-सप्तत्युत्तरं शिवे ॥ १६

आविर्भवति देवेशि ! दिव्यौघ-द्वारतः शिवे !
बौद्ध-पाषण्ड-नाशार्थं सम्प्रदायार्थमेव च ॥ १७

सम्प्रदाय-सङ्कराणां विनाशार्थमिहेश्वरि !
सम्प्रदाय-स्थापनार्थं ब्राह्मण्य-रक्षणाय च ॥ १८

मन्त्र-शास्त्रस्य सिद्धयर्थमाविर्भवति पार्वति !
तन्त्रेषु कालिका तारा सदा तिष्ठति पार्वति ॥ १९

अथोद्दण्ड विधायेत्थं श्रीमहा-दक्षिणेश्वरी ।
अनादि-विद्या श्रीकाली महा-ताराभिधा परा ॥ २०

षट्-शाम्भवेश्वरी विद्या वाच्यातीता परा कला ।
महा-प्रलयमासाद्य कोटि-ब्रह्माण्ड-नायिका ॥ २१

शिव-शक्ति-मयं देहमेकीकृत्य सदा स्थिता ।
कोटि-वक्त्रा भवाद्यास्तु ब्रह्माणः प्रेत-रूपिणः ॥ २२

तत्-श्मशाने प्रनृत्यन्ति गायन्ति व्याल-संकुलाः ।
चिति-रक्षा-स्वरूपत्वं प्राप्य तिष्ठन्ति पार्वति ॥ २३

माहेश्वराणामानन्त्य विष्णु-रूपेऽप्यनन्तता ।
शक्रादीनां तु गणना नास्त्येव प्रिय-वादिनि ॥ २४

नद्यां तु बालुका यावत् तावदिन्द्राः पुरेरिताः ।
कोटि-ब्रह्माण्ड-पर्यन्तं स्थावरं जङ्गमादिकम् ॥ २५
एकैक-वारमिन्द्रत्वं गतं तत्-पुनरप्यलम् ।
अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्डे यावन्तः परमाणवः ॥ २६
तावन्तः सन्ति तद्-भूमौ चिति-धूलि-स्वरूपतः ।
माहेश्वरी-समेतानां ब्रह्माण्ड-कोटि-कोटयः ॥ २७
तत्र तिष्ठन्ति देवेशि ! चतुर्वेदाः शवाः स्मृताः ।
युगाश्च शव-रूपेण सप्त-प्रेत-गताः पराः ॥ २८
सामरस्यं समासाद्य सर्व-रूपा हि पार्वति !
चिद्-व्यापक-स्वरूपेण स्वयं च बिभ्रती पराम् ॥ २९
एतस्मिन्नेव काले तु स्व-बिम्बं पश्यति शिवा ।
तद्-बिम्बं तु भवेन्माया तत्र मानसिकं शिवम् ॥ ३०
सृष्टेरुत्पादनार्थं तु भर्तृ-रूपं प्रकल्पयेत् ।
आदि-नाथं तु मनसा कल्पातीत-स्वरूपिणम् ॥ ३१
तं विलोक्य महेशानि ! सृष्ट्युत्पादन-कारणात् ।
आदि-नाथं मानसिकं स्व-भर्तारं प्रकल्पयेत् ॥ ३२
विपरीत-रतिं कृत्वा महा-शून्यं विधाय च ।
त्रिंशदर्बुद-षट्-वृन्द-पञ्चाशत्-पद्म-कोटयः ॥ ३३
युगानि परमेशानि ! विपरीत-रताऽभवत् ।
विपरीत-रतौ देवि ! विन्दुरेकोऽभवत् पुरा ॥ ३४
तत्रैका सुन्दरी जाता महा-लावण्य-कालिका ।
श्रीमहा-सुन्दरी-रूपं बिभ्रती परमा कला ॥ ३५
तस्याश्च मानसी शक्तिस्तत्र जाता परात्परा ।
तस्या नाम महा-काली सुन्दरीति प्रकल्प्यते ॥ ३६
तां विलोक्य महा-कालो महा-मोह-परो भवेत् ।
कालीं प्रति वदन् कालो वाणीं गर्वान्वितां पराम् ॥ ३७

विन्दु-ध्वनि-सकाशात् तु प्रत्येकं वर्ण-जातयः ।
मातृकार्णास्तदा जाता अक्षरेति तदाऽभवत् ॥ ३८

ध्वनिना व्याप्तमखिलं जगदेतच्चराचरम् ।
अद्यापि देव-देवेशि ! कादम्बर्या ध्वनि-श्रुतिः ॥ ३९

उवाच सुन्दरीं कालो महा-प्राण-प्रिये परे !
त्रैलोक्य-सुन्दरि श्रीशे कारुण्यामृत-सागरे ॥ ४०

द्वितीय-वाक्ये देवेशि ! कालीमुवाच शङ्करः ।
महा-घोरे शिवा-रावे क्रूर-दंष्ट्रे करालिनि ॥ ४१

ललज्जिह्वे भीम-नादे ! इत्येवं वचनं वदन् ।
ईदृशं वचनं श्रुत्वा निर्गुणा पर-चण्डिका ॥ ४२

अनादि-रूपा श्रीकाली मायोत्पादन-तत्परा ।
कालो मोह-वशं यातः श्रीकाली-मायया शिवे ॥ ४३

अनादि-सृष्टेरुत्पत्तिः कारणार्थं महेश्वरि !
ब्रह्माण्डानामथानन्त्यं तन्मया कथितं क्षणात् ॥ ४४

कालस्य मायां दत्वा तु स्वयं व्यापारतां गता ।
कालस्तु चकितो जातः सा वै कुत्र गता प्रिया ॥ ४५

हा हा प्राण-प्रिया काली सा वै कुत्र गता प्रिया ।
इति मोह-वशं यातः श्मशानाटन-तत्परः ॥ ४६

हा हा प्राण-प्रिया काली सा वै कुत्र गता प्रिया ।
एवं मोह-वशं यातो भ्रान्त-चित्तस्ततोऽभवत् ॥ ४७

दर्शनार्थं तपस्तेपे पञ्चाशत्-पद्म-कोटयः ।
युगानि तत्र जातानि न काली-दर्शनं शिवे ॥ ४८

कालस्य जातं देवेशि ! मार्ग-भ्रष्ट-परायणः ।
इति ज्ञात्वा महा-काली ज्ञानं दत्तं महेश्वरि ॥ ४९

आकर्षणाख्या बुद्धिस्तु दत्ता कालस्य पार्वति !
भक्त-प्रीता महा-काली श्रीमहा-दक्षिणानना ॥ ५०

वर-दानेषु चतुरा तेनेयं दक्षिणा स्मृता ।
आकर्षणं कृतं तेन जातं तत्क्षण-मात्रकम् ॥ ५१

काल्या ज्ञानं महेशानि ! मार्ग-च्युति-परायणः ।
कालो जातो महेशानि ! महा-भक्त-प्रिया वरा ॥ ५२
शिवाकर्षणकं कर्म मिथुनत्व-प्रदायकम् ।
इति ज्ञात्वा महेशानि ! आगत्य तु शिवान्तिकं ॥ ५३

तदा सम-रसानां तु शक्तिं कृत्वा महेश्वरि !
आनीय दत्ता कालस्य मार्गाभ्यासार्थमेव तु ॥ ५४
मार्गं विना महेशानि ! गतिरत्र कथं भवेत् ?
तत्राभ्यास-परः कालः कुण्डली-ध्यान-तत्परः ॥ ५५

मनुष्याणां कुण्डली तु सार्द्ध-त्रिवलया स्मृता ।
श्रीदेव्या कुण्डली देवि ! स्वेच्छया गुणिता शिवा ॥ ५६

त्रिगुणा श्रीः त्रि-शक्तिश्च यदा वेद-गुणा भवेत् ।
चतुर्वर्णा चैक-जटा चतुर्वेदेश्वरी परा ॥ ५७

यदा पञ्च-गुणा देवि ! महोग्रा तु तदा भवेत् ।
यदा षड्-गुणिता शक्तिः सिद्धि-काली प्रकीर्तिता ॥ ५८

यदा सप्त-गुणा शक्तिः सप्तार्णा काल-सुन्दरी ।
यदाष्ट-गुणिता शक्तिरष्टार्णा भुवनाम्बिका ॥ ५९

यदा नव-गुणा शक्तिः नवार्णा चण्डिकेश्वरी ।
यदा दश-गुणा शक्तिर्दश-विद्या-स्वरूपिणी ॥ ६०

यदा रुद्र-गुणा जाता श्मशान-कालिका भवेत् ।
यदा सूर्य-गुणा देवि ! द्वादशी चण्ड-भैरवी ॥६१

यदा काम-गुणा देवि ! काम-भेदा च तारिणी ।
चतुर्दश-गुणा जाता वशीकरण-कालिका ॥ ६२

यदा पक्ष-गुणा जाता महा-पञ्चदशी स्मृता ।
कला-गुणा यदा शक्तिः श्रीमहा-षोडशी तदा ॥ ६३

कलातीत-गुणा देवि ! छिन्नमस्ता तदा भवेत् ।
अष्टादश-गुणा देवि ! महा-मधुमती भवेत् ॥ ६४

ऊन-विंशद्-गुणा देवि ! महा-पद्मावती तदा ।
गुणिता विंशति-पदा विंशद्-वर्णा रमा भवेत् ॥ ६५

एक-विंशद्-गुणा देवि ! प्रोक्ता श्रीकाम-सुन्दरी ।
द्वा-विंशद्-गुणिता देवि ! दक्षिणा कालिका तदा ॥ ६६

त्रयो-विंशद्-गुणा देवि ! विद्येशीति तदा भवेत् ।
गुणिता तत्व-संख्याभिर्गायत्री स्यात् तदा शिवे ॥ ६७

पञ्च-विंशद्-गुणा देवि ! पञ्चमी सुन्दरी तदा ।
षड्-विंशद्-गुणिता शक्तिः षष्ठी विद्या प्रकीर्तिता ॥ ६८

सप्त-विंशद्-गुणा देवि ! महा-रत्नेश्वरी परा ।
अष्टा-विंशतिधा सा वै गुणिता परमा कला ॥ ६९

अष्ट-विंशाक्षरी विद्या मृत-सञ्जीवनी परा ।
ऊन-त्रिंशद्-गुणा देवि ! महा-नील-सरस्वती ॥ ७०

त्रिंशद्-गुणा यदा विद्या वसोर्धारा तदा स्मृता ।
एक-त्रिंशद्-गुणा देवि ! त्रैलोक्य-मोहिनी भवेत् ॥ ७१

द्वात्रिंशद्-गुणिता चेत् स्यात् त्रैलोक्यविजया स्मृता ।
त्रयस्त्रिंशद्गुणा चेत् स्यात् श्रीमत्कामाख्यतारिणी। ७२

चतुस्त्रिंशद्-गुणा शक्तिरघोराख्या तदा भवेत् ।
पञ्च-त्रिंशद्-गुणादेवि ! सङ्गीत-मोहिनी भवेत् ॥ ७३

षट्-त्रिंशद्-गुणिता विद्या बगलाख्या तदा भवेत् ।
सप्त-त्रिंशद्-गुणा शक्तिः प्रोक्ता विद्या त्वरुन्धती ॥ ७४

अष्ट-त्रिंशद्-गुणा चेत् स्यादन्नपूर्णेश्वरी मता ।
गुणितोन-चत्वारिंशत् नाकुली परिकीर्तिता ॥ ७५

चत्वारिंशद्-गुणा शक्तिः प्रोक्ता विद्या त्रिकण्टकी ।
गुणिता चैक-चत्वारिंशत् तदा राजेश्वरी कला ॥ ७६

द्वि-चत्वारिंशद्-गुणिता त्रैलोक्याकर्षिणी तदा ।
त्रि-चत्वारिंशद्-गुणिता राज-राजेश्वरी स्मृता ॥ ७७

चतुश्चत्वारिंशद्-गुणिता कुक्कुटी परिकीर्तिता ।
चत्वारिंशद्-वाण-गुणा सिद्ध-विद्या प्रकीर्तिता ॥ ७८

चत्वारिंशद्-रस-गुणा प्रोक्ता श्रीमृत्यु-हारिणी ।
चत्वारिंशन्-मुनि-गुणा महा-भोगवती मता ॥ ७९

चत्वारिंशद्-वसु-गुणा वासवी परिकीर्तिता ।
चत्वारिंशद्-रन्ध्र-गुणा फेत्कारी परिकीर्तिता ॥ ८०

पञ्चाशद्-गुणिता देवी महा-श्रीमातृ-सुन्दरी ।
पञ्चाशच्चन्द्र-गुणिता मातृकोत्पत्ति-सुन्दरी ॥ ८१

एकैकं मातृका-वर्णं प्रति-विद्या-प्रकाशतः ।
उत्पन्ना परमेशानि ! स्वोत्पत्तिषु परायणा ॥ ८२

यो भावो यस्य वै प्रोक्तस्तद्-भावे संस्थिता परा ।
स्वेच्छया वलयं कृत्वा यथा कुण्डलिनी स्थिता ॥ ८३

तथा विद्या सु-सञ्जाता अक्षोभ्य-मुनि-रूपिणी ।
सार्ध-त्रिवलया देवि ! मनुष्यस्य प्रकीर्तिता ॥ ८४

एवं विद्या समुत्पन्ना कुण्डलीतो महेश्वरि !
बालाम्बा तु ततो जाता पूर्वाभ्यासार्थमेव तु ॥ ८५

पूर्वाभ्यास-प्रभावेन सुन्दरी पतिता भवेत् ।
स कालत्वं च सम्प्राप्तः सुन्दरी-सामरस्यतः ॥ ८६

विद्यया पञ्चमी-रूपं धृत्वा काल-समागमः ।
भक्त-प्राण-प्रिया देवि ! तस्य सङ्ग-परायणा ॥ ८७

पञ्चमी-रूपमासाद्य संस्थित्य परमा कला ।
तस्याः सङ्गाभ्यास-योगात् महा-कालत्वतां गतः ॥ ८८

येन दृष्टा तु या पूर्वं स तस्या ऋषिरीरितः ।
उपासकास्तदान्ये स्युरिति संक्षेपतो मतम् ॥ ८९

अथातो ब्रह्म देवेशि ! व्याख्यास्यामि यथा-क्रमम् ।
बीजांकुर-स्फटिकजं तद् ब्रह्म परिकीर्तितम् ॥ ९०

तदेव ब्रह्म चाख्यातं काल-काली-मयं परम् ।
यावद् विर्वाणतुं शक्यं तावत् सगुणतां गतम् ॥ ९१

तदेव सगुणं ब्रह्म वर्णना शक्ति-गोचरम् ।
वर्णना यामशक्तिर्हि यदा जाता महेश्वरि ॥ ९२

तदेव निर्गुणं प्रोक्तं सगुणं वाच्य-गोचरम् ।
वाग्भवं मुखमित्युक्तं मुखादुच्चार्यते च तत् ॥ ९३

अवाच्यं यद् भवेत् ब्रह्म तत् कथं मुख-गोचरम् ।
वाक्-शक्त्या यन्त्रितं तच्च तस्माच्छक्तेः प्रधानता ॥ ९४

काली माया तु सा शक्तिर्बिम्बाद्य-प्रति-बिम्बका ।
काली-व्यापक-सच्छाया महा-कालः प्रकीर्तिता ॥ ९५

महा-कालात् भवेन्माया सा प्रोक्ता भुवनेश्वरी ।
ब्रह्म-विष्ण्वादयो देवि ! तत्रोत्पन्ना महेश्वरि ॥ ९६

लोक-पालास्ततो जाता वाग्भवा मातृकाः स्मृताः ।
अथैक-गुणिता देवि ! प्रथमाक्षर-सम्भवा ॥ ९७

अविनाशत्व-लोपेन तेन चाक्षर-रूपता ।
शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते ॥ ९८

सर्वाद्या तु भवेच्छक्तिरानन्द-घन-गोचरा ।
ब्रह्म-रूप-चिदानन्दा पर-ब्रह्म व केवलम् ॥ ९९

प्रकृतौ विद्यमानायां विकृतिर्न बलीयसी ।
प्रकृतिः परमा शक्तिर्विकृतिः प्रति-बिम्बता ॥ १००

आद्या कृष्णा महा-काली द्वितीया सुन्दरी स्मृता ।
रक्त-वर्णा महेशानि ! तृतीया बाल-भैरवी ॥ १०१

चतुर्थी पञ्चमी विद्या यस्याभ्यासात् तु कालताम् ।
प्रपञ्च-मूला सा शक्तिः प्रपञ्चेशी प्रकीर्तिता ॥ १०२

तन्माया-रूप-धारित्वं प्रपञ्चात्मा शिवो भवेत् ।
त्रिनेत्रा त्रिगुणा जाता त्रिगुणात्मा तथेश्वरः ॥ १०३

ततः सदाशिवो जातस्तत्-कृपा-लेशतः शिवे !
तत्रस्था परमेशानि ! सौन्दर्य-गुण-संयुता ॥ १०४

सुन्दर्यास्तु प्रपञ्चोऽस्ति निर्गुणेन प्रपञ्चता ।
आद्या श्रीर्निर्गुणा काली वाच्यातीता परात्परा ॥ १०५

प्रकर्षेण तु पञ्चानां संयोगो युग-पद् भवेत् ।
प्रपञ्चेशी तेन विद्या सुन्दरी परिकीर्तिता ॥ १०६

यदारभ्य धृतं रूपं सुन्दरं सुमनोहरम् ।
तदारभ्य प्रपञ्चोऽयं सञ्जातः परमेश्वरि ॥ १०७

शक्ति-कोणे महेशानि ! ब्रह्माण्डानामनन्तकम् ।
सर्वं तिष्ठति देवेशि ! जगदेतच्चराचरम् ॥ १०८

तस्याः कुण्डलिनी शक्तिरक्षोभ्य-नाग-रूपिणी ।
स्वेच्छया गुणिता देवी स्वेच्छा-वर्ण-स्वरूपिणी ॥ १०९

ब्रह्माण्ड-गोले देवेशि ! काल्या तस्यै प्रदर्शितः ।
ब्रह्म-गोलो विष्णु-गोलो रुद्र-गोलस्तृतीयकः ॥ ११०
लोकेश-गोलो देवेशि ! देव-गोलस्ततः शिवे !
ततो हि ऋषिगोलो हि क्रमाद् गोलाश्च कोटिशः ॥ १११

पर-ब्रह्माच्च प्रकृतिः प्रति-बिम्ब-स्वरूपिणी ।
महत् तत्वं ततो जातं अहङ्कारस्ततः परम् ॥ ११२

आकाशस्तु ततो जातस्ततो वायुः प्रकीर्तितः ।
ततोऽग्निश्च प्रजातोऽत्र अग्नेरापः प्रकीर्तिताः ॥ ११३

पानीयात् पृथिवी जाता ततश्चौषधयः शुभाः ।
ओषधीभ्यो भवेदन्नं अन्नात् प्राणः प्रकीर्तितः ॥ ११४

प्राणाज्जीवो हि सञ्जातो जीवात्म-परमात्मकौ ।
ब्रह्म-बिम्बात् सर्वमेतज्जगदेतच्चराचरम् ॥ ११५

अत एव भवेद् ब्रह्म जगदेतच्चराचरम् ।
भावना-वशतां यातो ब्रह्म-रूपः सनातनः ॥ ११६
जीवः कीटस्ततो भृङ्गी भृङ्गी कीटो न वै शिवे !
जीवो ब्रह्म पुनर्ब्रह्म ततो ब्रह्म पुनश्च सः ॥ ११७
पुण्य-द्रवात् पात्र-योगात् वह्नौ चोष्णात्मकं यथा ।
केवलं तु जलं देवि ! यदि वह्नौ प्रदीयते ॥ ११८
वह्नि-नाशो भवेद् देवि ! नात्र कार्या विचारणा ।
देह-पात्रस्य संयोगात् परमात्मा च देवता ॥ ११९
सौख्यं दुःखं जयो लाभोऽहङ्कारो दम्भ एव च ।
मोहः कामः क्षुधा जृम्भा पिपासा स्पर्शनं गतिः ॥ १२०
सर्वमेतन्महेशानि ! तद्-वज्जातं महेश्वरि !
तत्र ज्ञाने समुत्पन्ने न सौख्यं न च दुःखता ॥ १२१
देहाभिमाने गलिते विदिते परमात्मनि ।
न सौख्यं न च वै दुःखं पर-ब्रह्मैव केवलम् ॥ १२२
यथा दाहो वह्नि-शक्तिर्वह्नौ तिष्ठति पार्वति !
तद्-वद् ब्रह्म जीव-मात्रे सदा तिष्ठति पार्वति ॥ १२३
विस्फुलिङ्गा यथा वह्नेर्नाना-स्थल-गता भवेत् ।
जले नाशत्वतां यान्ति तृणे वर्द्धिष्णुता भवेत् ॥ १२४
काष्ठे स्फुलिङ्गतां यान्ति जीवे ब्रह्म तथा शिवे !
पात्र-योगात् सर्वमेतत् जय-लाभादिकं शिवे ॥ १२५
न सौख्यं न च वै दुःखं पर-ब्रह्मैव केवलम् ।
तज्ज्ञानं मन्त्र-योगेन स्फुटं भवति पार्वति ॥ १२६
काम-क्रोधादिभिर्युक्ते जीव-रूपे परात्मनि ।
अन्य-योगात् महेशानि ! दुःखं भवति नान्यथा ॥ १२७
मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र कथं योगो भवेत् शिवे !
अन्य-योगे समारब्धे स्त्री-सङ्गश्चेद् यदा भवेत् ॥ १२८

विनाशाद् वायु-रोधस्य देह-नाशादिकं भवेत् ।
मन्त्र-योगे भावनायां न तथा परमेश्वरि ॥ १२९
यावद्धि भावना जाता तावद् देवो महेश्वरः ।
भावना गलिता चेत् स्यात् तदा जीवेश्वरो नरः ॥ १३०
अत्रैव नियमो नास्ति तत्रावधिः प्रकीर्तितः ।
पर-ब्रह्माथ वा जीवो द्वयोरेक-तरः शिवे ॥ १३१
इति संक्षेपतः प्रोक्तं अकाराक्षर-तत्वकम् ।

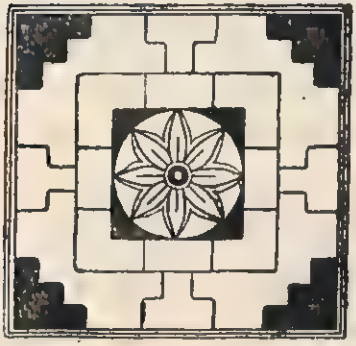

द्वितीयः पटलः

काल-नित्या-विधिः

उग्रतारोवाच—

अक्षोभ्य ! श्रोतुमिच्छामि यत् पूर्वं सूचितं त्वया ।
तन्मे कथय देवेश ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ १

अक्षोभ्य उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च महोग्रे ! शृणु साम्प्रतम् ।
ब्रह्म-भूम्यन्तकं प्रोक्तं भूमि-ब्रह्माण्डकं शिवे ॥ २
संहारे जायते देवि ! तत्र लीनं जगद् भवेत् ।
चतुर्वक्त्र-विधि देवि ! प्रमुखीकृत्य शाश्वतम् ॥ ३
कोटि-वक्त्रान्त-पर्यन्तं ब्रह्माणः सन्ति गोलके ।
चतुर्वक्त्रं तु भू-गोलं ब्रह्माण्डाख्यं च कोटिजे ॥ ४
ब्रह्माण्डानामथानन्त्यमेवं तिष्ठति पार्वति !
अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-नायिका नील-शारदा ॥ ५
ब्रह्म-गोलं च तदधः सुन्दरी-गोचरं भवेत् ।
भू-गोलं परमेशानि ! भुवना-गोचरं भवेत् ॥ ६
अधिकारो हि सन्दत्तः सुन्दर्या एव पार्वति !
महा-विद्या कोटि-संख्या तन्मध्ये गोल-गोचरा ॥ ७
अथ वै राज-राजेशी महा-परम-सुन्दरी ।
एकस्मिन् समये देवि ! गोलोत्पत्ति-परायणा ॥ ८
तस्या द्वारि महेशानि ! सर्वं तिष्ठति पार्वति !
न्यास-जालादिकं देवि ! पञ्चाङ्गानामनेकशः ॥ ९
तथैव निर्मितं देवि ! कालिकाज्ञानुसारतः ।
प्रत्यहं क्रियते यद्यत् तत् सर्वं कालिकाग्रतः ॥ १०
गत्वा च कथ्यते देवि ! सुन्दर्या नित्यमेव तु ।
काली-तारा-मयं ब्रह्म तदग्रे कथ्यते शिवे ॥ ११

भू-गोलो हि महेशानि ! त्रिःस्कन्धे सूचितो मया ।
ममैव लेश-सञ्जाता मुनयः शङ्करादयः ॥ १२

चित्त-स्कन्धे महेशानि ! ब्रह्माण्डाख्यः प्रकीर्तितः ।
भू-गोलानां च पञ्चाशत् कोटि-संख्या महेश्वरि ॥ १३

न्यूनं पञ्च-सहस्रं स्तु ब्रह्माण्ड-गोलके भवेत् ।
पञ्चाशच्छत-विस्तीर्णो भू-गोलः परिकीर्तितः ॥ १४

भू-गोलस्तु महेशानि ! कदम्ब-कुसुम-प्रभः ।
सदा भ्रमति देवेशि ! क्रिया-पञ्चक-संयुतः ॥ १५

घटाकारो महेशानि ! ध्रुव-द्वय-समन्वितः ।
दक्ष-ध्रुवे मुखं देवि ! वामे बुध्न-मुखाकृतिः ॥ १६

कम्बु-ग्रीवो घटः प्रोक्तः श्रीचक्र-कलशः स्मृतः ।
विंशत्-संख्यादयः शब्दा सदैकत्वे व्यवस्थिताः ॥ १७

शतान्तास्ता निगदिता संख्या साहस्र-लक्षके ।
दश-संख्या प्रयोक्तव्या कोट्यादौ शत-मात्रकम् ॥ १८

अर्बुदे तु सहस्रं स्यात् खर्वे लक्षाभिधं भवेत् ।
एवं क्रमेण देवेशि ! परार्धान्तं महेश्वरि ॥ १९

अक्षरादि-समायुक्तो दक्षे न्यूना भवेच्छिवे !
उत्तरे त्वधिका देवि ! यथा-योगेन योजयेत् ॥ २०

कदम्ब-कुसुमं देवि ! श्रीचक्र-वाटिका-गतम् ।
तद्-वाटिका सेचनार्थं कम्बु-ग्रीवा-युतो घटः ॥ २१

छत्राकारेण देवेशि ! परितो ब्रह्म-गोलकम् ।
तत्तद्-बिम्बे महेशानि ! महा-श्रीचक्र-नायिका ॥ २२

तदा तिष्ठति देवेशि ! नात्र कार्या विचारणा ।
परमाणुरणुश्चैव द्व्यणुक-त्र्यणुक एव च ॥ २३

लवस्त्रुटिः कला काष्ठा निमेषः श्वास एव च ।
ततः क्षणं महेशानि ! ततश्चैव पलं भवेत् ॥ २४

तत्-षष्ठि-संख्या नाडी स्यादिति संक्षेपतो मतम् ।
घटिका च मुहूर्त्तं च प्रहरो दिवसस्तथा ॥ २५
अहोरात्रस्ततः पक्षो मासश्चैव तत ऋतुः ।
अयनं वत्सर-युगे प्रलयश्चतुरात्मकः ॥ २६
चतुर्युगानामेकं हि महद्-युगमितीरितम् ।
एक-सप्ततिभिश्चैव मनुरेकः प्रकीर्तितः ॥ २७
चतुर्दशैव सप्तत्या मनवस्तु चतुर्दश ।
इन्द्राश्चतुर्दश शिवे ! तथैव परिकीर्तिताः ॥ २८
चतुर्युग-सहस्राणि ब्रह्माहः परिकीर्तितम् ।
तावद्-युगानि वै रात्रौ दिवा इन्द्राश्चतुर्दश ॥ २९
वृक्ष-कीटे प्रस्तराश्च तृणानि कृमयस्तथा ।
ब्रह्माण्ड-गोले यत् किञ्चित् जातं सञ्जायमानकम् ॥ ३०
एकैक-वारमिन्द्रत्वं तेषां च परिकीर्तितम् ।
कीटात् ब्रह्माण्ड-पर्यन्तं प्रपञ्चार्थं भविष्यति ॥ ३१
मनवस्तु तथैवोक्ता पक्षश्चैव तथा भवेत् ।
मासर्त्तुश्च महेशानि ! त्वयनं हायनं तथा ॥ ३२
एवं हि शत-वर्षाणि ब्रह्मायुः परिकीर्तितम् ।
विधीनां दश-साहस्रं विष्णोर्दिवस ईरितः ॥ ३३
पक्ष-मासादि वर्षादि ज्ञातव्यं परमेश्वरि !
दश-साहस्र-वर्षाणि विष्णोरायुः प्रकीर्तितम् ॥ ३४
तल्लक्षायुः शिवस्याथ तद् द्वैगुण्यमथैश्वरम् ।
सदाशिवस्य तल्लक्षं गणना तु परात्परे ॥ ३५
तदुत्तरं महेशानि ! स्वराट्-चक्रं भविष्यति ।
विराट्-चक्रं तद्-द्विगुणात् सर्व-राट् द्विगुणात् ततः ॥ ३६
सर्व-राडुत्तरं देवि ! ततः शून्यं भविष्यति ।
ततः शून्या परा रूपा श्रीमहा-सुन्दरी कला ॥ ३७

सुन्दरी राज-राजेशी महा-ब्रह्माण्ड-नायिका ।
महा-शून्या ततस्तारा तद् द्वैगुण्य-क्रमेण च ॥ ३८

मुक्तौ संयोज्य सर्वं तु महा-सुन्दर्यनन्ततः ।
एवं हि शत-वर्षाणि महा-प्रलय-कारिणी ॥ ३९

महा-प्रलय-नामा तु सकृदेव प्रवर्तते ।
महा-प्रलयके जाते ततः शून्यं भविष्यति ॥ ४०

ब्रह्म-रूपा परानन्दा केवला तारिणी परा ।
सर्वं तस्यां तु संलीनं तद्-रूपं सर्वमेव तु ॥ ४१

एवं देवि ! महा-शून्यं महा-दक्षिण-कालिका ।
व्याप्य तिष्ठति देवेशि ! शून्यं कृष्ण-स्वरूपकम् ॥ ४२

इति संक्षेपतः प्रोक्तं रचनां गोलके शृणु ।
आणव्यं कार्मणं चैव माया-प्रकृतिमेव च ॥ ४३

अहङ्कारः पञ्चमः स्यात् सृष्टि-स्थिति-लयस्तथा ।
प्रधानानुग्रहो देवि ! व्यवस्थां शृणु यत्नतः ॥ ४४

आणव्यं जीव-मात्रं स्याद् ब्रह्म-विष्णोश्च कार्मणं ।
माया-मूलस्तु रुद्रस्य प्राकृतस्तु तथेश्वरे ॥ ४५

सदाशिवस्याहङ्कारः पर-शम्भोर्न किञ्चन ।
सृष्टि-स्थिति-लयश्चैव तिरोधानं त्वनुग्रहः ॥ ४६

क्रमेण पञ्चकं जातं पर-शम्भोस्तु मायया ।
वर्णाध्वा चैव मात्राध्वा तत्त्वाध्वा तदनन्तरम् ॥ ४७

मन्त्राध्वा भुवनाध्या च कलाध्वा ऋतु-संज्ञकः ।
अयमध्वा त्रिधा प्रोक्तस्त्वचिद् देह-क्रमेण च ॥ ४८

आधिभूतं चाधिदैवं देह-चक्रं तथाण्डके ।
त्रिधा तु कथितं देवि ! रचनां शृणु यत्नतः ॥ ४९

पुरी-षट्क-मध्य-गता लङ्का-चीन-क्रमेण च ।
लङ्का-पुर्यभिधो देवि ! मध्य-भागे प्रतिष्ठितः ॥ ५०

परितः सम-भागत्वान्मेरु-कार्ये नियोजिता ।
लङ्कातो दक्ष-भागे तु सप्त वै सागराः स्मृताः ॥ ५१

तत्र द्वीपा महेशानि ! संख्या त्वष्टादशैव तु ।
समुद्राः सप्त देवेशि ! सागरास्ते प्रकीर्तिताः ॥ ५२

स्यादूदकास्ते देवेशि ! तत्र वै वडवानलः ।
तदन्ते नरकाः प्रोक्ता मध्ये भोगवती पुरी ॥ ५३

लङ्का-तु भूमि-मध्यस्था सर्वतो हि समा शिवे !
गन्धमादन-पार्श्वे तु हिम-मेरुः प्रकीर्तितः ॥ ५४

तदुत्तरे स्वर्ग-भूमिस्तत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
उपर्य्यधस्ताल्लोकाश्च शत-कक्ष्या-समन्विताः ॥ ५५

दक्षोत्तरे ध्रुव-द्वन्द्वं ब्रह्माण्डं तत्र वै स्थितम् ।
अधस्तात् सप्त-पातालं सप्त-लोकास्तदूर्ध्वके ॥ ५६

एवं लोक-त्रयं जातं तदण्डं परिवर्तते ।
ग्रह-नक्षत्र-सूर्यस्य सोमस्येन्द्रस्य दिग्-ग्रहाः ॥ ५७

एतद्धामाः समाख्याता मध्ये तु किन्नरादयः ।
ब्रह्म-विष्णु-शिवादीनां ततो लोकाः प्रकीर्तिताः ॥ ५८

ईश्वराख्यस्ततो देवि ! ततश्चैव सदाशिवः ।
ततो हि दण्डिनी-नाथ-लोकश्च परिकीर्तितः ॥ ५९

मन्त्रिण्यम्बा-गृहं तत्र सप्त-प्राकार-भूषितम् ।
परापरं ततः प्रोक्तं ततश्चैव परात्परम् ॥ ६०

परातीता ततः प्रोक्ता चित्परा तदनन्तरम् ।
सप्तमं श्रीपुरं देवि ! तदूर्ध्वं कोटि-योजनम् ॥ ६१

चतुरस्रं कोटि-लक्षं योजनं तारिणी-पुरम् ।
नव-प्राकार-संयुक्तं अनन्तायाम-विस्तृतम् ॥ ६२

काल-चक्रं तत्र देवि ! काल-नित्या-क्रमेण च ।
काल-नित्या-पुरे देवि ! श्री-चक्रं परिनिष्ठितम् ॥ ६३

तत्र विन्दौ महेशानि ! निर्वाणाख्यं पुरं भवेत् ।
तद्-विन्दौ परमेशानि ! शाम्भवाख्यं पुरं भवेत् ॥ ६४

तद्-विन्दौ राजसं देवि ! शान्त्यतीतं कला-युतम् ।
चतुष्क-शव-संयुक्त-पर्यंकेन सदाशिवम् ॥ ६५

तत्र काम-कलातीतं महा-कामेश्वरं परम् ।
तत्-पर्यंके महेशानि ! शान्त्यतीतां कलां पराम् ॥ ६६

नवात्मकेश्वरीमम्बां कोटि-ब्रह्माण्ड-नायिकाम् ।
सर्वाढ्यमेतद् ब्रह्माण्डं कीर्तितं परमेश्वरि ॥ ६७

कला-प्राकार-संयुक्तं श्मशानं तत्र पार्वति !
प्रत्यालीढ-पदाख्यं च तत्र श्रीतारिणी-पुरम् ॥ ६८

चतुष्षष्टि-शूलं शुक्लमनन्तायाम-विस्तृतम् ।
श्रीदक्षिणा-श्मशानं च श्मशानाष्टकमेव तत् ॥ ६९

परितो देव-देवेशि ! शत-द्वार-समन्वितम् ।
कोटि-ब्रह्माण्ड-प्रेतैस्तु भूषितं भैरवी-युतम् ॥ ७०

त्रिंशन्निखर्व-षट्-पद्माः शरभैः संयुतं शिवे !
महा-ज्वालानलैर्दीप्तं मुण्ड-विन्दु-विभूषितम् ॥ ७१

सप्त-प्रेत-गता काली दक्षिणा तत्र तिष्ठति ।
तदाज्ञया धनुर्वेदाः सुन्दरी-द्वारि संस्थिताः ॥ ७२

सुन्दरी-द्वारि देवेशि ! चतुर्वेदाः षडङ्गकाः ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥ ७३

शिक्षा कल्पो व्याकरणं छन्दो ज्योतिर्निरुक्तकं ।
षडङ्गमिति सम्प्रोक्तं तथा षट्-दर्शनानि च ॥ ७४

षडाम्नाया महेशानि ! तथा षट्-शाम्भवं शिवे !
कादि-हादि-क्रमेणैव द्विविधं परिकीर्तितम् ॥ ७५

कादावष्टादश-विधं हादावष्टादश प्रिये !
उप-वेद-चतुष्कं च तदाख्यं शृणु पार्वति ॥ ७६

ऋग्वेदस्य धनुर्वेदः शाखाभिः परिभूषितः ।
आयुर्वेदो यजुर्वेदाच्छाखा-शतक-संकुलः ॥ ७७
सामवेदस्य गान्धर्व-वेदः प्रोक्तो महेश्वरि !
शाखाभिर्भूषितो देवि ! काल-प्रिय-करः परः ॥ ७८
अथर्वणस्य निगमस्तच्छाखाभिर्विभूषितः ।
पञ्चाशद् वै महा-भागे ! निगमः परिकीर्तितः ॥ ७९
समग्र-कालिका-द्वारि त्रि-लोके त्रि-क्रमेण च ।
चतुष्पदं ब्राह्मणानां त्रि-पदं क्षत्र-जन्मिनाम् ॥ ८०
अथर्वणे नाधिकारः क्षत्रियाणां कदाचन ।
तत्-कर्माचरणं देवि ! ब्राह्मण-द्वारतश्चरेत् ॥ ८१
संस्कार एव तुर्यस्य क्षत्रियाणां द्विजेश्वरः ।
चतुष्पदा ब्राह्मणाः स्युस्त्रि-पदाः क्षत्रियाः स्मृताः ॥ ८२
चतुर्दश-महा-भारः स्वर्गे श्रीसुन्दरी-गृहे ।
दिक्-महा-भार-संख्या च पाताले पद्मिनी-गृहे ॥ ८३
तत्व-संख्य-महा-भारो मर्त्य-लोके प्रतिष्ठितः ।
सिद्धानां नव-नाथानां देवानामोघ-सन्निधौ ॥ ८४
सरस्वती-गृहे देवि ! क्रमात् तिष्ठति पार्वति !
शाक्तं शैवं गाणपतं सौरं वैष्णवमेव च ॥ ८५
बौद्धं तु देव-देवेशि ! तारा-षड्-दर्शनानि च ।
वैदिकं चैव सौरं च गाणपत्यन्तमेव च ॥ ८६
बौद्धं तु देव-देवेशि ! त्रिपुरा-दर्शनानि च ।
चान्द्रं स्वायम्भुवं जैनं चीनं नीलं महेश्वरि ॥ ८७
छिन्ना-षट्-दर्शनान्यवे कीर्तितानि त्रिधा शिवे !
दर्शन-त्रितयं देवि ! काली-विद्या-प्रगोचरम् ॥ ८८
अष्टादश-पुराणानि तथैवोप-पुराणकम् ।
वेदस्य गदितं देवि ! उप-वेदस्य पार्वति ॥ ८९

अष्टादश-पुराणानि तथैवोप-शमानि च ।
एक-वीरा च त्वरिता कालिका सुन्दरी तथा ॥ ८०
छिन्ना मातङ्गिनी चैव गणेशार्काः प्रकीर्तिताः ।
बगला मालिनी तारा त्रिजटाऽक्षोभ्य-कालके ॥ ८१
बटुकः सुन्दरः शम्भुः शाम्भवस्तु नवात्मकः ।
अष्टादश-पुराणानि उप-संख्यानि पार्वति ॥ ८२
श्रुतिर्वेदश्च देवेशि ! उप-वेदश्च वै स्मृतिः ।
चतुःषष्टि-कला देवि ! चतुःषष्टिर्हि सिद्धयः ॥ ८३
तथोपनिषदोऽन्यत्र द्वि-पञ्चाशन्महेश्वरि !
उपदिष्टानि देवेशि ! चतुःषष्टि भवन्ति च ॥ ८४
सूक्तानि त्रि-सहस्राणि ताण्डवानां शतं शिवे !
त्रि-शतं कौशलाः प्रोक्ताः कौमुदी तु कलाभिधा ॥ ८५
दीपिकानां चतुःषष्टिः प्रकाशानां च सप्ततिः ।
सांख्यायनानां पञ्चाशत् सूराणां पञ्चकं शिवे ॥ ८६
वार्तिकानां द्वयं देवि ! तन्त्रराज-द्वयं शिवे !
नित्या-षोडश-तन्त्राख्यं खण्डाष्टक-समन्वितम् ॥ ८७
हादि-कादि-मतत्वेन हादि-कादि-क्रमेण च ।
पूर्वार्धं चोत्तरार्धं च मिलित्वा तु विराड्-मतम् ॥ ८८
शक्ति-सङ्गम-नामानं तन्त्र-राजं कहात्मकम् ।
चतुःखण्ड-समायुक्तं तन्त्र-राजोत्तमोत्तमम् ॥ ८९
पञ्चाशदध्यायैर्युक्तं षट्क-पञ्चक-संयुतम् ।
एवं क्रमेण देवेशि ! तन्त्राण्याम्नायके शिवे ॥ १००
आधार-भूतं देवेशि ! सूक्ष्म-ब्रह्माण्डमत्र तु ।
अनेकानि देवेशि ! ब्रह्माण्डानि च मध्यतः ॥ १०१
तस्योपरि महेशानि ! ब्रह्माण्ड-कलिकाकृतिम् ।
जम्बु-द्वीपे यदाभासस्तदा द्वीपेश्वरो भवेत् ॥ १०२

विश्व-रूप-क्रमेणैव देह-मात्र-प्रगोचरम् ।
दिवा-रात्रिर्महेशानि ! नराणां षष्टि-नाडिभिः ॥ १०३

पितॄणां तु महेशानि ! मास-द्वितयमेव च ।
ऋतु-मात्रं दिवा-रात्रिः सिद्धानां परिकीर्तिता ॥ १०४

देवानां तु महेशानि ! हायन-द्वितयं भवेत् ।
दक्षिणाख्यो भवेद् रात्रिस्तदन्यो दिवसो भवेत् ॥ १०५

कालिकाया महेशानि ! षष्टि-शून्ये तु नाडिका ।
नाडि-षष्टिभिरेवात्र दिवसः परिकीर्तितः ॥ १०६

एवं क्रमेण देवेशि ! सर्वदा शून्य-मध्यगा ।
अविनाशी सदा स्थाता कोटि-ब्रह्माण्ड-चर्वणा ॥ १०७

राज-दन्त-द्वये देवि ! ब्रह्माण्डानामनन्तकम् ।
स्थूल-सूक्ष्म-प्रभेदेन द्विविधं परिकीर्तितम् ॥ १०८

काल-नित्या महेशानि ! सर्वदा व्याप्य तिष्ठति ।
विंशत्साहस्रकं सप्तशती षट्-त्रिंशदीरिता ॥ १०९

काल-नित्या महेशानि ! परमाण्वादि-रूपिणी ।
पल-मध्ये घटी-मध्ये काल-नित्या प्रकीर्तिता ॥ ११०

सपाद-घटिका-रूपा सप्त वै वासराः स्मृताः ।
मुहूर्त्त-रूपो देवेशि ! पक्षश्चात्र प्रकीर्तितः ॥ १११

तद्-द्वयेन भवेन्मासस्तद्-द्वयं ऋतुरेव च ।
तत्-त्रयं त्वयनं देवि ! तद्-द्वयं हायनं भवेत् ॥ ११२

प्रत्येकं व्याप्य देवेशि ! काल-नित्या प्रकीर्तिता ।
परमाणुं समारभ्य हायनान्तं महेश्वरि ॥ ११३

काल-नित्या च संव्याप्य तिष्ठति परमेश्वरि !
मुहूर्त्ताख्य-पदे देवि ! नाडी-द्वयमुदीरितम् ॥ ११४

मुख्य-मानेन देवेशि ! सार्द्ध-नाडी-द्वयं भवेत् ।
दिन-सप्तक-मध्ये तु देवेशि ! वासराः स्मृताः ॥ ११५

दिन-पञ्चदशान्तं तथा मासान्तकं शिवे !
ऋत्वन्तमयनान्तं च हायनान्तं महेश्वरि ॥ ११६
स्थूल-मानमिदं प्रोक्तं शृणु पारायण-क्रमम् ।
दिनतो वारतः पक्षात् मासात् षट्-त्रिंशता दिनैः ॥ ११७
स्थूल-सूक्ष्म-प्रभेदेन राशि-लग्नादिकं भवेत् ।
तथा ग्रहादिकं देवि ! सर्वमेतत् प्रवर्त्तते ॥ ११८
यः संक्रमो विद्यमानः राशिः प्रातरेव तु ।
सूक्ष्मा राशिरियं प्रोक्ता प्रेतानां त्वनु-राशिका ॥ ११९
पल-मात्रं भवेल्लग्नं स्थूले तु षष्टि-नाडिभिः ।
पल-लग्नं घटी-लग्नं मुहूर्त्तं प्रहरे शिवे ॥ १२०
त्रिंशन्नाडी-क्रमेणैव दिवा-रात्रि-क्रमेण च ।
लग्नमेतत् त्रिधा प्रोक्तं राशि-संक्रम-मूलतः ॥ १२१
लग्नं तात्कालिकं प्रोक्तं चतुर्धाऽऽत्र ग्रहाः शिवे !
मुनि-नन्द-रवीन्द्रैश्च स्थूल-सूक्ष्म-प्रभेदतः ॥ १२२
सूर्य्योदये तु यो वारस्तद्-वारश्च ग्रहात् ततः ।
पल-नाडी-क्रमेणैव ग्रहाणां परिवर्तनम् ॥ १२३
सूर्योदये तु यो वारस्तद्-वारो वासरः स्मृतः ।
अहो-रात्रं घटी देवि ! पल-याम-मुहूर्तकैः ॥ १२४
ब्रह्मादि-देव-जातीनां यो भोगो वर्ष-मात्रतः ।
मनुष्याणां स भोगो हि वारस्तत्र भवेत् शिवे ॥ १२५
सूक्ष्म-मानेन देवेशि ! स भोगः परिवर्त्तते ।
सूक्ष्म-ज्ञानं समासाद्य स्थूल-ज्ञानं ततश्चरेत् ॥ १२६
तत्-कालोदय-वर्णस्य काल-नित्या-विधौ शिवे !
संयोगश्च प्रकर्त्तव्यः सा प्रोक्ता तूदयाक्षरी ॥ १२७
उदयाक्षर-संयोगः काल-नित्या-विधौ शिवे !
गुणनेन चरेद् देवि ! सा तु कालेश्वरी भवेत् ॥ १२८

दिगक्षरस्य संयोगः काल-नित्या-विधौ यदा ।
तदा दिगीश्वरी प्रोक्ता त्वरितं फल-दायिनी ॥ १२९
पृच्छकाद् वर्ण-संयोगात् काल-नित्या-विधौ यदा ।
तदा जीवेश्वरी प्रोक्ता सर्व-जीव-प्रसाक्षिणी ॥ १३०
तथा मास-क्रमेणैव मासः पञ्च-विधौ भवेत् ।
चान्द्र-सावन-नाक्षत्र-सौर-बार्हस्पत-क्रमात् ॥ १३१
पौर्णिमात् पौर्णिमान्तो हि चान्द्र-मासः प्रकीर्त्तितः ।
चन्द्र-दर्शात् चन्द्र-दर्शं द्विधा चान्द्रः प्रकीर्त्तितः ॥ १३२
अमामारभ्य देवेशि ! पुनः सा वै यदा भवेत् ।
सावनाख्यो महेशानि ! मासोऽयं च प्रकीर्त्तितः ॥ १३३
ऋक्षाद् ऋक्षं समारभ्य नाक्षत्रः कीर्त्तितः शिवे !
संक्रमान्तं च देवेशि ! सौर इत्यभिधीयते ॥ १३४
बार्हस्पत्य-भिधो मासः षट्-त्रिंशद्-दिवसात्मकः ।
नित्या-षोडशभिर्देवि ! मासः षोडशकं भवेत् ॥ १३५
अष्टादश-दिनैर्देवि ! मासः पक्षश्चात्र प्रकीर्तितः ।
तद्-द्वयैर्मास इत्युक्तस्तत् क्रमं शृणु पार्वति ॥ १३६
पूजा-क्रमे महेशानि ! नित्या-षोडश-मण्डलम् ।
नित्या-षोडशकं देवि ! शान्तिः सप्तदशी शिवे ॥ १३७
शान्त्यतीता तदन्ते स्यादेवमष्टादश प्रिये !
न ह्रासो न च वृद्धिश्च नित्या-दिवस-मण्डले ॥ १३८
उदयार्ण-क्रमेणैव सम्पूर्णो दिवसो भवेत् ।
तुर्य्य-मासो महेशानि ! पञ्चाशद्-दिवसात्मकः ॥ १३९
वर्ण-मासाभिधः प्रोक्तः प्रत्यहं वर्ण-मात्रकः ।
चत्वारिंशत्-तथाष्टौ च ऊन-पञ्चाशदेव वा ॥ १४०
पञ्चाशन्मातृका-वर्णान्मण्डलं त्रि-विधं स्मृतम् ।
पूर्वं बटुक-सम्मत्या द्वितीये काल-सम्मतिः ॥ १४१
द्वितीये त्रि-विधत्वं च कीर्तितं परमेश्वरि !
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ १४२

तृतीयः पटलः

अष्टाष्टक-निरूपणम्

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि भूतादि-युग-निर्णयम् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यानि-रहस्यं च संक्षेपात् कथ्यते शृणु ॥ १
ब्रह्मणोत्पत्तिमारभ्य वर्त्तमान-दिनावधिः ।
अहर्गणस्य विज्ञानं सिद्धान्तः परिकीर्त्तितः ॥ २
कलेरारम्भ-दिवसात् वर्त्तमान-दिनावधिः ।
अहर्गणस्य विज्ञानं तन्त्रमित्यभिधीयते ॥ ३
युगादि-दिनमारभ्य शकाहान्तं महेश्वरि !
अहर्गणस्य विज्ञानं करणं कीर्त्तितं मया ॥ ४
कृतादीनां युगानां तु दिनेष्वेकैकशः क्रमात् ।
दिन-नित्या भवेत्तत्र स दिनं प्रति-वासरम् ॥ ५
आदौ कलावतीते तु वर्षेष्वेकादशस्वथ ।
वर्षे द्वादशमे मासे चैत्राख्ये नवमी-तिथौ ॥ ६
वारे रवेरतीते च नाथे विश्वेश-सम्भवे ।
तदारभ्योदय-क्षान्ता वर्णाः षट्-त्रिंशदात्मकाः ॥ ७
युग-वासर-भेदेन वर्त्तन्ते परमेश्वरि !
स्वराः षोडशभिस्तां तु गणयेदक्षरं प्रति ॥ ८
एकैक-स्वर-युक्तेन वर्णेनावान्तरो युगः ।
अवान्तर-युगा ज्ञेया दिवसा वर्ण-संख्यया ॥ ९
क्रमात् षट्-त्रिंशद्-वर्णाः स्युः प्रत्येकं प्रति-वासरम् ।
युगैः षोडशभिस्त्वेवमेको वर्णो युगो मतः ॥ १०
षट्-सप्तत्युत्तरैः पञ्च-शत-संख्यैश्च वासरैः ।
एतैर्वर्ण-युगैः प्रोक्तः षट्-त्रिंशद्भिर्महा-युगः ॥ ११

सहस्राणां च विंशत्या षट्-त्रिंशदधिकैः शतैः ।
सप्तभिश्च दिनानां तु संख्या प्रोक्ता महा-युगे ॥ १२
'आ-ई'-पल्लवितेत्यत्र सिद्धा वर्णात्र सूचिताः ।
वत्सराःसप्त-पञ्चाशत्मासाःसप्त-दिनानि षट् ॥ १३
कालेनैव वत्सराणां एक-पर्याय ईष्यते ।
पर्यायश्च कलौ सप्त सहस्राणि ततः परम् ॥ १४
एकादशोत्तरत्वं च षट्-शतानि भवन्ति हि ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ १५

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पीठानां तु विनिर्णयम् ।
यस्य विज्ञान-मात्रेण साधकः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ १६

श्रीशिव उवाच—

पीठं तु पञ्चधा प्रोक्तं पञ्चायतन-मार्गतः ।
सप्त-सोपान-संयुक्तं मेरु-कैलास-मार्गतः ॥ १७
सिंहाक्रान्तं च देव्यां वै शैवे वृषभ-रूपकम् ।
वैष्णवे गरुडाक्रान्तं गजाक्रान्तं च गाणपे ॥ १८
हंसाक्रान्तं सौर-मन्त्रे काल्यां प्रेत-समन्वितम् ।
नव-सोपान-संयुक्तं सुन्दर्याः पीठमीरितम् ॥ १९
सोपानेन समायुक्तमंगुलोत्सेधमेव च ।
इति पीठं मया प्रोक्तं ऋतु-शाम्भवकं शृणु ॥ २०
चैत्रादि-मासमारभ्य फाल्गुनान्तं महेश्वरि !
वसन्तादि समारभ्य हेमन्तान्तं महेश्वरि ॥ २१
ऋतु-षट्कं मया प्रोक्तं अत्रैवं शाम्भव-क्रमः ।
कृष्ण-शुक्ल-पक्ष-योगात् द्वि-मासे षष्टि-वासराः ॥ २२
षष्टि-षट्क-प्रयोगेन त्रि-शतं षष्टि-रश्मयः ।
मधु-कृष्णा वसन्ताख्या प्रतिपत् परिकीर्तिता ॥ २३
मधु-कृष्णा वसन्ताख्या द्वितीया परिकीर्तिता ।
एवं क्रमेण देवेशि ! शुक्ल-पक्षेऽपि योजयेत् ॥ २४

माधव-कृष्ण-प्रतिपद् द्वितीया च ततः शिवे !
एवं शुक्ल-क्रमेणैव सर्वत्र विनियोजनम् ॥ २५
अथवाऽन्य-क्रमेणैव शाम्भवं शृणु साम्प्रतम् ।
षट्-पञ्चाशन्महा-पुर्यः पार्थिवे परिकीर्तिताः ॥ २६
जल-ग्रामा महेशानि ! द्वि-पञ्चाशत् प्रकीर्तिताः ।
आग्नेय-रश्मयो देवि ! द्वि-षष्टिरिति कीर्तिताः ॥ २७
वायव्य-ग्रामा देवेशि ! चतुःपञ्चाशदीरिताः ।
अथ नाभस-ग्रामाणां संख्या द्वि-सप्ततिर्भवेत् ॥ २८
अथ मानस-ग्रामाणां संख्यां शृणु महेश्वरि !
चतुःषष्टिरिति प्रोक्ता क्रमात् षट्-शाम्भवे भवेत् ॥ २९
श्रीपुरादि-महा-पुर्यः पार्थिवाख्ये प्रकीर्तिताः ।
षट्-शाम्भवादि-ग्रामाणां संख्यामग्रे प्रकथ्यते ॥ ३०
प्रत्येकं चैव नामानि कथ्यन्ते सिद्धि-केरले ।
पूर्वं संसूचितं ते यत् तदद्य कथ्यते शृणु ॥ ३१
गोपनीयं महेशानि ! स्व-योनिरपरा यथा ।
श्रीकाल्युपासका ये च तत् कुलं परिकीर्तितम् ॥ ३२
तेषां समूहो देवेशि ! कुलं सङ्कीर्तितं मया ।
काली-विद्योपासकैस्तु कुल-पूजा-विधौ शिवे ॥ ३३
गन्तव्यं यत्नतो देवि ! नान्यत्र प्रव्रजेत् क्वचित् ।
अन्यत्र यदि वै गच्छेत् तदुच्छिष्टं भवेच्छिवे ॥ ३४
यस्य या देवता प्रोक्ता सा तस्येष्टा प्रकीर्तिता ।
माध्वीकं पात्र-मध्यस्थं तर्पणोच्छिष्टमेव तु ॥ ३५
उच्छिष्ट-तर्पणादेव देवता-शापमाप्नुयात् ।
अत एव महेशानि ! बन्धनानि प्रजायते ॥ ३६
एवं सर्वं तु विज्ञाय सङ्गं त्यक्त्वा सुखी भवेत् ।
एतच्चक्रे महेशानि ! गच्छेच्चैव कुलाकुलम् ॥ ३७

रहस्यं तु महेशानि ! पूजान्ते शृणु सादरम् ।
घटस्थ-शुद्ध-सहितं तृतीयादि स-पञ्चमम् ॥ ३८
देव्यै निवेद्यते देवि ! तदन्ते वीर-भोजनम् ।
तद्-वीर-भोजने देवि ! स्व-देव-तर्पणं भवेत् ॥ ३९
उच्छिष्टेन महेशानि ! कथं तु तर्पणं भवेत् ।
एतदज्ञानतो देवि ! देवता-शापमाप्नुयात् ॥ ४०
जाते तु देवता-शापे बन्धनं जायते ध्रुवम् ।
कुलाकुलमिदं प्रोक्तमकुलं शृणु पार्वति ॥ ४१
सुन्दरी भैरवी धूम्रा त्वकुलत्वेन कीर्तिता ।
अकुलास्तु महेशानि ! तत्-पूजायां व्रजेत् सदा ॥ ४२
तैर्नान्यत्र प्रगन्तव्यं इति संक्षेपतो मतम् ।
प्रमादात् यदि गच्छेद् वै तेषां शापो भवेत् ध्रुवम् ॥ ४३
पूर्णाभिषेक-राहित्यं वीर-पक्षे मतं शिवे !
पूर्ण-चक्रे महेशानि ! पूर्ण-चक्री भवेद् ध्रुवम् ॥ ४४
ऊर्ध्वाम्नाये महेशानि ! ऊर्ध्वाम्नायी व्रजेत् सदा ।
निर्वाण-दीक्षितो देवि ! निर्वाण-पूजने व्रजेत् ॥ ४५
षट्-शाम्भव-क्रमे देवि ! शाम्भवार्चा-विधौ व्रजेत् ।
मेधा-दीक्षा-विधौ देवि ! नेदं मानं मयेरितम् ॥ ४६
सिद्ध-रूपे महेशानि ! स्वेच्छया कर्म वा चरेत् ।
गौड-दक्षिण-काश्मीर-सम्प्रदाय-क्रमाद् भवेत् ॥ ४७
गौडे सर्वत्र गमनं कीर्तितं तु मया तव ।
षडाम्नाये महेशानि ! काश्मीरे गमनं भवेत् ॥ ४८
कुलाकुल-विभेदेन केरले गमनं भवेत् ।
पूर्णाभिषेक-युक्तानां सर्वत्र गमनं शुभम् ॥ ४९
पूर्णाभिषेकी देवेशि ! यस्मिन् देशे विराजते ।
स देशो धन्यतां याति समन्ताल्लक्ष-योजनम् ॥ ५०

पूर्णाभिषेक-युक्तानां शक्ति-पातः प्रजायते ।
अयोग्यस्यापि कालेन काली-विद्या-रतस्य च ॥ ५१
चतुःषष्टि-विधौ देवि ! शक्ति-पातो भवेत् ध्रुवम् ।
नील-सारस्वते तन्त्रे पञ्चधा परिकीर्त्तितः ॥ ५२
श्रीसुन्दर्य्या महेशानि ! शक्ति-पातोऽष्टधा भवेत् ।
छिन्ना-विद्या-विधौ देवि ! शक्ति-पातश्चतुर्विधः ॥ ५३
बगलाद्यासु विद्यासु शक्ति-पातो द्विधा भवेत् ।
वैष्णवाद्यागमे देवि ! शक्ति-पातस्तु पञ्चधा ॥ ५४
इति संक्षेपतः प्रोक्तं रहस्यं सादरं शृणु ।
शक्तिं विना महेशानि ! पूजनं यः समाचरेत् ॥ ५५
स दरिद्रो मम द्रोही तस्य नाशो भविष्यति ।
शक्ति-शिवात्म्यमासाद्य पूजनं समुपाचरेत् ॥ ५६
एवं यः कुरुते मर्त्यः स शिवो नात्र संशयः ।
शक्तेस्तु पूजनं कार्य्यं दिव्य-भाव-फलाप्तये ॥ ५७
इति संक्षेपतः प्रोक्तं पात्र-भेदं शृणु प्रिये !
रस-वेद-मितैः पात्रैः संख्या सर्वोत्तमा भवेत् ॥ ५८
कला-संख्या-मितैः पात्रैः संख्या प्रोक्ता तु मध्यमा ।
नाथ-संख्या-मितैः पात्रैः संख्या प्रोक्ता कनिष्ठिका ॥ ५९
बाण-संख्या-मितैः पात्रैः संख्या सामान्य-कर्मणि ।
केरलश्चैव काश्मीरो गौडश्चैव तृतीयकः ॥ ६०
केरलाख्य-मते देवि ! वारि-पात्रं तु दक्षिणे ।
काश्मीरे तर्पणे भेदो गौडे वाम-करे भवेत् ॥ ६१
देवी-प्रणव-नामा च निर्गुण-प्रणवस्तथा ।
बगला कमला वाणी पराद्याश्च शतोत्तराः ॥ ६२
अथातः संप्रवक्ष्यामि निर्णयं प्रणवस्य च ।
कला-पञ्चक-संयुक्तस्तत्क्रमं शृणु पार्वति ॥ ६३

अकारश्च उकारश्च मकारश्च तृतीयकः ।
नादश्चतुर्थो गदितः पञ्चमो बिन्दुरीरितः ॥ ६४
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पञ्च महाप्रेताः प्रणवं च समाश्रिताः ॥ ६५
शृणु यत्नेन देवेशि ! कला-सप्तक-रूपिणम् ।
कला-सप्त-स्वरूपं च पञ्चधा भेद ईरितः ॥ ६६
अकारश्च उकारश्च मकारश्च तृतीयकः ।
नाद-बिन्दुस्ततो देवि ! नादातीतस्ततो भवेत् ॥ ६७
बिन्दुतीता सप्तमी स्याच्छाम्भवी परिकीर्त्तिता ।
शक्तीः शृणु महेशानि ! किमितोऽपि रहस्यकं ॥ ६८
अकारश्च उकारश्च मकारश्च तृतीयकः ।
नादश्च तदतीतश्च बिन्दुश्चैव ततः परम् ॥ ६९
बिन्दुतीता सप्तमी स्यादेवं शक्ति-कला शिवे !
शाक्त-शक्ति-क्रमेणैव कला-सप्तकमीरितम् ॥ ७०
आदौ परा विनिर्दिष्टा ततश्चैव परात्परा ।
तदतीता तृतीया स्यात् चित्-परा च चतुर्थिका ॥ ७१
तत्परा पञ्चमी ज्ञेया तदतीता रसाभिधा ।
सर्वातीता सप्तमी स्यादेवं सप्त-विधाः कलाः ॥ ७२
पञ्च-क्रमेण देवेशि ! शृणु सप्त-कला-सतीम् ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदा-शिवः ॥ ७३
शान्तिश्च तदतीता च कला-सप्तकमीरितम् ।
चतुष्टयं तु कशिपुः मृतकश्च सदा-शिवः ॥ ७४
ब्रह्मादयश्चतुष्पादाः कशिपुस्तु सदा-शिवः ।
आच्छादनं तु कामेशस्तत्रस्था सुन्दरी कला ॥ ७५
प्रणवः सुन्दरी-रूपः कला-सप्तक-संयुतः ।
पञ्च-प्रणव-योगे तु कला-सप्तक-पञ्चके ॥ ७६

सप्त-तारेति विख्याता कथिता पूर्वमेव तत् ।
हंस-रूपा काम-कला तत्-स्वरूपं निगद्यते ॥ ७७

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः ।
हकारस्य सकारस्य लोपे काम-कला भवेत् ॥ ७८

पक्ष-द्वयेन रहितो हंसः काम-कला भवेत् ।
सोऽहमेतस्य देवेशि ! रूपं काम-कलाभिधम् ॥ ७९

सोऽहमित्यत्र देवेशि ! प्रणवः परिनिष्ठितः ।
जीवः पक्ष-द्वय-त्यागात् प्रणवः परिकीर्तितः ॥ ८०

परा-प्रासाद-विद्यायां एवमेव प्रकीर्तितम् ।
पक्ष-द्वयं सकारे च गगनेऽपि द्वयं भवेत् ॥ ८१

रकार-द्वय-योगे तु सकारोत्पत्तिरीरिता ।
ईकारैकार-योगे तु हकारः कीर्तितो मया ॥ ८२

अत एव महेशानि ! चतुः - पक्ष-स्वरूपिणी ।
चतुश्चरण-रूपा च परा-प्रासाद-देवता ॥ ८३

आद्ये आद्यं परित्यज्य चरमे तु तदन्तकम् ।
पक्ष-द्वयेन सन्त्यक्तः प्रणवः परिकीर्तितः ॥ ८४

रकारः प्रथमः पक्षस्त्वेकारस्तु द्वितीयकः ।
माया-बीजादिके देवि ! रति-बीजादिकेऽपि च ॥ ८५

प्रणवस्य समुत्पत्तिर्वर्तते प्रिय-वादिनि !
अर्द्ध-नारीश्वरो देवि ! हकारः परिकीर्तितः ॥ ८६

शक्ति-बीजं तथा प्रोक्तं शृणु काम-कलां शिवे !
ईकारार्द्ध-मतं बिन्दु-मुखं भानुरधो गतम् ॥ ८७

स्तनौ दहन-शीतांशुर्योनिर्हार्द्ध कला भवेत् ।
हकारार्द्ध-पदे देवि ! ईकारैकारमीरितम् ॥ ८८

मुखं बिन्दुर्महेशानि ! तदधस्तु कुच-द्वयम् ।
हकारार्द्ध-कला-रूपं योनि-चक्रं विदुः प्रिये ॥ ८९

अधोबिन्दुर्महेशानि ! परा-रूपः प्रकीर्त्तितः ।
योनि-बिन्दुर्महेशानि ! तत्-परा रूपवान् भवेत् ॥ ९०
कुच-बिन्दुर्महेशानि ! तदतीता प्रकीर्तिता ।
चित्परा तु द्वितीयस्तु तदतीता मुखे भवेत् ॥ ९१
सर्वातीता चण्ड-रूपा बीजादूर्ध्वं व्यवस्थिता ।
वाच्यातीतां कलां विद्धि ईकारोर्ध्व-कलां शिवे ॥ ९२
इति काम-कला-रूपं कीर्त्तितं तु मया तव ।
अन्यच्चैव शकारं तु शक्ति-द्वय-पुटं भवेत् ॥ ९३
रकारस्तु महेशानि ! काली काम-कला मनुः ।
काली काम-कला देवि! मुख्या हंस-गता भवेत् ॥ ९४
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ?

श्रीशिव उवाच–

गृह-वास्तुं प्रवक्ष्यामि येन देव-मयो भवेत् ॥ ९५
ईशानादि-निर्ऋत्यन्तं वास्तु-सर्पः प्रकीर्तितः ।
वाय्वादि-वह्नि-पर्य्यन्तं सर्प-हस्त-द्वयं भवेत् ॥ ९६
पैत्र्यां पाद-युगं देवि ! ऐशान्यां शिर एव च ।
सर्प-गात्रमिदं प्रोक्तं ज्ञात्वा कर्माणि कारयेत् ॥ ९७
शिरोघाताद्भवेन्मृत्युः पुच्छे सर्वार्थ-नाशनम् ।
पिण्डिकायां भवेद् दुःखं क्रोडे सर्वार्थ-साधनम् ॥ ९८
चल-स्थिर-प्रभेदेन द्विधा वास्तु प्रकीर्त्तितम् ।
नैर्ऋत्यां पूजयेद् देवि ! वास्तु-सर्प-गृहाधिपम् ॥ ९९
वास्तु-पूजां विधायाथ कूर्मं ज्ञात्वा प्रयत्नतः ।
स्थान-संशोधनं कृत्वा स्वयं तु व्रतवान् भवेत् ॥ १००
परान्नं च पर-द्रव्यं तथैव तु प्रति-ग्रहम् ।
पर-स्त्रीं पर-निन्दां च मनसाऽपि विवर्जयेत् ॥ १०१
जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
मनो दग्धं पर-स्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने ॥ १०२

प्रति-ग्रहं महेशानि ! सर्वथा परिवर्जयेत् ।
प्रति-ग्रहोत्थ-पापं तु शृणु यत्नेन शाम्भवि ॥ १०३
मृते तु नरकं यायात् स्व-स्व-कर्मानुसारतः ।
भोगोत्तरं महेशानि ! पितृ-लोकं व्रजन्ति ते ॥ १०४
ततो व्रजन्ति ते देवि ! सूर्य-लोकं प्रति-ग्रही ।
ततश्चन्द्र-पुरं गच्छेत् ततश्चन्द्रत्वतां व्रजेत् ॥ १०५
भारत्वं प्राप्य देवेशि ! भूमौ वर्षति योगतः ।
पूर्व-दत्तं तदन्नं हि इह प्रत्यक्ष-गोचरम् ॥ १०६
दत्तं विना महेशानि ! न पूर्त्तिः क्वापि दृश्यते ।
तदन्नं भाण्ड-गोपेन चाग्नौ दाहत्वतां व्रजेत् ॥ १०७
पाके तूदर-पूर्त्यर्थं भुज्यते सर्व-जन्तुभिः ।
यावत्तु पूर्व-जनुषि दत्तं दापितमेव तु ॥ १०८
तदेव प्राप्यते देवि ! नादत्तमुपतिष्ठते ।
नाधिकं न च वै न्यूनं प्राप्यते जन्तुभिः क्वचित् ॥ १०९
तदन्नं देव-देवेशि ! तस्य विष्ठात्वतां व्रजेत् ।
तत्र देवि ! कृमिर्भूत्वा तदन्ते चान्य-योनि-भाक् ॥ ११०
प्रति-ग्रहं परित्यज्य मन्त्र-सिद्धिं समाचरेत् ।
जात-सूतकमादौ स्यात् तदन्ते मृत-सूतकम् ॥ १११
सूतक-द्वय-संयुक्तः स मन्त्रो नैव सिध्यति ।
जन्म-सूतकजं देवि ! संस्कार-दशकं शिवे ॥ ११२
जननादिषु गुप्तान्तं संस्कार-दशकं शिवे !
दिवसा दश वै देवि ! सूतके परिकीर्त्तिताः ॥ ११३
दश-संस्कार-योगेन जात-सूतक-वारणम् ।
जपादि-भोजनान्तं हि दशाङ्गा तु पुरस्क्रिया ॥ ११४
मृत-सूतकमेतद्धि दशाहं सूतकं मतम् ।
जीव-हीनो यथा देही सर्व-कर्म्मसु न क्षमः ॥ ११५

पुरश्चरण-हीनो हि तथा मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ।
द्वितीयं तु मया प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ११६

श्रीदेव्युवाच—

विश्वेश ! श्रोतुमिच्छामि चक्रमष्टाष्टकाभिधम् ।
रहस्याति-रहस्यं च वद मे करुणानिधे ॥ ११७

श्रीईश्वर उवाच—

रहस्याति-रहस्यं हि कथ्यते गोपनं कुरु ।
उत्तमं मध्यमं चैव तृतीयमधमं भवेत् ॥ ११८
उत्तमं शिव-चक्रं स्यान्मध्यमं वैष्णवं भवेत् ।
अधमं काम-चक्रं स्याज्जीव-चक्र-मिति स्मृतम् ॥ ११९
जीव-चक्रं तथा प्रोक्तं जीव-मेरुस्तथा त्वयम् ।
पंक्त्याकारेण देवेशि ! चक्राकारेण वा जपेत् ॥ १२०
विन्दु-स्थाने स्वयं स्थित्वा निर्विकल्पो जितेन्द्रियः ।
अविकारं समासाद्य पूजां कुर्य्यात् प्रयत्नतः ॥ १२१
विकारी जायमानस्तु साधको नश्यति ध्रुवम् ।
त्रिशतं षष्टि देवेशि ! देव्यावरण-शक्तयः ॥ १२२
पञ्च-विंशति देवेशि ! पञ्चिका-शक्तयः क्रमात् ।
षट् षड्-दर्शने प्रोक्ता षडाम्नाये तु षट् भवेत् ॥ १२३
द्वि-सप्ततिर्महेशानि ! निर्वाण-शक्तयः स्मृताः ।
त्रि-शतं षष्ठि देवेशि ! शाम्भव-क्रम-रश्मयः ॥ १२४
योगिनीनां चतुः-षष्टि-कोटिरुक्ता महेश्वरि !
षोढा-न्यासोदिताऽशेष-शक्तयो याः प्रकीर्तिताः ॥ १२५
प्रति शक्तौ महेशानि ! कोटि-संख्या प्रकीर्त्तिता ।
तदष्ट-गुणितं कुर्य्यादष्टकं कीर्त्तितं मया ॥ १२६
सर्वत्राष्ट-गुणं कुर्याद् भवेदष्टाष्टकं क्रमात् ।
शैवाष्टकमिदं प्रोक्तं शम्भु-साध्यं न चान्यथा ॥ १२७
प्रत्येकमष्ट-कोटिर्वा कला-कोटिश्च वा प्रिये !
श्रीविद्यायां कनिष्ठं स्यान्निर्वाणे मध्यमं भवेत् ॥ १२८

षट्-शाम्भवादि-मेधान्त-दीक्षायां परमेश्वरि !
उत्तमः कथितो देवि ! क्रमस्त्वष्टाष्टकाभिधः ॥ १२९
अष्टाष्टकं वैष्णवाख्यं कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
आवृत्ति-शक्तयो देवि ! त्रि-शतं षष्टि कीर्तिताः ॥ १३०
प्रति-शक्तौ त्वष्ट-शक्तिः पूजयेद् यत्नतः शिवे !
द्वि-सहस्रं चाष्ट-शती त्वशीतिः शक्तयो मताः ॥ १३१
प्रत्येकाष्ट-गुणं चक्रं प्रोक्तमष्टाष्टकं त्विदम् ।
अष्टाष्टकमिदं प्रोक्तं पूर्वमष्ट-गुणं यदा ॥ १३२
तदानन्द-भैरवाख्यं प्रोक्तमष्टाष्टकं शिवे !
लक्ष-द्वयं महेशानि ! चत्वारिंशत्-सहस्रकम् ॥ १३३
एतद् द्विगुणितं देवि ! चतुर्लक्षं महेश्वरि !
षष्टि-साहस्रकं देवि ! अशीतिः शक्तयो मताः ॥ १३४
द्वि-शतं विंशतिरिति त्वानन्दाष्टकमीरितम् ।
चतुर्विंशति-साहस्रं चत्वारिंशति-शक्तयः ॥ १३५
आवृत्तौ तु महेशानि ! त्रि-शतं षष्टि-रश्मयः ।
एवमेकं पूजनं तु त्वष्टावरण-संयुतम् ॥ १३६
एकाष्टकमिदं प्रोक्तमेवमष्टाष्टकं भवेत् ।
द्वि-सहस्रं चाष्ट-शतमशीतिः शक्तयो भवेत् ॥ १३७
अष्टाष्टकमिदं प्रोक्तं पञ्च-पञ्च-क्रमेण तु ।
पूर्णाभिषेक - संयुक्तस्तूर्ध्वाम्नाय - प्रदीक्षितः ॥ १३८
षट्-शाम्भव-क्रमे देवि ! कुर्यादष्टाष्टकं क्रमात् ।
अष्टाष्टकस्य विज्ञानी शिव एव न संशयः ॥ १३९
शिरो देयं धनं देयं देया स्त्रीर्यत्नतः शिवे !
वसु-पूर्णं गृहं देयं त्विदं साधनमुत्तमम् ॥ १४०
रहस्यादि-रहस्यं हि गोप्याद् गोप्यं महेश्वरि !
प्रोक्तमेतन्मया देवि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १४१

एतस्य फल-बाहुल्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
स्त्रियो देवाः स्त्रियः सृष्टिः स्त्रियः कल्याणकारिणी॥१४२
स्त्री-रूपं तु महेशानि ! यत्-किञ्चिज्जगती-तले ।
एका चेत् युवती पूज्या समस्तं जगती-तलम् ॥ १४३
स्त्रीणां दर्शन-मात्रेण जगती-तल-पूजनम् ।
कृतं भवति देवेशि ! नात्र कार्या विचारणा ॥ १४४
रूपं दृष्ट्वा तु प्रणमेद् रूपमानन्द-कारकम् ।
रूपानन्दे समायाते किमन्यत्र प्रयोजनम् ॥ १४५
रूपं रूपं परं धाम रूपं रूपं परं तपः ।
रूपं रूपं परं वस्तु न भूतं न भविष्यति ॥ १४६
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ?

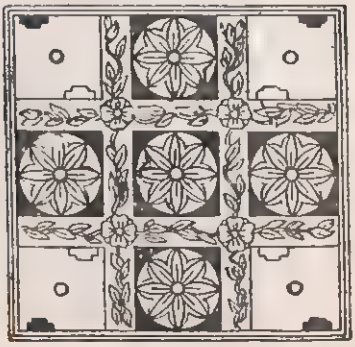

चतुर्थः पटलः

पात्र-निर्णय-कथनम्

श्रीदेव्युवाच—

अष्टाष्टकं त्वया प्रोक्तं सर्व-सिद्धि-करं भुवि ।
किं सम्प्रदाय-मार्गेण पात्र-ज्ञानं च कीर्तितम् ॥ १
तन्मे वद महा-देव ! यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यं च प्रवक्ष्यामि ज्ञानं सङ्कथ्यते शृणु ॥ २
केरलश्चैव काश्मीरो गौड-मार्गस्तृतीयकः ।
षट्-पञ्चाशद्-देश-भेदात् सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति ॥ ३
अष्टादशसु देशेषु गौड-मार्गः प्रकीर्त्तितः ।
नेपाल-देशमारभ्य कलिङ्गान्तं महेश्वरि ॥ ४
आर्यावर्त्तं समारभ्य समुद्रान्तं महेश्वरि !
केरलाख्यः क्रमः प्रोक्तस्तून-विंशति-देशके ॥ ५
तदन्य-देशे देवेशि ! काश्मीराख्यः क्रमः शुभः ।
शङ्करस्तु भवेद् बाह्यो वेद-बाह्यो द्विजो यथा ॥ ६
केरलादि-क्रमेणैव शृणु पात्र-विनिर्णयम् ।
विश्वामित्र-कपालं तु केरले परि-कीर्त्तितम् ॥ ७
पात्रं तुम्बी-कपालं तु काश्मीराख्य-क्रमे भवेत् ।
महा-कपाल-पात्रं च गौड-मार्गे प्रकीर्त्तितम् ॥ ८
कपालं त्रि-विधं प्रोक्तं सम्प्रदाय-क्रमेण च ।
महा-कपालं त्रि-विधं शङ्ख - शुक्ति - कपर्दिकाः ॥ ९
कपर्दिका-भिधं पात्रं सर्व-पात्रोत्तमोत्तमम् ।
सम्प्रदाय-क्रमेणैव महा-कपालमीरितम् ॥ १०
सामान्यार्घ्यं स्फाटिकं स्याद् विश्वामित्रं विशेषजे ।
रौप्यमर्घ्यं महेशानि ! सौवर्णं गुरु-पात्रकम् ॥ ११

भैरवे शुक्ति-पात्रं च वीरे शङ्खाभिधं भवेत् ।
शक्ति-पात्रं काच-भवं योगिन्यां तु कपालकम् ॥ १२
बलि-पात्रं ताम्रजं च पाद्यादीनि यथा-क्रमात् ।
रत्नजानि महेशानि ! तदभावे तु पूर्ववत् ॥ १३
केरलाख्यः क्रमः प्रोक्तः काश्मीरं शृणु पार्वति !
सामान्याघ्यं महेशानि ! ताम्रजेन प्रकल्पयेत् ॥ १४
विशेषाघ्यें यत्र तुम्बी किंवा स्फटिकजं च वा ।
शुक्तिजं गुरु-पात्रं च घटो रौप्य-समुद्भवः ॥ १५
भैरवे तु कपालं स्याद् वीरे मुनि-कपालजम् ।
स्फाटिकं शक्ति-पात्रं च योगिन्यास्ताम्रजं भवेत् ॥ १६
बलि-पात्रं काच-भवं शुक्तिजं पाद्य-कर्मणि ।
अर्घ्याचमन-कर्मादौ शङ्खजं परि-कीर्त्तितम् ॥ १७
अन्यानि ताम्र-पात्राणि शर्करोत्थं तु भोगकम् ।
शुक्ति-पात्रं गौड-मार्गे सामान्याघ्यें च वा भवेत् ॥ १८
विशेषाघ्यें कपालाख्यमभावे स्फाटिकं भवेत् ।
स्वर्णोद्भवो घटः प्रोक्तो गुरु-पात्रं तु रौप्यजम् ॥ १९
भैरवाख्यं महेशानि ! नारिकेलाभिधं भवेत् ।
काच-पात्रं वीर-पात्रं शक्तौ तु शर्करोद्भवम् ॥ २०
रत्न-पात्रं तु योगिन्यां बलि-पात्रं तु कूर्मजम् ।
पाद्यादीनि महेशानि ! यथा-लाभेन धारयेत् ॥ २१
भोग-पात्रं तु काश्मीरे गौडे स्यादात्म-पात्रकम् ।
दिव्य-पात्रं केरले स्यादिति पात्रस्य निर्णयः ॥ २२
विज्ञान-केरले देवि ! शृणु पात्रस्य निर्णयम् ।
शुक्ति-पात्रं तु सामान्ये विशेषे नारिकेलजम् ॥ २३
स्फाटिकं गुरु-पात्रं च काच-जन्यो घटो भवेत् ।
पात्रं तुम्बी भैरवस्य वीर-पात्रं तु शार्करम् ॥ २४

शक्ति-पात्रं तु कापालं योगिन्यां ताम्रजं भवेत् ।
शङ्खजं वीर-पात्रं च पाद्य-पात्रं च ताम्रजम् ॥ २५
रौप्यमाचमने प्रोक्तं स्वर्णमर्घ्यादि-कर्मसु ।
अथार्घ्ये मधुपर्के च तथैवाचमने शिवे ॥ २६
स्नान-पात्रं रत्नजं स्याद् विज्ञान-केरले शिवे !
केरले नारिकेलेन सर्व-कार्याणि साधयेत् ॥ २७
केरले वीर-पात्रेण सर्व-कार्याणि कारयेत् ।
केरले स्वर्ण-पात्रेण सर्व-पात्राणि कारयेत् ॥ २८
केरले रौप्य-पात्रेण सर्व-पात्राणि कारयेत् ।
अथोक्त-पात्र-मध्ये तु एकेन सर्व-कल्पनम् ॥ २९
एक-जातीय-पात्रेण सर्व-पात्राणि वा शिवे !
कुर्याद् यत्नेन देवेशि ! सम्प्रदाय-क्रमेण च ॥ ३०
कांस्यं लोहं तथा रौप्यं सौवर्णं परमेश्वरि !
स्फाटिकं पारदोत्थं च तथा मारकतं शिवे ॥ ३१
रत्न-वैडूर्य्यजं वापि नव-रत्न-भवं च वा ।
नारिकेलं महा - शङ्ख - सम्भवं च यथोत्तरम् ॥ ३२
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठं सर्व-सिद्धि-प्रदायकम् ।
वृक्षेषु देव-देवेशि ! सर्व-सिद्धि-प्रदायकम् ॥ ३३
वृक्षेषु देव-देवेशि ! यज्ञ-दारु-भवं शिवे !
श्रीफलोत्थं खड्गजं च यथा-योगेन कारयेत् ॥ ३४
अश्वत्थ-पत्राकारं वा कुतपाकारमेव च ।
त्रिकोण-रूपं यत् पात्रं कुतपः परिकीर्त्तितः ॥ ३५
योनि-रूपं कलालास्य-सन्निभं सुमनोहरम् ।
सुन्दर्य्या रत्नजं पात्रं तारा-च्छिन्ना-विधौ स्मृतम् ॥ ३६
दल-रूपं महेशानि ! मन्त्र-मात्रे प्रकीर्त्तितम् ।
अश्वत्थ-पत्राकारं तु विद्या-पञ्चक-गोचरम् ॥ ३७

क्रिया-नियुक्तं देवेशि ! त्रि-त्रि-शक्तौ प्रकीर्त्तितम् ।
त्रि-शक्तिस्त्रि-विधा देवि ! त्रितयं त्रितयं त्रिषु ॥ ३८
त्रिकोण-पात्रं देवेशि ! मन्त्र-मात्रे प्रकीर्त्तितम् ।
वर्त्तुलं वैष्णवे प्रोक्तं सालम्बा शिव-गोचरा ॥ ३९
कपाल-पात्राभावे तु विश्वामित्र-कपालजम् ।
तदभावे महेशानि ! तद्रूपं धातु-गोचरम् ॥ ४०
कर्त्तव्यं यत्नतो देवि ! बगलायां च काचजम् ।
वाम-दक्ष-क्रमेणैव विपरीतं तथा भवेत् ॥ ४१
अथवा देव-देवेशि ! कपालं सर्व-गोचरम् ।
यत्र तुम्बी-कपालं तु प्रोक्तं कापालिके मते ॥ ४२
कपाल-पात्रं देवेशि ! नील - चीन - क्रमे मते ।
अथवा देवेशि ! महा-पात्रं कपर्दिकम् ॥ ४३
पात्र-मध्ये कपर्दीशस्तत्र तिष्ठति पार्वति !
त्वरितं सिद्धि-दानत्वात् पञ्च-विद्या-विधौ स्मृतम् ॥ ४४
विश्वामित्र-कपालं च ब्राह्मणस्य प्रकीर्त्तितम् ।
तदभावे महेशानि ! कुल-पात्र-समं परम् ॥ ४५
अर्घ्य-पात्रं शुभं विद्धि सर्व-सिद्धि-प्रदं शिवे !
वर्षाणां तु चतुः-षष्ठिस्तास्वार्घ्ये देवता स्थिता ॥ ४६
शतं वर्षाणि रौप्ये च सहस्रं स्वर्ण-पात्रके ।
दश-साहस्रकं देवि ! स्फाटिके देवता स्थिता ॥ ४७
तथा मारकते देवि ! रत्नजे रत्न-युग्मकम् ।
विश्वामित्र-कपाले तु लक्ष-वर्षाणि पार्वति ॥ ४८
कपाल-पात्रे देवेशि ! दश-लक्षाणि पार्वति !
खड्गजे दश-साहस्रं मौक्तिके विंशतिः प्रिये ॥ ४९
विश्वामित्र-कपाले वा कपाले वा महेश्वरि !
देवता वरदाः सर्वाः स एव परमेश्वरः ॥ ५०

स धन्यः स च विज्ञानी स एव दर्शनी मतः ।
स सर्व-यज्ञ-याजी च सर्व-विद्या-रहस्य-वित् ॥ ५१
स ब्रह्म-वित् सर्व-मन्त्र-रहस्य-रूप एव हि ।
आनन्दात्मा परात्मा सः सकलादि-प्रभेदतः ॥ ५२

विश्वामित्र-कपाले वा सर्व-पात्राणि कारयेत् ।
कपर्द्यां वा महेशानि ! सर्व-पात्राणि कारयेत् ॥ ५३
एके कपाले देवेशि ! सर्व-पात्राणि भावयेत् ।
विश्वामित्र-कपालस्य कपालस्यापि पार्वति ॥ ५४

शिव-शक्त्योर्यथा ज्ञानं नहि कोऽपि विजानते ।
तथा कपाल-विज्ञानं नहि कोऽपि विजानते ॥ ५५
कपर्दी च भवेद् यद् यत् तदेव नारिकेलतः ।
पात्र-मालां यथा यन्त्रं कारयेत् परमेश्वरि ॥ ५६

तृतीयः स्फाटिको देवि ! सकलो निष्कलो मतः ।
सूर्याद् वह्नि-करो देवि ! सकलः परि-कीर्त्तितः ॥ ५७
पूर्वोत्तर-प्रभेदेन चापरं सकलं शृणु ।
चन्द्र-दर्शन-मात्रेण पौर्णमायामथाश्विने ॥ ५८

सकलः कीर्तितो देवि ! जल-स्रावी महोत्तमः ।
कालीं तारां तर्पयेद्धि तेनामृत-जलेन च ॥ ५९
केरलाख्ये सम्प्रदाये नारिकेलार्घ्य-पूजनम् ।
काश्मीराख्ये सम्प्रदाये स्फाटिकार्घ्य-प्रपूजनम् ॥ ६०
गौड-मार्गे महेशानि ! कपालार्घ्ये प्रपूजनम् ।
काश्मीर-गौडयोर्देवि! द्रव्य-भेदोऽस्ति वै क्वचित् ॥ ६१

नारिकेलं समादाय सुपक्वं सुन्दरं दृढम् ।
मध्ये स्फोटं समाचर्य नेत्र-नासा-सुलक्षणम् ॥ ६२
नेत्र-द्वयं तु संस्थाप्य चारु-रूपं गुणोत्तरम् ।
नव-वर्ण-मयं कृत्वा पञ्च-वर्ण-मयं च वा ॥ ६३

रौप्य-नेत्रे स्वर्ण-नेत्रे नील-रत्नादि-नेत्रके ।
समासाद्य महेशानि ! तत्र नासां समाचरेत् ॥ ६४
नेत्र-युग्मस्य मध्ये तु मुखं कार्यं महेश्वरि !
ईदृशं सूक्ष्म-रूपं च मालार्थे परि-कीर्तितम् ॥ ६५
तद्-रूपं स्फाटिकोत्थं च काश्मीराख्य-मते मतम् ।
त्रिकोण-योनि-रूपो वा स्फाटिकः शुभ-दायकः ॥ ६६
गौडे कपालं सम्प्रोक्तं नासायां मुखमाचरेत् ।
ऊर्ध्वाम्नायः केरलः स्यात् काश्मीरः पश्चिमो भवेत् ॥६७
विलासाख्यो वैष्णवाख्यो दक्षिणाम्नाय एव च ।
पूर्वे चैतन्य आख्यातस्तूत्तरे गौड एव च ॥ ६८
विद्या-संकेत-भेदाभ्यां कपालं तारिणी-त्रयम् ।
महा-शङ्खेऽप्यसक्तश्चेत् स्फाटिकया मालया जपेत् ॥६९
कपालालाभतो देवि ! स्फाटिकं कारयेद् ध्रुवम् ।
पात्राणां निर्णयं वक्ष्ये संख्या-भेद-क्रमेण च ॥ ७०
सम्प्रदाय-क्रमेणैव पात्राणां स्थापनं शिवे !
महा-कला-कला-रन्ध्र-वर्णेति वेद्य भावयेत् ॥ ७१
सामान्यार्घ्यो भवेदादौ सामान्यार्घ्यो द्विधा स्मृतः ।
सकलो निष्कलश्चैव सकलो द्वार-पूजनात् ॥ ७२
निष्कलः केवलो यश्च निष्कलः सर्व-गोचरः ।
सामान्यार्घ्य-द्वयं देवि ! घटश्चैव तृतीयकः ॥ ७३
विशेषार्घ्यश्चतुर्थः स्याद् गुरु-पात्रं तु पञ्चमम् ।
दिव्यौघाख्यं च सम्प्रोक्तं सिद्धौघाख्यं रसाभिधम् ॥ ७४
मानवौघाभिधं देवि ! सप्तमं परि-कीर्त्तितम् ।
गुरु-पात्रं ततः प्रोक्तं भैरवाख्यं च रन्ध्रकम् ॥ ७५
शक्ति-पात्रं च दशमं वीर-पात्रं शिवाभिधम् ।
ततः श्रीयोगिनी-पात्रं सूर्य-संख्याभिधं भवेत् ॥ ७६

नव वै बलि-पात्राणि सकलादि-प्रभेदतः ।
बल्यर्पणाभिधं पात्रं सकल परि-कीर्त्तितम् ॥ ७७
निष्कलानि महेशानि ! बटुकादीनि सिद्धयः ।
बटुको योगिनी-क्षेत्रं गणपाः परमेश्वरि ॥ ७८
सर्व-भूतानि देवेशि ! ताराक्षोभ्यस्तथैव च ।
पाद्य-त्रयं तथा देवि ! प्रोक्तमाचमनीयकम् ॥ ७९
अर्घ्य-पात्रं-त्रयं देवि ! मधुपर्के त्रयं भवेत् ।
पञ्चामृते पञ्चकं च स्नानार्थं गुण-संख्यकम् ॥ ८०
ततस्तु प्रोक्षणी-पात्रं कर-क्षालनजं ततः ।
गन्ध-पात्रं पुष्प-पात्रं ततो नैवेद्य-पात्रकम् ॥ ८१
शुद्धोदकाभिधं पात्रं भोगात्म-पात्रकं ततः ।
ततः पाचक-पात्रं तु ततो नीराजनादिकम् ॥ ८२
स्थानीय-पीठ-पात्रं च दीप-पात्र-चतुष्टयम् ।
घृत-तैले दक्ष-वामे सौगन्ध्य-मदने तथा ॥ ८३
पात्राणां च चतुःषष्टिः संख्या प्रोक्ता तु केरले ।
काश्मीरे पीठमेवं स्यात् कला-संख्यानि वै शृणु ॥ ८४
दिव्योत्तमोत्तमौ प्रोक्तौ सद्यः सिद्धि-करौ परौ ।
अथ षोडश-पात्राणि शृणुष्व परमेश्वरि ॥ ८५
सामान्यार्घ्यं विशेषार्घ्यं श्री-पीठं गुरु-पात्रकम् ।
भैरवाख्यं पञ्चमं तु वीर-पात्रं रसाभिधम् ॥ ८६
शक्ति-पात्रं योगिनीं च बलि-पाद्ये तथैव च ।
आचमनीयाख्य-पात्रं चार्घ्य-पात्रं तथैव च ॥ ८७
मधुपर्काभिधं पात्रं पञ्चामृतमनन्तरम् ।
स्नान-पात्रं हस्त-शुद्धि-पात्रं च प्रोक्षणीं तथा ॥ ८८
पात्रं षोडशकं प्रोक्तं केरले पश्चिमेऽपि च ।
मधुपर्कोत्तरं देवि ! शङ्खेति कौलिकेऽपि च ॥ ८९

चिदानन्द-सम्प्रदाये शृणु पात्राणि पार्वति !
सामान्यं च विशेषं च कलशं गुरु-पात्रकम् ॥ ९०
भोग-पात्रं शक्ति-पात्रं योगिनी-वीर-पात्रके ।
बलि-पाद्याचमनीयं च अर्घ्य-स्नानाभिधं प्रिये ॥ ९१
देवी-शङ्खेति देवेशि ! पात्राण्येवं तु षोडश ।
अथवा कलशं शङ्खं शक्ति-पात्र-त्रयं भवेत् ॥ ९२
श्रीगुरु-भोग-पात्राणि त्रिषु पात्रेष्वयं विधिः ।
आनन्दाख्ये मते देवि ! पात्राणि कीर्त्तितानि च ॥ ९३
सामान्यार्घ्यो विशेषार्घ्यो घटः श्रीगुरु-भोजनात् ।
शक्ति-पात्रं योगिनी च वीर-पात्रं बलिस्तथा ॥ ९४
पाद्यमाचमनीयं च भोग-चाराभिधे भवेत् ।
देवी-पात्रं श्रीगुरुश्च भोगश्च योगिनी तथा ॥ ९५
बलि-पात्रं शक्ति-पात्रं वीर-पात्रं तथैव च ।
तथाचमन-पात्रं च चिदानन्देष्वयं विधिः ॥ ९६
देवी-गुरु-भोग-पात्रं योगिनी-ब्रह्म-शक्तिजम् ।
सिद्ध-चैतन्य-मार्गस्य पात्राणि परमेश्वरि ॥ ९७
योगिनी-वीर-पाद्यादि पञ्च चक्र-मते भवेत् ।
आनन्द-वीर-देवस्य क्रमः प्रोक्तो महेश्वरि ॥ ९८
सामान्यार्घ्यो विशेषार्घ्यः कलशो गुरु-भैरवः ।
एते सर्वादौ सम्प्रोक्ताः सामान्य-परिभाषया ॥ ९९
बलिः पाद्याचमनीये च अर्घ्येति नव पार्वति !
पञ्चमानन्द-नाथस्य मार्गः प्रोक्तो मया तव ॥ १००
पञ्चकं भोग-शक्तौ च विश्व-रूपाभिधे भवेत् ।
देवी-गुरु-भोग-शक्ति-योगिनी-वीर--पात्रकम् ॥ १०१
बलिः पाद्याचमनीये च अर्घ्येति योग-रूपजे ।
सृष्टि-संहार-मार्गेण परिवर्त-क्रमेण च ॥ १०२

ओड्यानं चतुरस्रं च काम-रूपं च वर्तुलम् ।
जालन्धरं त्वर्ध-चन्द्रं त्र्यस्रः पूर्ण-गिरिर्भवेत् ॥ १०३
शङ्ख-मन्त्र-भोग-पूजा-बलि-पात्राणि पञ्च च ।
स्व-दक्षिणादि-वामान्तं संस्थाप्य पूजयेच्छिवाम् ॥ १०४
कुल-नाथ-मतं प्रोक्तं भैरवस्य मतं शृणु ।
स्व-वाम-भागे देवेशि ! अर्घ्यादि-स्थापन-क्रियाम् ॥ १०५
पाद्यार्घ्याचमनीयानि सामान्यार्घ्य-विशेषकम् ।
सामान्यार्घ-घटो देवि ! श्री-पात्रं देवताग्रके ॥ १०६
स्व-वामे कलशस्यांके मधुपर्को महेश्वरि !
तद्-दक्षिण आचमनीयं पाद्यं यत्नेन संचरेत् ॥ १०७
निवापाख्य-मतं प्रोक्तं संक्षेपेण महेश्वरि !
अथ वक्ष्यामि देवेशि ! शम्भु-नाथ-मतं शृणु ॥ १०८
आदौ कुम्भं तथा शङ्खं श्री-पात्रं शक्ति-पात्रकम् ।
गुरु-पात्रं भोग-पात्रं बलि-पाद्यादि-पात्रकम् ॥ १०९
योगिनी-वीर-पात्रं च वामावर्त्त-क्रमेण च ।
सामान्यार्घ्य-घटं चैव श्री-पात्रं तदनन्तरम् ॥ ११०
श्री-पात्र-घटयोर्मध्ये सर्व-पात्राणि पातयेत् ।
गुरु-पात्रं घटस्यान्ते तदन्ते भोग-पात्रकम् ॥ १११
तदन्ते शक्ति-पात्रं च योगिनीनां तु पात्रकम् ।
तदन्ते वीर-पात्रं च तदन्ते बलि-पात्रकम् ॥ ११२
पाद्यं चाचमनीयं च तदन्ते चार्घ्य-पात्रकम् ।
पुनराचमनीयं च मधुपर्कस्तथैव च ॥ ११३
स्नानीयं प्रोक्षणी चेति काश्मीराख्ये कलाभिधाः ।
कर-क्षालनजं चैव तथा पञ्चामृतेति च ॥ ११४
तदाष्टादश-पात्राणि काश्मीराख्य-मते शिवे !
सामान्यार्घ्य-विशेषार्घ्यौ श्री-घटः परमेश्वरि ॥ ११५

घटान्ते गुरु-पात्रं च तदन्ते भैरवाभिधम् ।
शक्ति-पात्रं ततः प्रोक्तं वीर-पात्रं ततः शिवे ॥ ११६
बलि-पात्रं योगिनी च पान-पात्रं तथैव च ।
भोग-पात्रं च देवेशि ! नव-पात्राणि पार्वति ! ११७
पाद्यादीनि महेशानि ! सामान्यत्वेन पश्चिमे ।
तद्-दक्षिणे पाद्य-पात्रमर्घ्यसाचमनीयकम् ॥ ११८
प्रोक्षणीति महेशानि ! स्थापेयदाद्य-वत् शिवे !
गुरु-पात्रं तत्-पदाभ्यां भैरवं बटुकेन च ॥ ११९
शक्ति-पात्रं भुवनेश्या वीर-पात्रं शिवेन च ।
बलि-पात्रं गणेशाद्यैर्योगिन्यां तन्मनुर्भवेत् ॥ १२०
अन्यानि प्रणवेनैवं सर्व-पात्रेष्वयं विधिः ।
विशेषार्घ्येण दिव्यौघान् गुरु-पात्रे गुरून् यजेत् ॥ १२१
पुरुषं भैरवेणैवं श्री-पात्रेणाऽमृतेश्वरि !
मूल-देवी-पदे देवी प्रोक्ता तु मूल-शारदा ॥ १२२
आनन्द-भैरवं देवं भैरवेन प्रतर्पयेत् ।
बलिना तु गणेशादीन् योगिन्या योगिनीं शिवे ॥ १२३
हृदि देवीं विशेषेण श्री-पात्रेण तु सावृतिम् ।
विशेषेण हृदा प्रोक्तः प्रोत्सर्गः श्री-जलेन च ॥ १२४
अन्येषां चैव सामान्य-पात्रेण परमेश्वरि !
वीर-पात्रेण लोकेशाः शक्त्या ब्राह्म्यादि-मातरः ॥ १२५
विशेष-पात्राद्या पूजा सा पूजा सर्वतोत्तमा ।
प्रत्यावृत्तौ महेशानि ! देवताभ्यो निवेदनम् ॥ १२६
प्राणायाम-प्रमाणं च षडङ्ग-ध्यानके ततः ।
पुनरावरणं पूज्यं पञ्च षोडश वै दश ॥ १२७
जपं कृ.वा सन्निवेद्य प्राणायामादि-पूर्वकम् ।
पुनरावरणं पूज्यं प्रोक्तमावरण-क्रमः ॥ १२८

एवं क्रमेण देवेशि ! सर्वावृत्ति प्रपूजयेत् ।
प्रत्यावृत्तौ प्रोक्त-मुद्रां दर्शयेद् विधि-पूर्वकम् ॥ १२९
अनुक्त-मुद्रावरणे तदायुध-मयी भवेत् ।
सङ्घट्टना योनि-मुद्रा खेचरी च तदायुधा ॥ १३०
यदावरण-संक्षेपस्तदावरण-मयी च सा ।
विस्तारश्चेत् महेशानि ! सङ्घट्टाद्यास्तदन्तकाः ॥ १३१
पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्वा सायुधेति सवाहना ।
सशक्ती च समुद्रा च ससिद्धी च समुच्चरेत् ॥ १३२
सम्प्रदाय-त्रयेऽपि स्यात् काण्डानु-समयो ह्ययम् ।
सामान्यार्घ्य-घटे देवि ! विशेषार्घ्यस्तृतीयकः ॥ १३३
पात्र-त्रय-क्रमेणैव पूजनम् वा भवेत् शिवे !
सामान्यं च विशेषं च श्री-घटश्च तृतीयकः ॥ १३४
केवलं तु विशेषेण पूजनं तु महेश्वरि !
गौड-मार्गे महेशानि ! पात्राणां निर्णयं शृणु ॥ १३५
सामान्यं द्वितयं देवि ! द्वार-देशान्त-मार्गतः ।
देवाग्रे तु विशेषार्घ्यो घटान्ते गुरु-पात्रकम् ॥ १३६
श्री-पात्र-संज्ञा देवेशि ! विशेषार्घ्ये प्रकीर्तिता ।
भोग-पात्रं ततो देवि ! शक्ति-पात्रं ततः शिवे ॥ १३७
योगिनी-वीर-पात्रे तु बलि-पात्रं ततः शिवे !
आचमनीयं महेशानि ! प्रोक्तमन्यद् विशेषतः ॥ १३८
अर्घ्य-त्रयं गुरोः पात्रं भैरवी-पात्रकं ततः ।
शक्ति-पात्रं योगिनी च बलि-पात्रं ततः शिवे ॥ १३९
अर्घ्यस्य त्रीणि पात्राणि पाद्यस्यापि त्रयं भवेत् ।
आचमने त्रयं देवि ! मधुपर्कस्ततः शिवे ॥ १४०
स्नानीयं कर-शुद्धिश्च यजुर्गौडे विधिः स्मृतः ।
स्व-दक्षे प्रोक्षणी-पात्रं आदयाद्भूः प्रपूरयेत् ॥ १४१

किञ्चिदर्घ्याम्बु संगृह्य प्रोक्षण्यम्भसि योजयेत् ।
ततः साधारकं पात्रं पुरतः स्थापयेद् बुधः ॥ १४२
तत्-पार्श्वे पाद्य-दानं च तत्-पार्श्वे चार्घ्य-दानकं ।
आचमनीयं च तत्-पार्श्वे वामे तु मधुपर्ककम् ॥ १४३
पुनराचमनीयं च स्नानीयं तत् क्रमान्न्यसेत् ।
गन्ध-पुष्पं तथा दक्षे पृष्ठे तु कर-क्षालनम् ॥ १४४
स्व-वामे स्थापयेत् कुम्भं वाम-हस्तेन धारयेत् ।
'ॐ ह्रां' इति च मन्त्रेण पार्श्वे धृत्वा च तज्जलं ॥ १४५
'नु क्षौर' इति मन्त्रेण देव-तीर्थेन संस्पृशेत् ।
आत्मानं याग-वस्तूनि गन्ध-पुष्पादिकानि च ॥ १४६
प्रोक्षयेत् प्रोक्षणी-तोयैर्गायत्र्या मूल-मन्त्रतः ।
साध्य-साधकयोर्मध्ये च षट्-त्रिंशदंगुलं भवेत् ॥ १४७
द्वादशांगुलमूर्ध्वं च अधोभागे तथांगुलम् ।
द्वादशांगुल-मध्यस्थ तत्र संस्थापयेद् बुधः ॥ १४८
आत्मनः पुरतो वामे त्रिकोणं विलिखेद् भुवि ।
सार्ध-द्वादश वै देवि ! चार्घ्यार्थं द्वादश प्रिये ॥ १४९
आराधनं स्थापनं च पूजनं पूरणं तथा ।
गन्ध-पुष्पे मण्डलस्य विन्यासः पुष्प-संश्रयः ॥ १५०
अमृतीकरणं पात्रं प्रतिपत्तिरियं नव ।
साम-गौडे विधिरयं संक्षेपेण प्रकाशितः ॥ १५१
पात्राणां विंशतिः शिवे! साम-गौडे विधिः शिवे !
आद्य-त्रयं गुरुर्भोगः शक्तिश्च योगिनी शिवे ॥ १५२
वीर-पात्रं बलि-पात्रं पाद्यार्घ्याचमनीयकम् ।
कर-क्षालन-पात्रं च मूलानां च प्रवर्तकम् ॥ १५३
सामान्यार्घ्यादाचमान्तमर्घ्यं च कर-शुद्धिजम् ।
उच्छिष्ट-बलि-पात्रं च बलि-पात्राणि सप्त च ॥ १५४

अथ पाचक-पात्रं च क्रूर-गौडे विधिः शिवे !
एक-विंशति-पात्राणि गौडे चैवात्र सन्ति च ॥ १५५
शाक्ते प्रोक्तमिदं देवि ! वीर-शाक्ते तु शङ्करि !
शङ्खं न मुख्यं देवेशि ! शैवे शाक्ते कारयेत् ॥ १५६
लोक-सन्दर्शनार्थं तु शङ्खस्य स्थापनं चरेत् ।
शैवे पंक्ति-क्रमेणैव पात्राणां स्थापनं चरेत् ॥ १५७
सामान्यार्घ्यो विशेषश्च घटश्च पाद्य-पात्रकः ।
आचमनीयं तथार्घ्यं च पुनराचमनीयकम् ॥ १५८
मधुपर्कामृते देवि ! स्नानीयं प्रोक्षणी तथा ।
शक्ति-युक्तो यदा शम्भुस्तदा कलश-पूजनम् ॥ १५९
नोचेत् तु जल-वत् स्थाप्य पूज्यो वैदिक-कर्मणा ।
पूर्ण-दीक्षा-प्रयुक्तश्चेच्छक्ति-पात्रादिकं चरेत् ॥ १६०
बिल्व-पात्रेण देवेशि ! विश्वामित्रेण वाचरेत् ।
वैष्णवे तु महेशानि ! पुरः सामान्य-पात्रकम् ॥ १६१
शङ्ख-पात्रं वाम-भागे स्वस्य देवस्य पार्वति !
पूजा-द्रव्यं दक्ष-भागे तन्मध्ये परमेश्वरम् ॥ १६२
वैष्णवे देव-दक्षे तु शङ्खं तद्-दिक्षु पार्वति !
पाद्यार्घ्याचमनीयं च मधुपर्कं क्रमाद् भवेत् ॥ १६३
तदुदक-षट्-पात्रं च जल-संस्थापनाय च ।
सिद्ध-कल्पित-दिङ्-मार्गाद् वाम-दक्षे घटो भवेत् ॥ १६४
शक्ति-युक्त-वैष्णवस्य प्रोक्तमेतन्मया तव ।
अयुक्तस्य महेशानि ! न सामान्य-घटो भवेत् ॥ १६५
विशेष-दीक्षितश्चेत् स्याच्छक्ति-वीरादि कारयेत् ।
शैवेऽपि स्वस्य दक्षात् तु सामान्यात् प्रोक्षणीति च ॥१६६
तदन्ते स्थापयेद् देवि ! सौरे शृणु महेश्वरि !
सौरे गौडे च सामान्याद् द्वावर्घ्यौ सूर्य्य-गोचरौ ॥ १६७

विशेषात् प्रोक्षण्यन्तं च स्थापयेत् परमेश्वरि !
जैने बौद्धे तु तारा-वद् भैरवे कालिका-विधिः ॥ १६८
दर्शनायतने देवि ! विशेषार्घ्य-घटादिकम् ।
प्रोक्षण्यन्तं समासाद्य केरलादि-क्रमेण च ॥ १६९
गणेशे चोभयं देवि ! शङ्खस्त्वाचमने भवेत् ।
सामान्यार्घ्ये भवेद् वारि सामान्यं च विशेषकम् ॥ १७०
श्री-पात्रमिति देवेशि ! चार्घ्यं स्वायम्भुवेऽपि च ।
गणेश-वत् प्रकर्त्तव्यं नान्यथा शाङ्करं वचः ॥ १७१
सर्वत्र शक्ति-योगैश्च शाक्त-वत् परमेश्वरि !
वामावर्त्त-क्रमेणैव गौडे कौले तु पात्रकम् ॥ १७२
काश्मीरे दक्ष-वदने केरले मण्डल-क्रमात् ।
केवलं शङ्ख-मात्रेण केरले चरितार्थता ॥ १७३
पूजोपकरणं दक्षे पृष्ठे नैवेद्यमेव च ।
कर-क्षालन-पात्रं तु स्व-पृष्ठे परिकीर्तितम् ॥ १७४
घृत-दीपो भवेद् दक्षे तैल-दीपो हि वामतः ।
त्रिकोणाकारतो वापि वह्नि-चक्र-क्रमेण च ॥ १७५
मेधा-दीक्षा-विधौ देवि ! स्थापनं परिकीर्त्तितम् ।
सर्व-पात्राणि संस्थाप्य स्व-वामे तु घटोत्तरे ॥ १७६
घटस्य तु मुखं देवि ! परितः परि-कीर्त्तितम् ।
शङ्खस्य देवी शङ्खस्य मुखे तु देवताग्रतः ॥ १७७
'पूजयामि तर्पयामि नमो'ऽन्तं केरले मतम् ।
'तर्पयामि पूजयामि नमः' काश्मीर-गोचरः ॥ १७८
हृदयस्यास्य योगे तु साम्राट्-केरल ईरितः ।
'पूजयामि नमो देवि ! तर्पयामि नमः' तथा ॥ १७९
आदि-केरल-साम्राज्ये महत्-पूर्वादि कीर्त्तितम् ।
नमः पूजा तर्पणे तु केरले परमेश्वरि ॥ १८०

पूर्णानन्दश्चिदानन्दो बोधानन्दः प्रकीर्त्तितः ।
अष्टौ भेदा महेशानि ! हृदाद्यन्त-प्रयोगतः ॥ १८१
मध्य-योगादपि शिवे ! स-भेदाः परि-कीर्त्तिताः ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते बलिदानं तु गौडके ॥ १८२
आदौ च बलि-दानं च काश्मीरे परि-कीर्त्तितम् ।
अन्ते बलिः केरले तु केवलं तर्पणं यदि ॥ १८३
विलासाख्यस्तदा देवि ! पूजनं तर्पणं च वा ।
विश्व-रूप-विधौ देवि ! केरले पूजने सति ॥ १८४
श्री-पूर्वा पादुका वापि केवला पादुकाऽपि वा ।
तद्-देवता-तर्पणं वा ह्रस्वं दीर्घं च वा प्रिये ॥ १८५
स-विन्दुं वा महेशानि ! सम्पूर्णं वा समाचरेत् ।
चीन-मार्गेऽपि तारिण्यां मञ्जु-घोषेऽपि पार्वति ॥ १८६
'वज्र-पुष्पं प्रतोच्छे'ति स्वाहान्तेन प्रपूजनम् ।
वामावर्त्त - क्रमेणैव दक्ष - वाम - क्रमेण च ॥ १८७
केवलं दक्षावर्त्तेन केवलं वाम-हस्ततः ।
भेदाष्ट-त्रिंशतिः शिवे ! कीर्त्तितः परमेश्वरि ॥ १८८
केवलानन्द-योगेन केवलानन्द-योगतः ।
आनन्दनाथ-योगेन नाथानन्द-क्रमेण च ॥ १८९
सिद्ध-मानव-दिव्यादि-प्रज्ञा-चैतन्य-बोधतः ।
विलास-क्रम-योगेन तथा सरस्वती-क्रमात् ॥ १९०
वक्ष्यमाण-क्रमेणैव भेद-बाहुल्यमीरितम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं विशेषः कथ्यते प्रिये ॥ १९१

पञ्चमः पटलः

ऋणि-धनि-चक्र-विनिर्णयम्

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यातिरहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यातिरहस्यं च कथ्यते शृणु पार्वति ॥ १
सद्-ब्रह्म-वासनां कृत्वा पूर्वं पर-शिव-स्थिता ।
ध्यानस्य संश्रुतिर्जाता सा ब्रह्म-वासनागता ॥ २
यदारभ्य परं रूपं विज्ञानं सुमनोहरम् ।
रूपं धृतं महेशानि ! तदारभ्य प्रपञ्चता ॥ ३
यदि कादि-मतं चैकं वर्त्तते पर-सुन्दरि !
तदा पुमांसः सर्वेऽपि महा-काल-स्वरूपिणः ॥ ४
सर्वाः स्त्रियो महेशानि काली-तारा-मयाः स्मृताः ।
एवं बुद्धिर्यदा चेत् स्यान्नहि संसार-कल्पना ॥ ५
संसारोत्पत्ति-कार्यार्थं प्रपञ्चोऽयं विनिर्मितः ।
शाक्तं शैवं गाणपत्यं वैष्णवं सौर-बौद्धकम् ॥ ६
एवं क्रमेण देवेशि ! मतमेतद् विनिर्मितम् ।
मतानि बहु-संख्यानि तदारभ्य महेश्वरि ॥ ७
सञ्जातानि महेशानि! प्रपञ्चार्थं हि निश्चितम् ।
अम्भोधिर्जलधिश्चैव समुद्रः सागरो यथा ॥ ८
यथा एते तु पर्यायास्तथैतानि मतानि च ।
वैदिके शक्ति-निन्दा च शैवे वैष्णव-निन्दनम् ॥ ९
वैष्णवे गण-निन्दा च गाणपे सौर-निन्दनम् ।
सौरे चान्द्रस्य निन्दा च चान्द्रे बौद्धस्य निन्दनम् ॥ १०
स्वायम्भुवस्य निन्दा च बौद्ध-मार्गे महेश्वरि !
सौभर्यां चीन-निन्दा च चीने जैनस्य निन्दनम् ॥ ११

पौराणे जैन-निन्दा च जैने पौराण-निन्दनम् ।
पौराणे मन्त्र-शास्त्रस्य निन्दनं परमेश्वरि ॥ १२
धर्म-शास्त्रे महेशानि ! तथा कौलिक-निन्दनम् ।
एवं भिन्न-मतान्येवं सञ्जातानि महेश्वरि ॥ १३
वेदानां शास्त्र-बाहुल्यं प्रपञ्चार्थं महेश्वरि !
एवं निन्दा-सम्पन्ने भेदे जाते महेश्वरि ॥ १४
नैकत्र तु मनो लग्नं कस्यचित् परमेश्वरि !
सर्वत्रान्योन्य-निन्दा च तदैक्यं न प्रजायते ॥ १५
तदैक्यस्य सु-सिद्धचर्थं प्रपञ्चार्थं प्रकीर्त्तितम् ।
भिन्नं भिन्नं प्रशंसन्ति निन्दन्ति च परस्परम् ॥ १६
न विद्या-सिद्धिमाप्नोति सम्भ्रमन्ति पिशाच-वत् ।
अन्योन्यैर्यदि निन्दा न तदैक्यं च प्रजायते ॥ १७
तदैक्यस्य सु-सिद्धचर्थं कालिकां तारिणीं यजेत् ।
पुनर्वै दैत्य-नाशाय भक्तानुग्रहणाय च ॥ १८
सुन्दरं क्रूरमत्युग्रं रूपं सम्बिभ्रती शिवा ।
रूपमेतत् प्रपञ्चार्थं कीर्त्तितं तु मया तव ॥ १९
पुराण-न्याय-मीमांसा-सांख्य-पातञ्जलस्तथा ।
वेदान्तो व्याकृतिर्देवि! धर्म-शास्त्राङ्ग-मिश्रिताः ॥ २०
छन्दो ज्योतिर्वैद्यकादि विद्या एताश्चतुर्दश ।
प्रपञ्चार्थं मया प्रोक्तमेकत्वं परिणामजे ॥ २१
प्रकृतं कथ्यते देवि ! शृणु सावहिता भव ।
चतुर्वेदेश्वरी प्रोक्ता श्रीमहा-भव-तारिणी ॥ २२
अथर्व-वेदाधिष्ठात्री श्रीमहा-कालिका परा ।
विना कालीं विना तारां नाथर्वण-विधिः क्वचित् ॥ २३
केरले कालिका प्रोक्ता काश्मीरे त्रिपुरा मता ।
गौडे तारेति सम्प्रोक्ता सैव लोकोत्तरा भवेत् ॥ २४

हादौ त्रितयमेतद्धि संक्षेपेण प्रकीर्त्तितम् ।
अथ कादौ केरले तु त्रिपुरा सा प्रकीर्त्तिता ॥ २५
काश्मीरे तारिणी बाला गौडे काली प्रकीर्त्तिता ।
शिव-देवी परा जाता दक्षिणा-मूर्ति-भेदतः ॥ २६
अथानन्द-भैरवाख्य-मत-भेदेन पार्वति !
देवी-सकाशाद्या प्राप्ता स्व-गुर्वन्तं तु शक्तितः ॥ २७
शक्तेः परम्परा या तु न विच्छिन्ना महेश्वरि !
तन्नामाज्ञा-क्रमेणैव ज्ञेया देवी-परम्परा ॥ २८
शम्भोः सकाशाद्या प्राप्ता स्व-गुर्वन्तं महेश्वरि !
तन्नामाज्ञा-क्रमेणैव सा शिवस्य परम्परा ॥ २९
दक्षिणा-मूर्त्तितो देवि ! स्व-गुर्वन्त-क्रमेण च ।
तन्नामाज्ञा-क्रमेणैव सा वै तस्य परम्परा ॥ ३०
अविच्छिन्ना यदा सा वै चतुः-शङ्कर-योगतः ।
तदान्यः सम्प्रदायो हि भविष्यति महेश्वरि ॥ ३१
केरलश्चैव काश्मीरो गौडश्चैव तृतीयकः ।
चतुर्णामपि देवेशि ! त्रितयं तिष्ठति प्रिये ॥ ३२
'गृह्णामि च प्रगृह्णीयात्' विलासे पान-कर्म च ।
'जुहामि च जुषस्वे'ति केरले पान-कर्म च ॥ ३३
'होष्यामि प्रजुषस्वे'ति काश्मीरे पानमीरितम् ।
सदा मत्तो भवेन्नाथो विद्या-सिद्धादि-पानतः ॥ ३४
अनु-क्रमेण त्रितये पूजानन्दो यदा नरः ।
नन्द-नाथो च सम्प्रोक्तस्तद्-रूपो यस्तु मानवः ॥ ३५
महा-नन्दाभिधः प्रोक्तो गौडे पान-क्रमं शृणु ।
वाम-हस्तात् पान-पूजा क्रमाद् वामी प्रकीर्त्तितः ॥ ३६
दक्ष-हस्तात् पान-योगाद् वाम-हस्त-प्रतर्पणात् ।
दक्ष-हस्तात् पूजनाद्धि 'कौल' इत्यभिधीयते ॥ ३७

केवलं दक्ष-हस्तेन पूजनाद् दक्षिणाभिधः ।
स एव केरलः प्रोक्तः शुद्ध-मार्गः प्रकीर्त्तितः ॥ ३८

दक्षिणा-मूर्ति-भेदे तु दिव्यौघादि-त्रयं भवेत् ।
तद्-भेदेन त्रि-भेदत्वं प्रत्येकं नव-भेदता ॥ ३९

आनन्द-भैरव-मते पञ्चाशीति-गुरु-क्रमः ।
दिव्य-सिद्ध-मानवादि पञ्चाशीतिः प्रकीर्त्तितः ॥ ४०

प्रत्येकं त्रितयत्वेन सप्त-सप्त-क्रमेण तु ।
पञ्च-षष्ठी तु सम्प्रोक्ता नामाज्ञा तत्-क्रमेण च ॥ ४१

नव-नाथ-क्रमेण नव भेदा भवन्ति च ।
चतुरशीति-सिद्धानां क्रम-दीक्षा-प्रभेदतः ॥ ४२

चतुरशीति-भेदाश्च तन्नामाज्ञा-क्रमेण च ।
ऋणं धनं च विज्ञाय नामाज्ञां दापयेद् गुरुः ॥ ४३

ऋण-चक्रं प्रवक्ष्यामि षड्-भेदेनापि पार्वति !
साध्यार्ण-साधकार्णादि व्यञ्जन-स्वर-भेदतः ॥ ४४

तावदङ्कास्तु संग्राह्या मातृका-गणना-क्रमात् ।
साध्य-नाम-त्रि-गुणितं साधकेन समन्वितम् ॥ ४५

सप्तभिस्तु हरेद् भागं तदन्यद् विपरीतकम् ।
पूर्वाङ्क-वैपरीत्येन ऋणि-धन-विशोधनम् ॥ ४६

यस्याधिकाङ्को देवेशि ! स एव हि ऋणी मतः ।
न्यूनाङ्को यस्य देवेशि ! स धनी परिकीर्त्तितः ॥ ४७

साधकस्य धनित्वं च विद्यायास्तु ऋणित्वकम् ।
गुणनं निर्धनं वापि त्रिभिर्वा सप्तभिश्च वा ॥ ४८

त्रि-सप्त-व्यत्ययत्वेन नियमः परिकीर्त्तितः ।
यत्र द्वाभ्यां वर्धनं तु गजैस्तत्र तु भेदनम् ॥ ४९

शून्यं दृष्ट्वा न भागोऽस्ति संक्षेपादिदमीरितम् ।
वर्धनं तु त्रिभिर्यत्र सप्तभिर्भेदनं ततः ॥ ५०

यत्राष्टभिर्भेदनं तु तत्र द्वाभ्यां तु वर्धनम् ।
मन्त्र-साधकयोर्वर्णान् गणना-विधि-पूर्वकम् ॥ ५१
भिन्नान् कृत्वाऽथवा देवि! स्वर-व्यञ्जन-भेदतः ।
साध्य-नाम-द्विगुणितं साधकेन समन्वितम् ॥ ५२
अग्निभिस्तु हरेद् भागं तदन्यद् विपरीतकम् ।
मन्त्र-साधक-वर्णानां पञ्चाशन्मातृका-क्रमात् ॥ ५३
कियत्तमो भवेद् वर्णस्तावदङ्कांस्तु संहरेत् ।
स्वर-व्यञ्जन-भेदेन अथवा वर्ण-मात्रकम् ॥ ५४
तावदङ्कास्तु कर्त्तव्या वर्णानामुभयोरपि ।
मन्त्राणान् त्रिगुणीकृत्य साधकेन समन्वितम् ॥ ५५
सप्तभिस्तु हरेद् भागं तदन्यद् विपरीतकम् ।
अन्यत्र तु प्रकरणात् गुणनं भाजनं भवेत् ॥ ५६
इष्टाङ्कत्वेन गुणनं भाजनं चात्र कीर्त्तितम् ।
यथाङ्क-क्रम-योगेन कीर्त्तितं तु मया तव ॥ ५७
नामाक्षरं समारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ।
त्रिधा कृत्वा स्वरैर्भिद्यात् तदन्यद् विपरीतकम् ॥ ५८
मन्त्राद्यक्षरमारभ्य यावन्नामाक्षरं शिवे !
सप्त कृत्वा त्रिधा भिद्यात् तदन्यद् विपरीतकम् ॥ ५९
मातृका-वैपरीत्येन मन्त्रं नामाक्षरात्मकम् ।
त्रिधा कृत्वा त्रिभिर्हृत्वा मन्त्र-राशिरियं भवेत् ॥ ६०
अन्यानि ऋण-चक्राणि कीर्त्तितानि मया तव ।
भक्ति-रूपं ऋणं देवि ! यथावदवधारय ॥ ६१
कोटि-तन्त्रेषु गुप्तं च तदद्य प्रकटीकृतम् ।
पूर्व-सेवानुषङ्गेण भक्तिर्यत्र दृढा भवेत् ॥ ६२
स मन्त्रस्तु ऋणी ज्ञेयो भक्ति-रूपं ऋणं प्रिये !
नो चेद् भक्तिः कथं देवि! भक्ति-रूपं ऋणं प्रिये ॥ ६३

इति क्रमेण सम्प्रोक्तं ऋणि-धन-विशोधनम् ।
ऋणं धनं च विज्ञाय नाम दद्यान्महेश्वरि ।। ६४
अन्यथा नाम-दाने तु नामानुरूपकं फलम् ।
न भवेत् परमेशानि ! भ्रष्टो भवति साधकः ।। ६५
स मूर्खस्त्वं न जानाति देवे द्वेष-परः कलौ ।
सर्वमेवं तु विज्ञाय नामाज्ञां दापयेद् गुरुः ।। ६६
दिव्य-सिद्ध-मानवे तु फलं च उत्तरोत्तरम् ।

श्रीदेव्युवाच—

नाम-दानं कथं कार्यं दर्शनेष्वपि षट्स्वपि ।। ६७
षडाम्नायेषु देवेश ! तथा शाम्भव-युग्मके ।
पञ्चाम्नाये तथा वेदाम्नाये च परमेश्वर ।। ६८
मेधा-साम्राज्य-दिव्यान्तः-साम्राज्येन महेश्वर !
नाम-दानं कथं कार्यं तन्मे कथय शङ्कर ।। ६९

श्रीशिव उवाच—

रहस्यातिं-रहस्यं तु त्वया सम्पृच्छ्यते शिवे !
अहं जानामि सा काली तारा जानाति नेतराः ।। ७०
ओघाः किञ्चिच्च जानन्ति तत्रापि दिव्य-रूपिणः ।
सर्वथा गोप्यतां देवि ! न वाच्यं यस्य कस्यचित् ।। ७१
षट्-चक्रं तत्र सम्प्रोक्तं चतुः-संज्ञा-विधायकम् ।
प्रथमे वर्ण-वेधोऽस्ति स्वर-वेधो द्वितीयके ।। ७२
तृतीये शून्य-वेधोऽस्ति चतुर्थे कूट-वेधता ।
पञ्चमे गण-वेधोऽति षष्ठे चक्रेण किञ्चन ।। ७३
षट्-चक्राणि महेशानि ! चक्राण्यन्यान्यपि प्रिये !
अन्यानि पञ्च-चक्राणि एवं रुद्र-विधानि च ।। ७४
तत्र षट्-चक्र-मध्ये तु साध्य-सिद्धं सुसिद्धकम् ।
दैवतं च पराख्यं च देवता-दर्शनाभिधम् ।। ७५

देवता-दर्शनाख्येन नाम दद्यान्महेश्वरि !
ओघ-त्रयस्थं यन्नाम साधकस्य तथैव च ॥ ७६

प्रसिद्धं नाम गृह्णीयात् प्रसुप्तो येन जागृयात् ।
नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ॥ ७७
त्रिगुणीकृत्य देवेशि ! स्वर-व्यञ्जन-भेदतः ।
मातृका-गणनात्वेन यावदङ्को भवेच्छिवे ॥ ७८
एकीकृत्य साधकार्णे मिश्रितं सप्तधा हरेत् ।
नाम-राशिरियं प्रोक्ता मन्त्र-राशिरितोऽन्यथा ॥ ७९

ऋणि-नाम-प्रदेयं च सुन्दरं सुमनोहरम् ।
दिव्यौघ-नाम भाग्येन गुरुणा दीयते यदि ॥ ८०
सिद्धौघ-नाम देवेशि ! भाग्येन सिद्धि-कारकम् ।
मानवौघ-भिधं नाम ऋणी भाग्येन लभ्यते ॥ ८१

गुरुणालोकितः शिष्यः शिष्येणालोकितो गुरुः ।
ऋणि-नाम-प्रदानेन मन्त्र-दोष-निवृत्तता ॥ ८२
पूर्णाभिषेक-दीक्षायां नाम चैव प्रदापयेत् ।
मेधा-दीक्षादि-साम्राज्य-दिव्य-साम्राज्य-गोचरं ॥ ८३

नाम देयं महेशानि ! सुन्दरं कल्पितं च वा ।
आदौ प्रसिद्ध-नाम स्यादलाभे कल्पितं च वा ॥ ८४
मन्त्रारूढं च वा नाम विद्याढ्यं वा महेश्वरि !
अन्यत् तद्-दिन-ऋक्षाक्तमुदयार्ण-क्रमेण च ॥ ८५
अथोदयार्ण-नित्याक्तं काल-नित्या-क्रमेण च ।
प्रोक्तं तद्-युग-नित्याक्तं वर्ष-नित्या-क्रमेण च ॥ ८६
तदावरण-नित्याक्तं सम्प्रदाय-क्रमेण च ।
काश्मीराख्ये सम्प्रदाये तद्-विद्या-मन्त्र-कल्पितम् ॥ ८७
गौडे कालान्तकं नाम केरले सर्व-गोचरम् ।
परस्परं विशोध्याथ नाम दद्यान्महेश्वरि ॥ ८८

नाथाक्तं चाथ सिद्धाक्तं पूर्व-पञ्चक-योगतः ।
यदेव तु ऋणी भूयात् तदेव वर-नामकम् ॥ ८९
ओघ-त्रयं महेशानि ! चोत्तरोत्तर-सिद्धिदम् ।
दिव्यौघे चेत् समायाति दिव्य-रूपः स जायते ॥ ९०
सिद्धौघे चेत् समायाति सिद्ध-रूप-सुसिद्धिदः ।
मानवौघे किन्नरेशः शाक्त-शास्त्रे त्विदं भवेत् ॥ ९१

श्रीदेव्युवाच—

शाक्ताख्ये तु महा-देव ! कथं नाम प्रदीयते ?

श्रीशिव उवाच—

वैष्णवे गाणपत्ये च शैवे स्वायम्भुवे तथा ॥ ९२
चान्द्रे पाशुपते चीने जैने काल-मुखेऽपि च ।
वैदिकेऽपि महेशानि ! तदावरणगं च वा ॥ ९३
तत्-पर्याय-नाम देयं द्वारादुत्तरतस्तथा ।
मूलान्तं च तदन्तं च दद्यान्नाम महेश्वरि ॥ ९४
बालायां स्पर्श-काल्यां च स्पर्श-तारा-विधौ शिवे !
स्पर्श-च्छिन्ना-विधौ देवि! चन्द्र-षट्-षोडश-क्रमात् ॥ ९५
कला-क्रमान्महेशानि ! रक्त-चण्डयां तु तत्-क्रमात् ।
दुर्वासा मन्वगस्त्यादि तथा स्वप्नावती-विधौ ॥ ९६
मधुमत्यां च दिव्यौघा भिन्न-रूपाः प्रकीर्त्तिताः ।
षोडश्यां च परायां च परा-प्रासादकेऽपि च ॥ ९७
षड्-विद्यायां शाम्भवे च गुरवो भिन्न-रूपिणः ।
मालास्थं चाथ न्यासस्थं मूल-रश्मिस्थमेव च ॥ ९८
नाम-दाने विधिरयं मया प्रोक्तो महेश्वरि !
सम्प्रदाय-क्रमेणैव शाम्भवे पूर्वमीरितम् ॥ ९९
यत् तत्र नोक्तं देवेशि ! यत् सिद्ध-मतकेऽपि च ।
यज्ज्ञेयमत्र देवेशि ! चतुः-खण्ड-क्रमेण च ॥ १००

पुनरुक्तिर्न मन्तव्या विद्या-भेदाद् विशेषता ।
श्रीचूलिकोर्मिला-चक्रं राजादि-पशु-गोचरम् ॥ १०१
नव-चक्राणि देवेशि ! कथ्यन्ते शृणु यत्नतः ।
केरलाख्यं च दशमं प्रत्येकं त्रि-विधं भवेत् ॥ १०२
एतद् विवेचनं देवि ! संक्षेपात् कथ्यते शृणु ।
त्रैविध्यं चैव श्री-चक्रे क्रमं शृणु महेश्वरि ॥ १०३
अष्टोत्तर-शतं संख्या श्री-चक्रे शक्तयः स्मृताः ।
चतुः-पञ्चाशदेवात्र मध्य-चक्रे क्रमो भवेत् ॥ १०४
शक्तिभिर्नन्द-संख्याभिः कनिष्ठं परिकीर्त्तितम् ।
चूलिकाख्यं महेशानि ! त्रि-विधं परिकीर्त्तितम् ॥ १०५
पञ्चाशत्-पीठ-नाम्ना वा षड्-त्रिंशज्जाति-मध्यतः ।
दश-विद्या-रूप-जाति-गन्ध-भेद-क्रमेण च ॥ १०६
कुलाकुल-क्रमेणैव काश्मीर-गौड-भेदतः ।
अष्ट-कन्या-समायोगात् कनिष्ठं परिकीर्तितम् ॥ १०७
एतत् क्रमं महेशानि ! यथा-वदवधारय ।
शक्तिमाहूय देवेशि ! कञ्चुकीं गृह्य पार्वति ॥ १०८
एकैकां कञ्चुकीं देवि ! शिव-हस्ते प्रदापयेत् ।
वस्त्र-ग्रन्थि तु निर्बध्य सामरस्ये नियोजयेत् ॥ १०९
ऊर्मिलाख्यमिदं देवि ! चूला-चक्रं शृणु प्रिये !
शक्तिमाहूय यत्नेन चूलिकां गृह्य यत्नतः ॥ ११०
कुम्भे संस्थाप्य सम्पूज्य शिवमाहूय सादरम् ।
यस्य यथा च सम्प्राप्ता सा तस्य चक्र-मध्यगा ॥ १११
चूलिकाख्य-क्रमो देवि ! कथितः श्री-क्रमं शृणु
परस्पर-स्नेह-योगात् श्री-चक्रे विनिवेशनम् ॥ ११२
केरलाख्य-कमे देवि ! भिन्नं भिन्नं निवेशनम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ११३

षष्ठः पटलः

नाम-विवरणम्

श्रीदेव्युवाच—

एतेषां च फलं देव ! कथयस्व ममाधुना ।

श्रीशिव उवाच—

एतज्ज्ञानी महेशानि ! शिव एव न संशयः ॥ १
वय-स्तम्भाकर्षणं च त्रैलोक्य-वश्यता तथा ।
अञ्जनं तिलकं गुप्तिः पादुका गुटिका तथा ॥ २
वेताल-यक्षिणी-सिद्धिस्त्रिधा-वादस्तदुत्तरम् ।
खेचर्यादि-महा-सिद्धिः पर-काय-प्रवेशनम् ॥ ३
शापानुग्रहणं वाक् च काम-रूपत्वमेव च ।
रसायनं च त्रैलोक्यं महेन्द्रादीन्द्र-जालिकम् ॥ ४
अणिमाद्यष्टकं देवि ! खड्गादृश्ये तथैव च ।
मूकान्ध-स्तब्धी-करणं संहार-खड्गके तथा ॥ ५
पताका-द्वन्द्व-युद्धस्य जयो वन्ध्यात्व-नाशनम् ।
पौरुषं च मनः-स्थैर्यं रञ्जकः स्वर्ण-भैरवः ॥ ६
धनदा च तथा शास्ता पद्मा मधुमती तथा ।
रहस्याति-रहस्यं च रहस्याति-रहस्यकम् ॥ ७
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं पुनः पुनः ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ८

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यं परमं वरम् ।

श्रीशिव उवाच—

सर्वं विशेषतः प्रोक्तमथ कादि-क्रमं शृणु ॥ ९
दिव्य-सिद्ध-मानवेश-महा-काल-क्रमेण च ।
अति-काल-करालास्य-वीर-नाथ-क्रमेण च ॥ १०

पञ्चाति-काले नव च कराले दश पार्वति !
काल-त्रयं महा-काले नव-भेदा गुरु-क्रमात् ॥ ११
वीर-नाथे शतं देवि ! गुरु-भेदः प्रकीर्त्तितः ।
नव-नाथ-युग्म-भेदात् सिद्धेः साम्यं कहे भवेत् ॥ १२
एतत्-क्रमेण देवेशि ! दीक्षणं कादि-सम्मते ।
अस्यामेव महेशानि ! शम्भोः प्राधान्य-योगतः ॥ १३
शाम्भवत्वं भवेद् देवि ! शिवोऽहं निर्गुणेति च ।
शक्तेः प्राधान्याच्छाक्तत्वं देवी-रूपाहमेव सा ॥ १४
कालिकाहं महा-तारा-रूपाहं सर्वदैव च ।
तद्-द्वयाच्छैव-शक्तिः स्यादिति संक्षेपतो मतम् ॥ १५
स्थित्वा दिव्यौघ-पानं च कीर्त्तितं परमेश्वरि !
सिद्धौघे स्थापयित्वा तु पानं कुर्यान्महेश्वरि ॥ १६
मानवौघे समुत्थाय क्रमात् त्रितयमीरितम् ।
सङ्गीभूत्वा तु चैतन्यं सह-योनिः कुलेश्वरि ॥ १७
विसर्जनोत्तरं देवि ! भद्र-नाथस्य कीर्त्तितम् ।
वीर-तृप्त्युत्तरं देवि ! चाति-काल-मत-क्रमः ॥ १८
शक्ति-पात्रं स्थाप्य भिन्नं दक्षिणा-मूर्ति-सम्मते ।
शक्ति-पात्रं च गृह्णीयात् वीर-नाथ-मतं शिवे ॥ १९
कुल-चक्रं भवेत् काल्यामकुलं कालिका-मनौ ।
कुलाकुलं च तारायां सम्प्रदाय-त्रयान्तरे । २०
दिव्य-मार्ग-वीर-मार्ग-पशु-मार्ग-क्रमेण च ।
पूर्णाभिषेक-योगेन चाज्ञा-नाम प्रदापयेत् ॥ २१
पूर्णाभिषेको देवेशि ! हादि-कादि-क्रमेण च ।
कथ्यते देव-देवेशि ! शृणु सावहिता भव ॥ २२
शुभ-मासे शुभर्क्षे च शुभ-लग्ने शुभोदये ।
काल-रात्रि-दिने प्राप्ते वीर-रात्रि-दिने तथा ॥ २३

मोह-रात्रि-दिने चैव महा-रात्रि-दिने तथा ।
क्रोध-रात्रि-दिने देवि ! घोर-रात्रि-दिने तथा ॥ २४
तारा-रात्रि-दिने चापि अबला-रात्रि-योगजे ।
दारुणा-सङ्गमे वापि मकरे कुम्भ-सङ्गमे ॥ २५
विविक्त-स्थानमासाद्य स्थान-शुद्ध्यादि-पूर्वकम् ।
पर्वते विपिने घोरे शून्य-गेहे श्मशानके ॥ २६
एक-लिङ्गे शिवावासे श्मशानाष्टकेऽपि च ।
चक्र-पाणि-गृहे नद्यां पुर्यां पीठाष्टके शिवे ॥ २७
पञ्चाशत्-पीठ-मध्ये वा पुष्पिण्युत्सवकेऽपि च ।
गङ्गा-गर्भे तडागे च वेश्यावासे च सङ्गमे ॥ २८
कुल-वृक्ष-वने वापि कदली-वन-मध्यतः ।
अथ पूग-वने देवि ! नारिकेल-वने तथा ॥ २९
कदली-मण्डपे दिव्ये वाटिकायां विचित्रिते ।
पालाश-वन-मध्ये च पुण्य-क्षेत्रे विशेषतः ॥ ३०
स्वैरिणी-गृह-मध्ये च कुट्टनी-नर्त्त-मण्डले ।
विशिष्ट-स्थानमासाद्य मण्डपं तत्र कारयेत् ॥ ३१
कला-हस्तं सूर्य-हस्तं नव-हस्तं महेश्वरि !
पञ्च-हस्तं महेशानि ! नव-कुण्डी-क्रमेण च ॥ ३२
अथवा एक-कुण्डाख्य-क्रमेण परमेश्वरि !
मण्डपं कारयेद् देवि ! मेरु-साधन-मार्गतः ॥ ३३
श्रीमेरु-मण्डपं देवि ! यथा-दीक्षानुसारतः ।
वितान-ध्वज-भूषाढ्यं प्राकार-परिखैर्युतम् ॥ ३४
गोपुरैः संयुतं देवि ! नाना-तोरण-मण्डितम् ।
तदग्रे परमेशानि ! पूजा-मण्डपमाचरेत् ॥ ३५
अष्टाष्टक-त्रि-क्रमेण पञ्च-पञ्चक-मार्गतः ।
एतासां सन्निवेशो हि यथा भवति पार्वति ॥ ३६

तथा मण्डपमासाद्य अब्जानि रचयेत् ततः ।
सहस्र-कोष्ठजं देवि ! सर्वतोभद्रमाचरेत् ॥ ३७
तत्र चक्रं ताम्र-पात्रे स्वर्णे रौप्ये च भूमिजे ।
वस्त्रे वा रचयेद् देवि ! तथा चक्रस्य तच्छृणु ॥ ३८
सर्वतोभद्र-पीठं च देव-पीठे प्रकीर्त्तितम् ।
एकाब्जं योगिनी-पात्रे पञ्चाब्जं क्षेत्रपालके ॥ ३९
नवाब्जं गणपे प्रोक्तं बटुके लिङ्ग-भद्रकम् ।
विरच्य परमेशानि ! मेरु-मण्डपमाचरेत् ॥ ४०
मेरु-संसाधनं कर्म श्रीविद्योपासकस्य च ।
सकलं निष्कलं देवि ! द्वि-विधं मेरु-साधनम् ॥ ४१
दीक्षाङ्गत्वेन सकलं निष्कलं कामनाङ्गतः ।
श्रीविद्या कालिका तारा त्रि-विद्योपासके शिवे ॥ ४२
मेरु-संसाधनं देवि ! दीक्षायां परिकीर्त्तितम् ।
एतद्-भिन्ना महेशानि ! नहि दीक्षा भवेत् क्वचित् ॥ ४३
श्रीविद्योपासकानां च पारम्पर्य्य-क्रमं शृणु ।
आदौ बाला विनिर्दिष्टा ततः पञ्चदशी मता ॥ ४४
तथा श्रीषोडशी-विद्या परा-विद्या तदुत्तरम् ।
ततश्चरण-दीक्षा स्यान्निर्वाण-दीक्षणं ततः ॥ ४५
ततः षट्-शाम्भवाख्या च मेधा-दीक्षा तदुन्तरम् ।
अनुक्रमेण संयुक्ता मेधा-दीक्षा-भिधा भवेत् ॥ ४६
अथ चैक-तमा याति ततः साम्राज्य-दीक्षणम् ।
दिव्य-साम्राज्य-मेधा च तदनन्तरगा भवेत् ॥ ४७
विद्या-राज्याभिधा देवि! छिन्ना-विद्या-विधौ भवेत् ।
साम्राज्यं पारमेष्ठ्यं च बगलामनु-गोचरम् ॥ ४८
श्रीविद्याङ्गा तु बगला ताराङ्ग छिन्नमस्तका ।
एतद्-दीक्षोत्तरं देवि ! नान्या दीक्षास्ति कुत्रचित् ॥ ४९

बालया देह-शुद्धिश्च ततो विद्याधिकारता ।
विद्याधिकारतां याते श्रीषोढोपासनं चरेत् ॥ ५०
षोढाधिकारी देवेशि ! पञ्च-षोढां न्यसेत् तनौ ।
विन्यासी पञ्च-षोढायाः परा-विद्यां जपेत् सदा ॥ ५१
परा-षट्कं ततो न्यस्य ततश्चरण-चिन्तनम् ।
ततो निर्वाणं विन्यस्य ततः शाम्भवमाचरेत् ॥ ५२
तत् षोढा-त्रितयं न्यस्य रश्मि-चिन्तनमाचरेत् ।
श्री-रश्मिं च परा-रश्मिं द्वितयं विन्यसेत् ततः ॥ ५३
मेधा-दीक्षा समग्रा तु ततो भवति पार्वति !
मेधोत्तरं महेशानि ! साम्राज्य-मेधिकां न्यसेत् ॥ ५४
ततो दिव्याभिधां न्यस्य सदाशिव-समो नरः ।
मेरु-भेदादि-विज्ञानं श्रीमहा-सिद्ध-शैवके ॥ ५५
कालिकाम्नाय-तन्त्रे तु ऊर्ध्वाम्नाये प्रकीर्त्तितम् ।
अत्रापि देव-देवेशि ! कथ्यते चान्तिमे विधौ ॥ ५६
कुण्डादि-रचना देवि ! तत्रत्यैवं महेश्वरि !
क्रमागतात् सूचितं च प्रकृतं शृणु पार्वति ॥ ५७
पूर्वोक्तं मण्डपं कृत्वा नाना-चित्र-विचित्रितम् ।
घण्टा-नाद-विभूषाढ्यं दर्पणोदर-सन्निभम् ॥ ५८
भूमिं कृत्वा महेशानि ! वक्ष्यमाणं समाचरेत् ।
विधाय चक्रं तन्मध्ये चक्रे कुम्भं निधाय तम् ॥ ५९
क्वाथोदकैः समापूर्याभिषिञ्चामि वदेन्मनुम् ।
क्रमागत-समाचार-निरते भक्ति-शालिनि ॥ ६०
विरच्य विपुलं चक्रं प्रति-योनिं तु षोडश ।
त्रिकोणानि विधायाथ मध्ये कुम्भं तु विन्यसेत् ॥ ६१
सौवर्णं राजतं ताम्रं काचं मार्त्तिकमेव वा ।
पूरितं क्षारितं येन क्वथितेनाक्षरौषधैः ॥ ६२

निक्षिप्य नव-रत्नानि धान्यानि विविधानि च ।
हिरण्यानि स-ताम्राणि वासोभ्यामपि वेष्टयेत् ॥ ६३
रक्ताभ्यां चन्दन-युतं पनसाश्वत्थ-पल्लवैः ।
शतक्रतु-लता-बद्धैर्मातुलुङ्ग-फलान्वितैः ॥ ६४
पिधान-कलशानन्यानन्येष्वेकैकशो न्यसेत् ।
सार्धं सहस्रं त्रिंशच्च षष्टि-संख्या क्रमोदिता ॥ ६५
मध्य-चक्रेषु तोयादि कृत्वा बाह्याधि-पूज्य च ।
कालात्म-नित्या-मन्त्रांश्च जपित्वा पूर्व-वासरे ॥ ६६
कालात्म-नित्या-मन्त्रांश्च कादावपि महेश्वरि !
कादौ श्रीचक्र-स्थाने च काली-चक्रं महेश्वरि ॥ ६७
त्रिकोणाद्येषु भेदेषु समता परिकीर्त्तिता ।
तारायां कालिका-स्थाने तारा-चक्रं महेश्वरि ॥ ६८
कालात्म-नित्या-स्थाने च वाग्देव्यङ्गार्ण-देवता ।
सर्वत्र समता प्रोक्ता सर्वं तु कादि-वद् भवेत् ॥ ६९
जन्मर्क्षे प्रातरुत्थाय स्व-नित्यां तत्र पूजयेत् ।
काल्यां तारा-विधौ देवि! नित्या-स्थाने मनुं जपेत् ॥७०
सहस्रं प्रजपेत् पश्चात् होमं कृत्वा समन्ततः ।
तत्-पूर्वं षोडशाह्नानि प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ७१
षष्टि-जपः काल-नित्या-नाम-पारायणं तथा ।
मन्त्र-पारायणं देवि ! चक्र-पारायणं तथा ॥ ७२
यन्त्र-पारायणं देवि ! स्वयं वा स्व-गुरुश्च वा ।
दिनतो वारतः पक्षान्मासात् षट्-त्रिंशता दिनैः ॥ ७३
सन्ध्या-चतुष्टयं हादौ कादौ युग्मे त्रयी भवेत् ।
प्रायश्चित्तं समाचर्य सामग्रीमष्टकार्चने ॥ ७४
कृत्वा संस्थाप्य यत्नेन विद्योक्तं तिलकं चरेत् ।
शृङ्ग-काहल-शङ्खादि-वाद्य-सङ्गीत-नर्त्तनैः ॥ ७५

मुदितैर्योगिनी-वृन्दैरेकैकं देवतात्मभिः ।
वृतैः सम्पूजितैः सार्द्धमभिषिञ्चेद् गुरुः स्वयम् ॥ ७६
षोढाभिषेक-मन्त्रैश्च कह-हादि-क्रमोदितैः ।
मूल-भेदैश्च वा देवि ! सहस्रमभिषेचयेत् ॥ ७७
काल-चक्रं रौप्यजं च तत्र चक्रं सुवर्णजम् ।
महा-पात्रे तु संस्थाप्य विद्यां तत्राभिषेचयेत् ॥ ७८
विद्या-जलैर्महेशानि ! गुरोश्च कृपया युतः ।
अभिषिच्य प्रयत्नेन चक्षुष्मत्यादि सान्तकम् ॥ ७९
सम्प्रदाय-त्रयेणैव शिष्यं स्वस्तिक-मण्डले ।
संस्थाप्य सिच्य यत्नेन तदङ्के जप-पूर्वकम् ॥ ८०
देवी-रूपं शिष्य-तनुं कलशस्याक्षरैः सह ।
पर-काय-क्रमेणैव जीव-कीट-क्रमेण च ॥ ८१
भृङ्गित्वं याति देवेशि ! तज्जीवं पुत्तली-तनौ ।
स्थाप्य शिष्यं बोधयेच्च ब्रह्मानन्द-परायणः ॥ ८२
जीवः कीटः पुरा भूत्वा भृङ्गित्वमभिगच्छति ।
ततः षट्-चक्र-भेदं च कृत्वा तद् रस-भुग् भवेत् ॥ ८३
तत्-परागं महेशानि ! स्थापितं यन्त्र-पीठके ।
तेन मन्त्रान् लिखेत् तत्र तस्योच्चारणमाचरेत् ॥ ८४
भृङ्गावली तेन याति चक्र-मन्त्रार्ण-योगतः ।
मन्त्र-वर्णान् चक्र-वर्णान् कियत्-संख्यानि कानि वै ॥८५
एतद् विभाव्य गणयेत् तावदंश-प्रपूर्णता ।
जीव-कीटस्ततो भृङ्गी ततस्त्वेवं चराचरम् ॥ ८६
तेन भृङ्गावली नाम योगिनामपि दुर्लभा ।
क्रम-दीक्षा-युतानां च भृङ्गित्वं सुलभं क्रमात् ॥ ८७
मन्त्र-रूपो भवेत् तेन सम्राण्मेधा प्रकीर्तिता ।
स्वयं शक्तिस्तद्-द्वयं च शक्ति-स्व-क्रम-योगतः ॥ ८८

शैव-शाक्ते शाक्त-शैवे तद्-द्वय-क्रम-योगतः ।
चक्राणि चैवं विज्ञाय उक्त-मार्गेण पार्वति ॥ ८९
चक्राणि चैव निर्भिद्य स्वरूपं तत्-स्वरूपकम् ।
न कीटत्वं न भृङ्गित्वं स्वरूपेणैव देवता ॥ ९०
देवता-रूप-भावेन क्षणात् तद्-रूपता भवेत् ।
आदौ तु पुत्तलीं कृत्वा तत्र जीवं प्रविन्यसेत् ॥ ९१
ज्ञात्वा तु प्रत्ययं देवि ! ततश्च संयतेत् शिवे !
कलौ पाप-समाकीर्णे न समाधिर्न योगता ॥ ९२
यदि योगो भवेद् देवि ! नहि तत्र फलं भवेत् ।
तस्मात् कारणतो देवि ! मन्त्र-योगं समभ्यसेत् ॥ ९३
स्व-क्रमं सोऽपि कथयेत् तदा प्रभृति सोऽपि तम् ।
अनु-तिष्ठेदविच्छिन्नं पर्यायं तस्य विच्युतौ ॥ ९४
सहस्रं प्रजपेद् विद्यां अभिषेक-समन्वितः ।
दिन-षोडशकं वापि नवरात्रं च वा प्रिये ॥ ९५
पञ्च-रात्रं त्रि-रात्रं च यथा-वत् साधयेद् ध्रुवम् ।
चक्षुष्मत्यादि मेधान्तं पूर्वं संसाधयेद् ध्रुवम् ॥ ९६
सर्वे मन्त्राः प्रयोक्तव्याः षडाम्नायादि-भेदजाः ।
अष्टादशाम्नाय-मन्त्राः कादि-हादि-क्रमेण च ॥ ९७
षट्-दर्शना-भिधा मन्त्रा दश-विद्या-प्रभेदजाः ।
ते सर्वे चात्र द्रष्टव्याः श्रोतव्याः केचन प्रिये ॥ ९८
जप्तव्याः केऽपि देवेशि! दीक्षा-योगोऽत्र कारणम् ।
एवं सम्प्राप्त-योगो हि शिव-रूपो भवेन्नरः ॥ ९९
चक्षुष्मती वाङ्मती च स्पर्श-नित्या महेश्वरि !
वर्ण-दीक्षा क्रिया-दीक्षा तथैव च कलावती ॥ १००
पञ्चायतनिका चैव तथा वेध-मयी शिवे !
वेधः पञ्च-विधो देवि ! पूर्वमेव प्रकाशितः ॥ १०१

पूर्ण-दीक्षा महेशानि ! ऊर्ध्वाम्नाय-मयी तथा ।
निर्वाण-दीक्षा देवेशि ! तथा शाम्भव-भेदजा ॥ १०२
वेद-बाण-पशु-पति-क्रम-योगेन वै कहे ।
मेधा साम्राज्य-मेधा च दिव्य-साम्राज्य-रूपिणी ॥ १०३
एतद्-युक्तः केरलस्तु संक्षेपेण प्रकाशितः ।
चक्षुष्मत्यादि-ऊर्ध्वान्ता काश्मीरे परिकीर्त्तिता ॥ १०४
चक्षुष्मत्यादि-पूर्णान्ता गौडी दीक्षा प्रकीर्त्तिता ।
षष्टि-तत्त्वाष्ट-सिद्धिश्च क्रमेण परिकीर्त्तिता ॥ १०५
महा-काल-कला-रन्ध्र-बाण-तत्त्वादि-पात्र--युक् ।
दशाङ्गांश्चाष्ट-पञ्चाङ्गान् पूर्वमेव मयेरितान् ॥ १०६
तृतीय-खण्डे देवेशि ! सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
मनोरथ-मयी सिद्धिः साम्राण्मेधा-विधौ भवेत् ॥ १०७
अथवा षण्णवत्यष्ट-कलशांस्तत्र विन्यसेत् ।
तेषु शक्तीः समावाह्य सम्पूज्यैवाभिषेचयेत् ॥ १०८
एकान्त-सफलं जन्म-दिने कृत्वाभिषेचयेत् ।
नाथैस्तत्त्वैश्च नित्याभिः काल-नित्यान्त-विद्यया ॥ १०९
आधारे हृदये शीर्षे वह्नौ सूर्ये निशाकरे ।
ध्यायन् त्रि-सन्ध्यं प्रजपेत् सर्वगं व्यञ्जनं स्वरम् ॥ ११०
न्यसेच्च मातृका-स्थाने तथा तद्-देह-सिद्धये ।
ग्रहाणां वैपरीत्येषु जन्मर्क्षे ग्रहणे द्वयोः ॥ १११
कुहु-प्राप्तौ रिपु-क्लेशे कुर्यादेवाभिषेचनम् ।
तेन दोषाः स्पृशन्त्येनं न कदाचिन्न तद्-बलात् ॥ ११२
क्षुद्राणि क्रूर-कर्माणि कृत्याश्च रिपु-कल्पिताः ।

श्रीदेव्युवाच—

बलं कथं भवेदस्य सेकस्य परमेश्वर ॥ ११३
ब्रूहि मे तद्-बलं येन क्लेशा नश्यन्त्यशेषतः ।

श्रीशिव उवाच—

सोम-सूर्याग्नि-रूपेण जलेन स्पर्श-योगतः ॥ ११४

नश्यन्त्यशेष-दोषास्तु तस्मात् सेक-समो नहि ।
सोम-सूर्याग्नि-रूपत्वं जलस्य परिकीर्त्तितम् ॥ ११५
तस्मादशेष-दुःखार्ति-शान्त्यै स्यादभिषेचनम् ।
सप्त-सूक्तेषु कालेषु पुण्येष्वन्येषु चादरात् ॥ ११६
कुर्यात् स-दक्षिणां पूजां गुरोः प्रत्यक्षमेव वा ।
उक्तेषुत्थान-जातेषु पूजयेत् स्वर्ण-पुष्पकैः ॥ ११७
अभिषिक्तस्तु विधिना प्रदद्याद् दक्षिणां गुरोः ।
गुरुं तदग्रतः प्राप्त-विद्यं तदनुजं तथा ॥ ११८
गुरोर्गुरुं तद्-गुरुं च स्वग्रतो लब्ध-विद्यकान् ।
प्रणाम-पूजा-स्तवन-सेवादिभिरुपासनैः ॥ ११९
तोषयेदन्यथा शक्तिः स्वीया तद्-गामिनी भवेत् ।
बहु-चन्दन-काश्मीर-रत्न-कस्तूरिका-युतैः ॥ १२०
पंकैर्विदध्यात् सर्वत्र गुरु-पाद-द्वयं शिवे !
प्रति-वर्षं महेशानि ! कुर्यादेवाभिषेचनम् ॥ १२१
पूर्णाभिषेक-युक्तो हि ऊर्ध्वाम्नायादि चाष्टकम् ।
गुरुं प्राप्य महेशानि ! तद्-दीक्षायै पठेत् सदा ॥ १२२
इति संक्षेपतः प्रोक्ता मेधा-दीक्षा महेश्वरि !
कादि-क्रमे महेशानि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ १२३
सर्व-व्यापक-रूपं च शक्ति-ज्ञानं महेश्वरि !
परं परात्परं देवि ! तच्च देवि ! द्विधा मतम् ॥ १२४
काद्यं हाद्यं महेशानि ! काद्यं काली-मतं भवेत् ।
हाद्यं श्रीत्रिपुराख्यं च कहाख्यं तारिणी-मतम् ॥ १२५
यः कश्चिन्मन्त्र-जापी तु तत्र काली वर-प्रदा ।
भाषा-भेदाः शाबराणां मन्त्र-मात्रे महेश्वरि ॥ १२६
वर-दानाधिकारो हि कालिकायाः प्रकीर्त्तितः ।
एतत्-कथा-विस्तरस्तु कादि-हादि-विनिर्णये ॥ १२७

पूर्वं विस्तरतो देवि ! मया तत् परिकीर्त्तितम् ।
उभयत्र भवेन्मेधा-भेदः पारायणे क्वचित् ॥ १२८
कादौ स्पर्श-मणिर्देवि ! तथा चिन्ता-मणिः प्रिये !
सिद्ध-काली महा-विद्या-राज्ञी काम-कला ततः ॥ १२९
हंस-काली गुह्य-काली वेद-पञ्च-रस-क्रमात् ।
शाम्भवं परमेशानि ! क्रमान्मेधा प्रकीर्त्तिता ॥ १३०
उभय-क्रमतो देवि ! सम्राण्मेधा प्रकीर्त्तिता ।
नाडी-पारायणं नाम मन्त्र-पारायणं तथा ॥ १३१
चक्र-पारायणं देवि ! पूर्णोर्ध्वाम्नाय एव च ।
चरणस्तुर्य-चरणस्तथा षट्-शाम्भवः शिवे ॥ १३२
मेधा साम्राज्य-मेधा च क्रमेण परमेश्वरि !
तत्-प्रश्न-विद्या-जन्मादि-वर्ष-देशाख्य-जातके ॥ १३३
काल-नित्या काल-चक्रं उभयत्र समं भवेत् ।
तद्-द्वयोक्त-शिवः प्रोक्तः साक्षात् पर-शिवो भवेत् ॥ १३४
शिव-देवी-वटेशाख्यस्तथा चानन्द-भैरवः ।
केरलश्चैव काश्मीरो गौड-चैतन्यगः शिवे ॥ १३५
प्रत्येकं तु निगदितं सम्प्रदाय-चतुष्ककम् ।
आज्ञानाम योग-पट्टः क्रमेण दापयेद् गुरुः ॥ १३६
अवधूतः सर्वगः स्यात् पूर्वोक्त-निर्णयो ह्ययम् ।
कापालिके पञ्च-भेदाश्चण्डे भेद-द्वयं भवेत् ॥ १३७
स्वायम्भुवे त्रयं देवि ! कौले चाष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।
वीरे पञ्च महेशानि ! वैष्णवे दश पार्वति ॥ १३८
गाणपेऽष्टौ महेशानि ! जैने शत-द्वयं भवेत् ।
सौरे पञ्च महेशानि ! बौद्धानां शत-मात्रकम् ॥ १३९
दश पाशुपते प्रोक्ता मुण्डी त्रिंशन्महेश्वरि !
केरलश्चैव काश्मीर-गौड-भेदेन पार्वति ॥ १४०

केरले भावना प्रोक्ता काश्मीरे चानुकल्पनम् ।
गौडे प्रत्यक्ष-दानं च चक्र-त्रितयमीरितम् ॥ १४१
केरले त्रितयं देवि ! 'वट-वासि'-मते शिवे !
गुप्तोग्र-केरले देवि ! शुद्ध-केरलके तथा ॥ १४२
तद्-द्रव्य-भावना देवि ! सर्वान्ते परिकीर्त्तिता ।
त्रिधा केरलमेतद्धि वट-वासि-मते शिवे ॥ १४३
एतद्-भेदा महेशानि ! तारा-सूक्ते प्रकाशिताः ।
दिव्यौषधैर्महेशानि ! प्रसौ पञ्च प्रकीर्त्तिता ॥ १४४
आराध्य कलहट्टौ च पुष्प-चक्रौ तथैव च ।
जीव-चक्रौ महेशानि ! सम्प्रदायान्तरं शृणु ॥ १४५
दशावतार-पूर्वत्वं चैतन्यस्तदनन्तरम् ।
ब्रह्मादि-पद-पूर्वत्वं पञ्चाशदीश्वरान्तकम् ॥ १४६
पञ्चाशदीश्वराद्यं च चैतन्यान्तं महेश्वरि !
पञ्चाशत् केशवाद्यं च गणपाद्यं तथैव च ॥ १४७
त्रिपुराद्यं महेशानि ! कामाद्यं परमेश्वरि !
रत्याद्यं वा महेशानि ! छिन्नायां तु विशेषतः ॥ १४८
डाकिन्याद्यं तथा देवि ! भैरवाद्यं च वा भवेत् ।
नृसिंहाद्यं च चैतन्यं किं वा देश-परम्परा ॥ १४९
कलहट्टस्त्वाततायी गोमुखी वल्लभस्तथा ।
विज्ञानी वाम-विज्ञानी तथैव सिद्ध-दीक्षितः ॥ १५०
विद्या-राट् च विराट् स्वामी सम्राण्मण्डलमेव च ।
एते देश-परं याता महा-सिद्धि-प्रयोगजाः ॥ १५१
सम्प्रदाय-विहीनानां कुल-शास्त्र-प्रयोजनात् ।
सर्व-गर्हित इत्युक्तो भैरवाख्यः प्रकीर्तितः ॥ १५२
वेद-बाह्यो यथा प्रोक्तस्तथैवायं प्रकीर्त्तितः ।
एतद्-देश-परं यातास्त्वन्यान् शृणु हि पार्वति ॥ १५३

तारावती भोगवती तथैव विमलावती ।
ब्रह्मावती मधुमती तथा प्रज्ञावती मता ॥ १५४
उड्डटाम्बावती देवि ! चार्हत-भेदजाः ।
अनुग्रहाख्यश्चैतन्यस्तथैव निग्रहाभिधः ॥ १५५
निग्रहानुग्रहाख्यश्च राज-चैतन्य एव च ।
कला-चैतन्य-नामा च श्रीचैतन्यस्तथा शिवे ॥ १५६
दिव्य-चैतन्यको देवि ! तथा प्रज्ञान-वाचकः ।
शाम्भवाख्यस्तु चैतन्यो विज्ञानाख्यस्तथैव च ॥ १५७
परा-चैतन्य-नामाख्यस्त्वात्म-चैतन्य एव च ।
वैराजाख्यश्च चैतन्यः श्रीचैतन्यस्तथैव च ॥ १५८
प्रज्ञा-चैतन्य-नामा च प्रासादाख्यस्तथैव च ।
निर्वाणाख्यस्तु चैतन्यो मेधा-चैतन्य एव च ॥ १५९
अथ शाम्भव-चैतन्यः श्रीचैतन्यस्तथैव च ।
विद्या-चैतन्य नामाख्यः सिद्ध-चैतन्य एव च ॥ १६०
एते काश्मीर-मार्गस्थास्त्रिपुरा कादि-भेदतः ।
रङ्ग-वारो देव-वारो माया-देवस्तथा शिवे ॥ १६१
कालाख्यश्चैव काञ्चीशो ब्रह्म-वारस्तथापरः ।
राज-वारः सिद्ध-वारो विश्व-रूपस्तथापरः ॥ १६२
उन्मत्त-भैरवाख्यस्तु वाक्-शक्तिः काव्य-सिद्धि-युक् ।
भूत-भैरव-नामाख्यो मूर्ति-स्फोटश्च विग्रहः ॥ १६३
विराट्-भैरव-नामाख्यो मूर्ति-चालन-वाक्-परः ।
स्वराट्-भैरव-नामाख्यो वाञ्छा-वाक्सिद्धिगोचरः॥ १६४
सम्राट्-भैरव-नामाख्यः सर्व-रूपत्व-सिद्धि-युक् ।
श्रीमद्-बटुक-नामाख्यः शापानुग्रह-कृत् कलौ ॥ १६५
सर्वत्र सर्व-रूपत्वमानन्द-भैरवे भवेत् ।
असिताङ्गो वाक्-परश्च तथैवाञ्जन-युक् शिवे ॥ १६६

रूप-भेद-कल्पनाख्य-सिद्धिर्गुप्तिस्तथैव च ।
पर-काय-प्रवेशश्च खेचरी चण्ड-भैरवे ॥ १६७
अन्यथा-सृष्टि-करणं क्रोधाख्ये सम्प्रदायके ।
इन्द्र-जाल-महेन्द्रादि कपाल-भैरवे भवेत् ॥ १६८
नदी-समुद्र-शोषादि-भीषणाख्य-प्रदायके ।
एते भेदा वीर-चक्रे केरले शृणु पार्वति ॥ १६९
दिव्य-बोधानन्द-नाथाः कला-नाथान्त-वाचकः ।
केवलं नन्द-नाथाख्यः केवलं नाम-वाचकः ॥ १७०
एकस्मिन् त्रितयं देवि ! क्रमेण योज्यते शिवे !
मानवाख्यस्त्रयान्तो हि सिद्ध-चैतन्य-वह्नि-युक् ॥ १७१
दिव्य-चैतन्य-गुण-युक् दिव्य-प्रज्ञानमेव च ।
गुण-युक् परमेशानि ! नाथानन्द-क्रमेण च ॥ १७२
नन्द-नाथो महेशानि ! मिलित्वा बाण-संख्यकः ।
चैतन्यान्तो विलासाख्यो बाण-संख्या-प्रवाचकः ॥ १७३
सिद्ध-चैतन्य-नामा च पञ्चधा पूर्व-वत् प्रिये !
सिद्धाद्यश्च विलासान्तो बाण-संख्या-प्रवाचकः ॥ १७४
सत्याद्यो हि विलासान्तो बाण-संख्या-प्रवाचकः ।
सिद्ध-प्रज्ञो महेशानि ! बाण-संख्या-प्रवाचकः ॥ १७५
ऋद्धि-चैतन्य-नामाख्यो बाण-संख्या-प्रवाचकः ।
अणिमाद्यष्ट-पूर्वत्वमेतदन्तं महेश्वरि ॥ १७६
चत्वारिंशत्-प्रभेदाश्च मातृका-क्रमतोऽपि च ।
चत्वारिंशत्-प्रभेदाश्च क्रमेण परमेश्वरि ॥ १७७
ओघ-त्रयं द्वैत-मध्यं तदन्ते तु सरस्वती ।
शाम्भवाद्यं मध्य-पूर्वं सरस्वत्यन्तकं शिवे ॥ १७८
बाण-मेधा मध्य-पूर्वं तदन्ते च सरस्वती ।
एवं क्रमेण देवेशि ! दश-भेदाः प्रकीर्तिताः ॥ १७९

चिन्मेधा चैव चित्-प्रज्ञा श्रीनाथश्च तदन्तरम् ।
सम्प्रदाय-त्रयं देवि ! बाण-संख्या-प्रवाचकम् ॥ १८०
सारस्वत-पदं पूर्वं तदन्ते सुन्दरी शिवे !
निग्रहाख्यं पदं पूर्वं तदन्ते तु सरस्वती ॥ १८१
सुन्दर्यन्तं च सिद्धाद्यं शापानुग्रह-कारकम् ।
सुन्दर्यन्तं महेशानि ! कालाद्यं च सरस्वती ॥ १८२
साम्राज्याद्यं महेशानि ! तदन्ते तु सरस्वती ।
सौभाग्याद्यं महेशानि ! तदन्ते तु सरस्वती ॥ १८३
देवी-परम्परायां तु संक्षेपे प्रकाशितम् ।
दिव्याद्यं श्रीविलासान्तं बाण-संख्या-प्रवाचकम् ॥ १८४
दिव्याद्यं च महा-प्रज्ञा बाण-संख्या-प्रवाचकम् ।
सम्राट्-वैराट् च स्वाराज्यमधिराज्यं च राज्यकम् ॥१८५
महा-राज्यं पारमेष्ठ्यमाधिपत्यं तथैव च ।
सार्वभौमश्चक्रवर्ती शकानन्दस्तथैव च ॥ १८६
ब्रह्मानन्दश्चिदानन्दः पूर्णानन्दस्तथैव च ।
महा-सम-रसानन्दो महानन्दस्तथैव च ॥ १८७
बाण-क्रमेण देवेशि ! भेदानां नवतिर्भवेत् ।
बटुकस्य मतं प्रोक्तं नामानि सूचितानि च ॥ १८८
निरुक्तिश्च महेशानि ! दीक्षा-भेदोत्तरं शिवे !
कथ्यते परमेशानि ! किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ १८९

सप्तमः पटलः

कादि-दीक्षा-विवरणम्

श्रीदेव्युवाच—

हादि-कादि-क्रमेणैव सम्प्रदाय-त्रयं शिव !
कथयस्व महा-देव ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ १

श्रीशिव उवाच—

सूचिता परिभाषा च विस्तरः कथ्यते शृणु ।
मेधा-दीक्षा-युतो देवि ! केरलः परि-कीर्तितः ॥ २

षट्-शाम्भवः प्रश्न-युतस्तथा चाष्टाष्टकान्वितः ।
ऋक्-केरली महेशानि ! श्री-यजुः-केरली तथा ॥ ३
श्रीसाम-केरली देवि ! तथा चथर्व-केरली ।
अथर्वे बहवो भेदा दिव्य-सिद्धादि-मानवैः ॥ ४

आनन्द-भैरव-शिवा दक्षिणामूर्त्तिरेव च ।
देवी च नव-नाथश्च सिद्ध-भेद-क्रमेण च ॥ ५
ओघ-त्रये महेशानि ! शिव-शक्ति-क्रमेण च ।
एतस्य लोपनाल्लोपा परा-षोढा-क्रमेण च ॥ ६

तत्परा-चरणैर्देवी शाम्भवाष्टादश-क्रमात् ।
तदोघ-क्रम-योगेन अनुलोम-क्रमेण च ॥ ७
अगस्ति-दुर्गा-चण्डीश-स्वप्नावती-क्रमेण च ।
महा-विद्या-क्रमेण तदोघ-क्रम-भेदतः ॥ ८

अथर्व-केरले भेदाः शाक्ता वै ते प्रकीर्तिताः ।
शैव-वैष्णव-सौराणां गाण-बौद्धे तु भिन्नतः ॥ ९
दक्ष-हस्तेन पूजा स्याद् वामेन तर्पणं भवेत् ।
तर्पणं च तथा पानं दक्षेण परि-कीर्त्तितम् ॥ १०

वामेन पूजनं देवि ! क्रमेण परि-कीर्त्तितम् ।
जलं दुग्धं नष्ट-दुग्धं संविद्-रस-वटी तथा ॥ ११
वृन्ताकः सूरणो देवि ! दुग्ध-सारस्तथैव च ।
कुमारी-पूजनं देवि ! परिभाषा तु केरले ॥ १२
परमेश-सपर्यादि तद्-रूपत्वं सदा भवेत् ।
अन्य-कर्मणि देवेशि ! प्रवृत्तिस्तस्य वै न च ॥ १३
तद्धस्त-निःसृतं तोयं मुक्ता-रूपं क्षणाद् भवेत् ।
पर-काय-प्रवेशं च चराचर-पुरी-गतिः ॥ १४
वयः-स्थैर्यमथाकर्षः सर्व - स्थावर-जङ्गमे ।
ब्रह्माण्ड-गोलके या च या काचिज्जगती-तले ॥ १५
करामलक-वद् देवि ! साधकस्य भवेद् ध्रुवम् ।
कादि-हादि-मते देवि ! फलमेतत् कहेऽपि च ॥ १६
काश्मीरं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति ! सादरम् ।
ऊर्ध्वाम्नायादिभिर्युक्तं काश्मीरी शक्ति-पात-युक् ॥ १७
अष्टाष्टक-समायुक्तः काश्मीरस्तत्त्व-सिद्धि-युक् ।
ऋक्-काश्मीरो यजुश्चैव साम-काश्मीर एव च ॥ १८
अथाथर्वण-काश्मीरो दिव्य-सिद्धादि-मानवैः ।
दक्षिणामूर्त्ति-भेदेन तथा भैरव-भेदतः ॥ १९
देवः सदाशिवश्चैव नव-नाथ-क्रमेण च ।
चतुरशीति-सिद्धाश्च दिव्यौघौघ-शिवादितः ॥ २०
शैव-शाक्ते तस्य लोपात् षोडशी तत्परा क्रमात् ।
चरण-त्रय-योगेन मन्वगस्ति-क्रमेण च ॥ २१
लोपा दुर्गा च चण्डेशी तथा स्वप्नावती क्रमात् ।
दश-विद्यौघ-योगेन काश्मीरे भेद-भाजनम् ॥ २२
शैव-वैष्णव-गाणपे बौद्ध-सौरे तु भिन्नता ।
वाम-हस्तेन पूजा च दक्षेण तर्पणं मतम् ॥ २३

दक्षेण पानं देवेशि ! ह्यनुकल्पाः प्रकीर्त्तिताः ।
अथ गौडं प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ॥ २४
पूर्णाभिषेक-संयुक्तस्त्वष्टाष्टक-समन्वितः ।
ऋग्-गौडश्च यजुर्गौडः साम-गौडस्तृतीयकः ॥ २५
अथर्व-गौडो देवेशि ! तद्-भेदं शृणु पार्वति !
दिव्य-सिद्ध-मानवौघ - दक्षिणामूर्त्ति-भेदतः ॥ २६
आनन्द-भैरवश्चैव सदाशिव-परम्परा ।
देवी च नव-नाथाश्च सिद्धा अपि महेश्वरि ॥ २७
त्रितये शिव-शक्तिभ्यां तल्लोप-क्रम-योगतः ।
षोडशी-मनु-लोपां च तथागस्ति-क्रमेण च ॥ २८
दुर्गा चण्डेश्वरी देवी तथा स्वप्नावती क्रमात् ।
दश-विद्यौघ-भेदेन तदावरण-भेदतः ॥ २९
अथर्व-गौडे भेदश्च शाक्त-मार्गे प्रकीर्त्तितः ।
शैव-वैष्णव-सौराणां बौद्ध-गाणपके शिवे ॥ ३०
भिन्न-क्रमो महेशानि ! पूजनं वाम-हस्ततः ।
तर्पणं दक्ष-हस्तेन प्रत्यक्षं पान-दानके ॥ ३१
महा-विद्या सिद्ध-विद्या विद्या-भेदेन पार्वति !
विद्या-रूप-तदाचार-तद्-विद्या-क्रम-योगतः ॥ ३२
चक्र-भेदाम्नाय-भेदात् तदाचरण-भेदतः ।
विद्योपास्या गौड-मार्गे द्वितयेऽपि क्रमो ह्ययम् ॥ ३३
शक्ति-देहे महेशानि ! ब्रह्माण्ड-सरसाः प्रिये !
त्रितयेऽपि भवेत् साम्यं नाम-पारायणं तथा ॥ ३४
मन्त्र-पारायणं देवि ! नाड़ी-पारायणं शिवे !
चक्र-पारायणं देवि ! प्रोक्तं हादि-मतं शिवे ॥ ३५
अथ कादौ महेशानि ! सम्प्रदाय-क्रमं शृणु ।
मेधा-दीक्षादि-संयुक्तः श्रीकादि-केरली भवेत् ॥ ३६

ऋक्-केरली यजुश्चैव तथैव साम-केरली ।
पञ्च-पञ्चक-संयुक्तः शक्ति-पात-समन्वितः ॥ ३७
षट्-शाम्भव-प्रश्न-युक्तस्त्रैकाल्य-ज्ञान-गोचरः ।
अथर्व-केरलं देवि ! शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ॥ ३८
दिव्य-सिद्ध-मानवौघ-महाकाल-क्रमेण च ।
अथानन्द-भैरवेन सदाशिव-क्रमेण च ॥ ३९
देवी-क्रमेण देवेशि ! नव-नाथ-प्रभेदतः ।
चतुरशीति-सिद्धैस्तु त्रितये शिव-शक्तितः ॥ ४०
तल्लोपनात् तत्परत्वात् तत्पाद-क्रमतोऽपि च ।
चतुश्चरण-योगे च शाम्भवाष्टादश-क्रमात् ॥ ४१
तदोघ-क्रम-योगेन शम्भु-पाद-क्रमेण च ।
दश-विद्या-गुरुत्वेन तदावरण-योगतः ॥ ४२
शैवादि-पञ्च-भेदैश्च पर्याय-क्रम-भेदतः ।
आगमश्च तथा कालो देशाम्नाय-क्रमेण च ॥ ४३
दर्शनायतनत्वेन भेद-बाहुल्यमीरितम् ।
दक्षेण पूजा वामेन तर्पणं परि-कीर्त्तितम् ॥ ४४
दक्षेण तर्पणं देवि ! पानं तेनैव पार्वति !
वामेन देवता तर्प्या दक्षेण गुरु-तर्पणम् ॥ ४५
केवलं वाम-हस्तेन द्वयोस्तर्पणमाचरेत् ।
केवलं दक्ष-हस्तेन तर्पणं केरली चरेत् ॥ ४६
गुरुं सन्तर्प्य दक्षेण वाम-हस्तेन देवताम् ।
ब्रह्म-कौल-मते देवि ! तर्पणं परि-कीर्त्तितम् ॥ ४७
जलं दुग्धं नष्ट-दुग्धं सम्विन्मिश्रं तथैव च ।
सम्विद्-रस-वटी चैव वृन्ताक-सूरणे तथा ॥ ४८
दुग्ध-सारो दुग्ध-सम्विदासवश्च कुमारिका ।
पूजनं परमेशानि ! कादि-केरल-गोचरम् ॥ ४९

ऊर्ध्वाम्नायादि-संयुक्तः काश्मीरः शक्ति-पात-युक् ।
ऋक्-काश्मीरो यजुश्चैव साम-काश्मीर एव च ॥ ५०
अथाथर्वण-काश्मीरो भेदान् संशृणु पार्वति !
दिव्य-सिद्ध-मानवौघ-महाकाल-क्रमेण च ॥ ५१
अति-काल-करालाख्य-काल-वीर-क्रमेण च ।
काली च नव-नाथाश्च चतुरशीति-सिद्धयः ॥ ५२
त्रितये शिव-शक्तिभ्यां तल्लोपा कालिका-क्रमात् ।
अथ काम-कला काली हंस-काली क्रमेण च ॥ ५३
शैवादि-पञ्च-भेदेन सप्त-पर्याय-भेदतः ।
भेद-बाहुल्य-मात्रं स्याद् वामेन तर्पणं स्मृतम् ॥ ५४
दक्षेण पूजा सम्प्रोक्ता ह्यनुकल्पाः प्रकीर्तिताः ।
अथ गौडं प्रवक्ष्यामि यथा-योग-क्रमेण च ॥ ५५
पूर्णाभिषेक-संयुक्तो गौडश्च पञ्च-पञ्च-युक् ।
ऋग्-गौडो हि यजुर्गौडः साम-गौडस्तथैव च ॥ ५६
अथर्व-गौडो देवेशि ! यथा-वत् कथ्यते शृणु ।
दिव्य-सिद्ध-मानवौघ-महाकाल-करालकाः ॥ ५७
वीर-नाथस्तथा देवि ! नव-नाथ-क्रमेण च ।
चतुरशीति-सिद्धाद्यैस्त्रितये शिव-शक्तितः ॥ ५८
तल्लोपनाद् भवेल्लोपा कला काम-कला परा ।
तद्-वदावरणे भेदाः कीर्तिताः परमेश्वरि ॥ ५९
शैवादि-पञ्चकत्वेन साम्यं पर्याय-सप्तके ।
बाहुल्यं कीर्तितं देवि ! पूर्वमेव प्रकाशितम् ॥ ६०
वामेन तर्पणं देवि ! दक्षेण पूजनं स्मृतम् ।
दानं पानं च प्रत्यक्षं महा-विद्या-क्रमेण च ॥ ६१
सिद्ध-विद्या-क्रमेणैव तथा विद्या-क्रमेण च ।
युगानुरूपतो देवि ! सिद्ध-विद्यादि-भेदतः ॥ ६२

तद्-रूप-शक्ति-क्रमतस्तदाचार-क्रमेण च ।
चक्र-भावाम्नाय-भेदैस्तदा चरण-भेदतः ॥ ६३
शक्ति-योगज-ब्रह्माण्डे सर्वे तत्र रसाः स्फुटम् ।
नाम-पारायणं देवि ! मन्त्र-पारायणं तथा ॥ ६४
नाड़ी-पारायणं देवि ! कादि-हादि-कहेऽपि च ।
कादि-हादौ शाम्भवान्त-सम्राण्मेधाभिधा भवेत् ॥ ६५
दिव्य-साम्राज्य-मेधा च कहान्ता परि-कीर्त्तिता ।
दिनतो वारतः पक्षान्मासात् षट्-त्रिंशता दिनैः ॥ ६६
प्रायश्चित्तं समाचर्य काल-नित्या-क्रमेण च ।
पञ्च-नित्या-क्रमेणैव स्व-गुरुर्वा स्वयं च वा ॥ ६७
पूर्वोक्त-क्रममासाद्य कला-रन्ध्र-क्रमेण च ।
काम-बाण-गुणत्वेन दीक्षा-मण्डपगो भवेत् ॥ ६८
होमं कृत्वा पूर्व-वच्च सर्वं कार्यं महेश्वरि !
आज्ञा-नाम प्रदद्याद् वै योग-पट्टं समभ्यसेत् ॥ ६९
अङ्गावरण-मन्त्राश्च पञ्चाशत् पद्म-मन्त्रकाः ।
श्रोतव्याश्चैव मन्तव्या द्रष्टव्याः परमेश्वरि ॥ ७०
अन्यत् सर्वं पूर्ववत् स्यात् संक्षेपादिदमीरितम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७१

अष्टमः पटलः

प्रदोष-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यातिरहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच—

निरुक्तं द्रव्य-भेदश्च कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ १
वीरादि-कौल-भेदाश्च पूर्वमेव प्रकाशिताः ।
विष्णु-पाशुपतादीनां कथ्यन्ते परमेश्वरि ॥ २
पञ्च-रात्रि-व्रतं प्राप्ताः पाञ्च-रात्राः प्रकीर्त्तिताः ।
दिन-पञ्चक-पर्यन्तं शैवानां न विलोकनम् ॥ ३
मुद्रा-सन्धारिणीं रण्डां कृत्वा सम्पूजयन्ति ये ।
प्रसादः कस्य वेत्युक्ते श्रीकृष्णस्येति यो वदेत् ॥ ४
स्व-भुक्तं चैव नैवेद्यं देवतार्थ-प्रयोजकः ।
वर्त्तन्ते वैष्णवा ये च शिव-निन्दा-परायणाः ॥ ५
वैष्णवानपि निन्दन्ति पाञ्च-रात्राश्च ते मताः ।
पाषण्डाख्य-व्रतं प्राप्ताः पाषण्डास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ ६
श्मशान-भस्म-धारी च भस्म-धारण-सञ्चयः ।
स्नान-सन्ध्यादिकं देवि! लौकिकार्थं तु यश्चरेत् ॥ ७
विष्णु-द्वेष-परो भूत्वा सर्वं प्रकुरुते नरः ।
स पाषण्डेति कथितः शृणु कापालिकं शिवे ॥ ८
कपाल-पात्र-सम्भोजी मद्य-मांसेषु तत्परः ।
स्त्री-योनि-दर्शको नित्यं मुण्ड-माला-धरः सदा ॥ ९
श्मशानाग्नि-प्रभोजी यः स च कापालिकः स्मृतः ।
स च द्वादशधा प्रोक्तो महा-कापालिकः परः ॥ १०

स्नान-दानादि-रहितः शौचाशौच-विवर्जितः ।
न जपो न तपस्या च न तस्य नियमः क्वचित् ॥ ११
ईदृग्-विधो भवेच्चीनः सकलो निष्कलो द्विधा ।
जैनं शृणु महा-देवि ! कमण्डलु-धरः सदा ॥ १२
जीव एव परं भोगी कर्त्ता हर्त्ता स एव हि ।
यदेव तत्-सुखं देवि ! तत्-सुखं स्वात्म-रूपकम् ॥ १३
स जैनः कथितो देवि ! एवं बौद्धादयो मताः ।
केश-संलुञ्चका देवि ! तथा श्वेत-पटाः प्रिये ॥ १४
तथा रक्त-पटा देवि ! तथा नीलाम्बरादयः ।
बृहद्-गुरुरिति ख्यातास्तथान्ये परमेश्वरि ॥ १५
अहिंसकास्तथान्ये च भेदाः संक्षेपतो मताः ।
मुद्राधिकारिणो देवि ! कथ्यन्ते शृणु साम्प्रतम् ॥ १६
ब्राह्मणैर्न तथा कार्यं ब्राह्मण्यं च विनश्यति ।
मुद्रां तु ब्राह्मणो धृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १७
वेदैस्तु रहितो यो हि स मुद्रा-धारको भवेत् ।
मुद्रया सहितो यो हि स कथं ब्राह्मणो भवेत् ॥ १८
मुद्रा चतुर्विधा देवि ! चातुर्विध्यं शृणु प्रिये !
ब्राह्मणो भावयेद् देहे विष्णु-भाव-प्रबुद्धये ॥ १९
क्षत्रियो रेखयेद् देहे वैश्यो मुद्रां प्रविन्यसेत् ।
शूद्राधमादिकानां च तप्त-मुद्रा प्रकीर्त्तिता ॥ २०
अत्यन्त-भक्ति-युक्तोऽपि भावयेन्न तु रेखयेत् ।
ब्राह्मणो रेखयेत् क्वापि बिम्बयेन्न कदाचन ॥ २१
देवो भूत्वा यजेद् देवं नादेवो देवमर्चयेत् ।
तस्माद् विष्णु-स्वरूपत्वं स्वस्मिन् भाव्यं महेश्वरि॥ २२
ततो जपं प्रकुर्वीत तस्य सिद्धिर्भवेन्मनोः ।
एवमेव महेशानि ! शैवादीनां क्रमो भवेत् ॥ २३

शङ्ख-चक्राङ्कितं दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ।
त्रिशूलं डमरुं देवि ! ब्राह्मणो भावयेत् सदा ॥ २४
धारणं शिव-लिङ्गस्य शिव-मुद्रादि-धारणम् ।
द्विजस्तु वर्जयेद् देवि ! संक्षेपादिह कीर्त्तितम् ॥ २५
शक्तेरुपासको यस्तु स च शाक्तः प्रकीर्त्तितः ।
वैखानसादि-दीक्षाद्यैर्युक्तो वैष्णव एव च ॥ २६
षडध्व-शाम्भवाद्यैस्तु युक्तः शैवः प्रकीर्त्तितः ।
केवलं शिव-सम्पन्नस्त्वन्य-देवस्य निन्दकः ॥ २७
वीर-शैवेति गदितो वीराख्यं वैष्णवं शृणु ।
केवलं विष्णु-निरतं सर्व-देव-अनिन्दकः ॥ २८
वीर-वैष्णव इत्युक्तः पाप-भाजौ नरावुभौ ।
चन्द्र-जाप-रतो यस्तु स च चान्द्रो महेश्वरि ॥ २९
सूर्यासक्त-मना यस्तु स सौरः परि-कीर्त्तितः ।
ब्रह्मणोपासको यस्तु स च स्वायम्भुवो मतः ॥ ३०
दुर्गा-चण्डचादि-संयुक्तः स च दौर्गः प्रकीर्त्तितः ।
वेद-मूलाः क्रियाः सर्वा वेद-मूला परा स्मृतिः ॥ ३१
वेदेन रहितं यत् तु तन्न कुर्याद् द्विजः क्वचित् ।
वेद-मार्ग-रतो नित्यं ब्राह्मणो भवति ध्रुवम् ॥ ३२
वेदेन रहितो यस्तु स चाण्डालः प्रकीर्त्तितः ।
स्व-स्व-धर्मं पुरस्कृत्य सर्वं कार्यं महेश्वरि ॥ ३३
स्व-धर्म-निरतो नित्यं सुखमाप्नोति निश्चितम् ।
स्व-धर्म-रहितो विप्रः सुत-हारी द्विजाधमः ॥ ३४
तं दृष्ट्वा तु महेशानि ! प्राजापत्यं समाचरेत् ।
तदभावे महेशानि ! स-चैलं जलमाविशेत् ॥ ३५
तस्मान्मुद्रादिक-द्वेषं ब्राह्मणो वर्जयेत् सदा ।
अधमानुग्रहार्थं तु मुद्रा प्रोक्ता मया तव ॥ ३६

सत्यं सत्यं महेशानि ! किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ?

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि विष्णु-भेदान् शिवस्य च ॥ ३७

श्रीशिव उवाच—

वैखानसो भवेदादौ श्रीराधा-वल्लभस्तथा ।
गोकुलेशो महेशानि ! तथा वृन्दावनी भवेत् ॥ ३८
पाञ्च-रात्रः पञ्चमः स्यात् षष्ठः श्रीवीर-वैष्णवः ।
रामानन्दी हरि-व्यासी निम्बार्कश्च महेश्वरि ॥ ३९
ततो भागवतो देवि ! दश-भेदाः प्रकीर्त्तिताः ।
शिखी मुण्डी जटी चैव द्वि-त्रि-दण्डी क्रमेण च ॥ ४०
एक-दण्डी महेशानि ! वीर-शैवस्तथैव च ।
सप्त पाशुपताः प्रोक्ता दशधा वैष्णवा मताः ॥ ४१
एतेषां वासनां देवि ! शृणु यत्नेन शाम्भवि !
वेवेष्टि सर्वं सम्व्याप्य यस्तिष्ठति स वैष्णवः ॥ ४२
वैखानसादि-दीक्षाद्यैर्भूषितः स्मार्त्त-वैष्णवः ।
श्रीराधा-वल्लभं देवि ! शृणु यत्नेन शाम्भवि ॥ ४३
वैष्णावाचार-निरतो विष्णु-तन्त्रैक-पारगः ।
अनन्य-चेताः शान्तात्मा विष्णु-चिह्न-परायणः ॥ ४४
श्रीराधा-वल्लभो देवि ! गोकुलेशं शृणु प्रिये !
नाना-भूषण-सम्पन्नो नाना-सौगन्ध-भूषितः ॥ ४५
गवां कुलं प्रीणयिता कलि-कृष्ण-स्वरूप-धृक् ।
शरीरमर्थं प्राणांश्च तन्निवेदन-कारकः ॥ ४६
अन्तः-शक्ति-परो देवि ! बहिर्वैष्णव-रूप-धृक् ।
गन्धर्वाचार-निरतो लता-वेष्टन-तत्परः ॥ ४७
सम्प्रदायो गोकुलेशः सर्व-सिद्धि-करो भुवि ।
वृन्दावनाख्यं देवेशि ! शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ॥ ४८

विगताशः प्रसन्नात्मा विष्णु-भक्ति-परायणः ।
कामिनी-सङ्ग-चपलो वन-क्रीडा-विनोद-धृक् ॥ ४९
सौगन्ध-भूषित-तनुः स्त्री-ध्यानैक-परायणः ।
विष्णु-सारूप्य-तत्वज्ञः प्रोक्तो वृन्दावनी शिवे ॥ ५०
पाञ्च-रात्रो महेशानि ! तथैव वीर-वैष्णवः ।
पूर्वमेव महेशानि ! कीर्त्तितः परमेश्वरि ॥ ५१
'रा' शक्तिरिति विख्याता 'म' शिवः परिकीर्त्तितः।
तदानन्दो शान्त-चित्तः प्रसन्नात्मा विचार-धृक् ॥ ५२
सर्वत्र सम-रूपश्च रामानन्दो प्रकीर्त्तितः ।
हरि-व्यासं महेशानि ! यथा-वदवधारय ॥ ५३
पाप-संहारणे शक्तो विष्णु-भक्तो जितेन्द्रियः ।
यमादि-नियमैर्युक्तस्त्यक्ताचार-परायणः ॥ ५४
सोपयोग-फल-ग्राही पर-कार्य-परायणः ।
हरि-व्यासो महेशानि ! शिव-शक्ति-स्वरूप-धृक् ॥ ५५
निम्बार्काख्यं सम्प्रदायं शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ।
नित्यार्चन-क्रमासक्तः स्वतन्त्रैक-परायणः ॥ ५६
बाह्य-पूजादि-निरतोऽनन्य-भक्तः प्रसन्न-धीः ।
आर्य-पक्षान्वितः स्वच्छः स्वच्छन्दाचार-तत्परः ॥ ५७
स्वतन्त्रः स्मार्त्त-विद्वेषी निम्बार्को भगवान् हरिः ।
अथ भागवतं देवि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ ५८
विष्णु-भक्तौ च निपुणो विजितात्मा प्रसन्न-धीः ।
स्मार्त्त-कर्मान्वितो देवि ! तदन्याचार-तत्परः ॥ ५९
आर्य-पक्षान्वितो देवि ! तथा चारुण-वेष-धृक् ।
शैव-द्वेषी तस्य सङ्गात् पुनः स्नान-परायणः ॥ ६०
केवलं विष्णु-चित्तज्ञः प्रोक्तो भागवतः शिवे !
तेषां व्रतादिकानां तु निर्णयः कथ्यते क्रमात् ॥ ६१

एकादशी सदोपोष्या भक्ति-युक्तेन चेतसा ।
एकादश्यामहोरात्रं न भोक्तव्यं कदाचन ॥ ६२
मुहूर्त्त-विद्धा दशमी ततो रौद्री-समागमः ।
तस्यां तिथौ न भोक्तव्यं दशम्यां भोजनं चरेत् ॥ ६३
सूर्योदयमभिव्याप्य या तिथिर्याति पार्वति !
सा तिथिः सकला ज्ञेया तत् तिथ्युक्तं समाचरेत् ॥ ६४
आद्या शैवेति विख्याता द्वितीया मोहिनी भवेत् ।
द्वाभ्यां त्वित्थमुपोष्यैव सर्व-पापैः प्रमुच्यते ॥ ६५
द्विधा तिथिर्यदा देवि ! तदेदं परि-कीर्त्तितम् ।
यद्यप्येकादशी पूर्णा द्वितीयेऽह्नि न विद्यते ॥ ६६
द्वितीये वृद्धिदा देवि ! द्वादशी यदि दृश्यते ।
द्वितीये समुपोष्यैव सर्व-पापैः प्रमुच्यते ॥ ६७
स्मार्त्तानां मतमाख्यातं वैखानस-मतं शृणु ।
एकादश्यां तु यः कश्चित् प्रमादात् भोजनं चरेत् ॥ ६८
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ।
कोटिचर्बुदं सन्निवसेत् रौरवे नरके प्रिये ॥ ६९
गोकुलेश-मतं देवि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
स्मार्त्त-वैष्णवयोर्मध्ये विवादो हि महानयम् ॥ ७०
परस्परं प्रशंसन्ति निन्दन्ति च परस्परम् ।
ते मूढा नैव जानन्ति पाषण्ड-शास्त्र-मोहिताः ॥ ७१
विष्णु-रूप-धरः शम्भुः शम्भु-रूप-धरो हरिः ।
अत्रार्थे प्रत्ययो देवि ! रुद्रा एकादश स्मृताः ॥ ७२
विष्णुं मिलित्वा देवेशि ! द्वादशी परि-कीर्त्तिता ।
एकादशी तु रुद्रस्य द्वादशी श्री-पतेः स्मृता ॥ ७३
कला-मात्रान्विता वृद्धा मुहूर्त्त-संयुतापि चेत् ।
गोकुलेश-मतं प्रोक्तं गोपाल-सुन्दरी परः ॥ ७४

पूर्णमेकादशीं प्राप्य द्वादश्यां समुपोषणम् ।
स्मार्त्त-द्वेष-परो भूत्वा प्रमादाद्यः समाचरेत् ॥ ७५
एकादशी हानिदा स्यात् पुत्रायुर्धन-नाशिनी ।
स्मार्त्त-द्वेष-परो भूत्वा एकादश्यां तु भोजनम् ॥ ७६
पाषण्ड-मतमाश्रित्य सूर्यारुण-कलार्धतः ।
पक्षमाश्रित्य देवेशि ! यः करोति नराधमः ॥ ७७
कोट्यर्बुद-युगं देवि ! नरके निवसेद् ध्रुवम् ।
विष्णु-द्वेष-परो भूत्वा रोहिण्यां भोजनं चरेत् ॥ ७८
स दरिद्री महा-पापी तस्य पातो भविष्यति ।
अरुणोदय-वेधस्तु श्रीनिम्बार्क-मतं मतम् ॥ ७९
सूर्योदयाख्य-वेधो हि श्रीवैखानस-सम्मतम् ।
कला-वेधो महेशानि ! वैष्णवानां प्रकीर्त्तितः ॥ ८०
मुहूर्त्त-वेधो देवेशि ! स्मार्त्तानां परि-कीर्तितः ।
अथात्र पाञ्च-रात्राणां आद्य-पक्षः प्रकीर्तितः ॥ ८१
कल्पितं वेधमाश्रित्य द्वादशीं कल्पयन्ति च ।
न लज्जन्ति च ते मूढाः प्रोक्तास्ते यम-किङ्करा: ॥ ८२
'सुरेन्द्र-संहिता' देवि ! तथा 'षट्-शाम्भवः' शिवे !
'गोपाल-पाञ्च-रात्रं' च 'षडन्वय-मतं' तथा ॥ ८३
'श्रीगोपी-परिशिष्टं' च 'मोह-शक्तीश्वर'स्तथा ।
'षट्-शाम्भव-रहस्यं' च क्रमादेते प्रकीर्तिताः ॥ ८४
एतद्-ग्रन्थ-क्रमाद् देवि ! विवेचनमुदीरितम् ।
अथ पाशुपतानां च वासनां शृणु पार्वति ॥ ८५
शिखि-पाशुपतो देवि ! शिखा-सूत्र-धरः शुभः ।
समाधि-तत्परो देवि ! समाधौ शिव-पीठ-धृक् ॥ ८६
रुद्राक्षं च तथा भस्म लिङ्गं शैवाभिधं शिवे !
प्रसन्नात्मा शान्त-चित्तो ब्रह्मचारी प्रकीर्तितः ॥ ८७

मतं श्रीबिन्दु-मालिन्याः समाश्रित्य प्रतिष्ठति ।
मुण्डी त्रिंशद्-विधो देवि! 'तारा-सूक्ते' प्रकाशितः॥ ८८
तत्र पाशुपताचार-सम्पन्नो मुण्डितो भवेत् ।
जटी पाशुपतो देवि! सोऽपि दश-विधः स्फुटम् ॥ ८९
त्रि-जटैक-जटा-धारी तथा बहु-जटा-धरः ।
नग्नस्तपस्वी शान्तात्मा देह-क्लेश-परायणः ॥ ९०
क्रम-त्रितय-सम्पन्नो जटी पाशुपतः स्मृतः ।
द्वि-दण्डी तु महेशानि ! वाङ्-मनो-दण्ड-संयुतः ॥ ९१
काय-वाङ्-मनसो दण्डस्त्रि-दण्डी परि-कीर्त्तितः ।
वीर-शैवः प्रसिद्धोऽत्र पूर्वमेव प्रकाशितः ॥ ९२
सर्वोत्तमो भवेच्छैवः शाम्भवः परि-कीर्तितः ।
चतुर्दशी-व्रतासक्तः प्रदोष-व्रत-तत्परः ॥ ९३
शनि-प्रदोषे देवेशि ! महा-व्रत-परायणः ।
दारिद्र्य-दहनं नाम व्रतमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ९४
कृष्ण-पक्षे विशेषेण शुक्ल-पक्षेऽपि पार्वति !
अष्टमी-सप्तमी-सन्धौ प्रदोष-व्रतमीरितम् ॥ ९५
एतद्-व्रत-समायुक्तः शिव-पूजा-परायणः ।
शनि-प्रदोषे सम्प्राप्ते शकुनं संभृणु प्रिये ॥ ९६
शनिवारे सोमवारे पुस्तकं चाभि-मन्त्रयेत् ।
आदित्य-वासरे देवि ! रात्रिं काम-मितां चरेत् ॥ ९७
यत्रादौ दीयते देवि ! स चाध्यायः प्रकीर्तितः ।
द्वितीये दशको देवि ! तृतीये श्लोक-संख्यता ॥ ९८
दशकालाभतो देवि ! सर्वेभ्यो विनियोजनम् ।
कुमारीं प्रार्थ्य यत्नेन स-पुष्प-फल-संयुताम् ॥ ९९
स्थापयेद् राशि-मध्ये तु दर्पणोदर-सन्निभे ।
गोमयैरुप-लिप्ते तु भूमौ स्वस्तिक-मण्डले ॥ १००

कुमारीं पूजयित्वा च नव-कन्या-प्रभेदतः ।
तत्र वाच्यं प्रयत्नेन भूतं भव्यं भविष्यकम् ॥ १०१
शुभाशुभादिकं कर्म तथा षट्-कर्म-साधनम् ।
षट्-कर्म त्रिविधं प्रोक्तं यथा-वदवधारय ॥ १०२
वश्याकर्ष-स्तम्भनं च विद्वेषोच्चाटनं तथा ।
मारणं चैव देवेशि ! विरूपाक्षस्य सम्मतम् ॥ १०३
वश्य-स्तम्भन-सम्मोहा मारणोच्चाटनं तथा ।
विद्वेषणं च देवेशि ! षट्-कर्माणि विराण्मते ॥ १०४
शान्ति-स्तम्भौ वशीकारो मारणोच्चाटने तथा ।
द्वेषणं चेति देवेशि ! षट्-कर्माणि यथा-क्रमात् ॥ १०५
यस्मिन् विद्या-विधौ देवि! यत्-कर्म परि-कीर्त्तितं ।
तत्-कर्माणि समारभ्य षट्-कर्माणि जगुः प्रिये ॥ १०६
बगलेशी तथा वश्ये बगला स्तम्भने तथा ।
वश्ये पञ्चदशी प्रोक्ता वशीकारस्त्रिधा भवेत् ॥ १०७
आदौ प्रीतिर्महेशानि ! मोहनं तु द्वितीयकम् ।
वशीकारस्तृतीयः स्यात् त्रितयं त्रितयं त्रिषु ॥ १०८
एके जाते महेशानि ! त्रितयं जायते शिवे !
शनि-प्रदोषमाश्रित्य स्थाने शैव-विभूषिते ॥ १०९
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं नन्दि-हीनं पुरातनम् ।
चतुरः-पञ्च-क्रोशान्ते न लिङ्गं दृश्यते शिवे ॥ ११०
तदेक-लिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।
ऊर्ध्व-पुण्ड्रं त्रि-पुण्ड्रं वा पट्ट-बन्धनमेव च ॥ १११
अगस्ति-पत्राकारं वा स्त्रीणां शून्य-करेण च ।
द्वादशाष्ट-चतुर्योगात् ऊर्ध्व-पुण्ड्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ ११२
शिव-विष्णु-शिवा-युक्तं त्रि-पुण्ड्रं परमेश्वरि !
शनि-प्रदोषे धृत्वा तु शिवं पूज्य प्रयत्नतः ॥ ११३
भोजयेद् ब्राह्मणान् देवि! अकाण्डादिदमीरितम् ।
गोपनीयं रहस्यं च किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ११४

नवमः पटलः

मेरु-संसाधनम्

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ।
पूजा-द्रव्यं महा-देव ! सम्प्रदाय-त्रये वद ॥ १

श्रीशिव उवाच—

षड्-दर्शने षडाम्नाये महा-विद्या-विधौ शिवे !
पञ्चायतनके देवि ! शिव-शक्ति-युतेऽपि च ॥ २
अथ गोपाल-नृहरी गणेश-शङ्करौ तथा ।
हय-ग्रीवो रामचन्द्रः कालः काली महेश्वरि ॥ ३
तारा-गण-पतिश्चैव तारा-बटुक एव च ।
आद्यन्त-क्रम-योगेन द्विधा भेदः प्रकीर्त्तितः ॥ ४
एतेषां सुन्दरी-योगात् यन्त्रं शृणु महेश्वरि !
मूल-यन्त्रं समुद्धृत्य तत्र विन्दौ महेश्वरि ॥ ५
देव-यन्त्रं साङ्गकं तु भावयेद् यत-मानसः ।
विद्या-यन्त्रौ यथा पूज्यौ देव-यन्त्रेऽथवा पुनः ॥ ६
पूजनीया महेशानि ! गोपाल-सुन्दरी परा ।
पूर्वोक्तानां समस्तानां पूजा-यन्त्रं प्रकीर्तितम् ॥ ७
एवमेव तु सर्वेषां कथितं तु तृतीयकम् ।
आदौ यदुच्चरेद् देवि ! तद् यन्त्रं पूजयेद् हरम् ॥ ८
शक्तिर्वा शिव-मन्त्रो वा यस्य चोच्चारणं भवेत् ।
तस्य यन्त्रं पूजयेत् तु संक्षेपात् गदितं मया ॥ ९
विरूपाक्ष-मते तारे पत्रे यन्त्रं तु संलिखेत् ।
सुन्दरी भैरवो देवी तथैव काल-सुन्दरी ॥ १०
सुन्दरी काल इत्युक्तः सुन्दरी गोप इत्यपि ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं द्रव्य-भेदं शृणु प्रिये ॥ ११

केरलश्चैव काश्मीरो गौडश्चैव तृतीयकः ।
शिव-शक्ति-तद्-द्वयत्वं सप्त-पर्याय-भेदतः ॥ १२
चतुरशीति-युग्मेन नाथ-त्रितय-मार्गतः ।
ओघ-त्रय-क्रमेणैव वट-वासि-क्रमेण च ॥ १३
दश-विद्या-गुरुत्वेन भेद-बाहुल्यमीरितम् ।
दुग्धं वृन्ताककं देवि ! सूरणस्तु तृतीयकः ॥ १४
दुग्ध-सारं कुमारी च पञ्च-तत्वानि वै जगुः ।
आत्म-विद्या शिवाख्या च सर्वं पूर्ण-क्रमेण च ॥ १५
काश्मीरे त्वनुकल्पैश्च ताम्रे गव्यं प्रदापयेत् ।
पिण्याकं तु द्वितीयं च गृञ्जनं तु तृतीयकम् ॥ १६
चतुर्थं पायसं दुग्धं पञ्चमं मिथुनं भवेत् ।
पञ्चानुकल्पा देवेशि ! काश्मीराख्य-क्रमे मताः ॥ १७
मद्यं मांस तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकाराः पञ्च वै ख्याता गौड-मार्गे महेश्वरि ॥ १८
सामान्यत्वेन कथितं विशेषं शृणु सादरम् ।
दुग्धानुकल्प-मद्यैश्च पूजयेच्च यथा-क्रमात् ॥ १९
दुग्धेन केरले पूजा काश्मीरे भावना मता ।
गौडे प्रत्यक्ष-दानं स्यात् त्रितयं कीर्त्तितं मया ॥ २०
जलाद् दश-गुणं देवि ! शीतलं जलमीरितम् ।
ततः शत-गुणं प्रोक्तं सौगन्धि जलमत्र तु ॥ २१
जलात् शत-गुणं प्रोक्तं दधि चात्र महेश्वरि !
ततः शत-गुणं दुग्धं ततः शत-गुणं घृतम् ॥ २२
घृताच्छत-गुणं तैलं तैलाच्छत-गुणं मधु ।
ततः शत-गुणा सम्वित् ततः शत-गुणं मधु ॥ २३
उत्तरोत्तरतो गौडे केरले संहृति-क्रमात् ।
शुद्ध-केरल-मार्गे तु जलेन पूजनं चरेत् ॥ २४

चैतन्य-केरले देवि ! शीतलेन जलेन च ।
ऋक्-केरले महेशानि ! सौगन्धि-जलतोऽर्चनम् ॥ २५
गुप्त-केरल-मार्गे तु दुग्धेन पूजनं चरेत् ।
उग्र-केरल-मार्गे तु नष्ट-दुग्धेन पूजनम् ॥ २६
पञ्चकं गदितं देवि ! शम्भुतो भैरवान्तकम् ।
पञ्चके त्रितयं देवि ! त्रितयं त्रितयं त्रिषु ॥ २७
शुद्ध-काश्मीर-मार्गे तु द्रव्यस्य भावना मता ।
ऋक्-काश्मीरे नख-जलमुग्राख्ये ह्यनुकल्पनम् ॥ २८
क्रूर-काश्मीर-मार्गे तु नष्ट-द्रव्यानुकल्पनम् ।
गुप्त-काश्मीर-मार्गे तु गुडार्द्रक-रसः स्मृतः ॥ २९
अथर्वाख्ये तु काश्मीरे ताम्र पात्रे मधु स्मृतम् ।
काश्मीरः कथितो देवि ! गौड-मार्गं शृणु प्रिये ॥ ३०
शुद्ध-गौडे महेशानि ! विजया दुग्धमीरितम् ।
ऋग्-गौडे तु महेशानि ! विजया मधु-संयुता ॥ ३१
यजुर्गौडे महेशानि ! तत्-पाको विनिवेद्यताम् ।
गुप्त-गौडे महेशानि ! तत्-कल्पः परि-कीर्त्तितः ॥ ३२
उग्र-गौडे महेशानि ! मदिरा-दानमीरितम् ।
देवतार्थं तु सम्प्रोक्तं नान्य-कर्मणि योजयेत् ॥ ३३
सर्वातिरिक्तो देवेशि ! विलासाख्यः प्रकीर्त्तितः ।
विलासाख्ये सम्प्रदाये स्वयमस्ति सदा-शिवः ॥ ३४
हार्द-बाह्य-प्रभेदेन द्विविधत्वं च पार्वति !
चातुर्वर्ण्यानुयोगेन योजनीयं प्रयत्नतः ॥ ३५
ब्राह्मणेन तथा कार्यं ब्राह्मण्यं न विनश्यति ।
ब्राह्मणो मदिरां दृष्ट्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ ३६
ब्राह्मणस्त्वनुकल्पं दत्वा चाण्डालतामियात् ।
मांस-भक्षी द्विजो यस्तु वेद-बाह्यो तथा स्मृतः ॥ ३७
तथैव वेद-बाह्यो हि स द्विजः परिकीर्त्तितः ।

श्रीदेव्युवाच—

अनुकल्पादिकं प्रोक्तं सन्देहोऽस्ति मम प्रभो ॥ ३८
पञ्चामृतादौ देवेश ! कथं दुग्धादि-कल्पना ?

श्रीशिव उवाच—

ताम्रे गव्यं मधु-समं दैवे पित्र्ये न दुष्यति ॥ ३९
अत एव महेशानि ! होमे ताम्रं प्रगृह्यते ।
पूजा-द्रव्यं तु सामान्याद् गौड-काश्मीरयोः शृणु ॥ ४०
घृतं दुग्धं च देवेशि ! नवनीतं च तक्रकम् ।
दधि-खण्डं नष्ट-दुग्धं मधु चैव मधूदकम् ॥ ४१
तैलं गुडार्द्रकं देवि ! मधु सम्वित् तथैव च ।
दुग्धं स-लवणं चैव दधि दुग्धं तथैव च ॥ ४२
सम्विद्-दुग्धं तस्य पाकः केवला विजया च वा ।
जाती-पत्रं तत्-फलं च म्लेच्छं दिव्यमथापि वा ॥ ४३
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे गव्यं महेश्वरि !
अहि-फेनं हि धूर्त्त-पुष्पं वनजं नखजं जलम् ॥ ४४
धूर्त्त-बीजं वत्स-नाभं तथैव शीतलं जलम् ।
मृत्यु-भीत्या वत्स-नाभं धूत्त-बीजं विवर्जयेत् ॥ ४५
त्रयोदश-विधा देवि ! मदिरा गौड-सम्मता ।
अरिष्टासव-सीध्वादि-भेदेन परमेश्वरि ॥ ४६
सम्विद्-दुग्धोऽहि-फेनं च जाती-कोष-लवङ्गकम् ।
चन्द्र-शीतल-नीरैश्च योगिनी-पानमुत्तमम् ॥ ४७
लवणार्द्रक-पिण्याकं गोधूमं मांस-पञ्चकम् ।
लशुनं गृञ्जनं देवि ! कलिङ्गं बिल्वकं तथा ॥ ४८
कपित्थं दग्ध-कूरं च तथैव दग्ध-पायसम् ।
पलाण्डु-गोस्तनीकादि दशकं वारुणी-भवम् ॥ ४९
अत्युग्र-विद्या-विषये द्रव्याण्येतानि साधकः ।
वीर-साधन-कार्ये तु देवि ! द्रव्याणि चार्पयेत् ॥ ५०

वेद-मूलाः क्रियाः सर्वा ब्राह्मणो वेद एव च ।
प्राणा वरं प्रगच्छन्तु ब्राह्मणो नार्पयेत् सुराम् ॥ ५१
ताम्रे मधु सुरा-तुल्यं घृतेन वर्जितं यदि ।
नारिकेलोदकं कांस्ये काञ्जिका कूर-सम्भवा ॥ ५२
हार्द-बाह्य-प्रभेदेन पूर्व-सिद्धि-समस्तकम् ।
द्वितीये भावना-मात्रं पूर्वं वै कथितं शिवे ॥ ५३
लता-जपे तथा पूजा-द्रव्य-दाने महेश्वरि !
केरले भावनां कृत्वा दृष्ट्वा चैव जपेत् सदा ॥ ५४
काश्मीरे वा लता-सङ्गः जप-पूजादिकं चरेत् ।
गौडे यथोक्त-विधिना जपं कुर्यान्महेश्वरि ॥ ५५
त्रितयं कथितं देवि ! रहस्यातिरहस्यकम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५६

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पूर्वं संसूचितं च यत् ।
तन्मे वद महा-देव ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ ५७

श्रीशिव उवाच—

रहस्यातिरहस्यं च कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
मेरुस्तु त्रि-विधः प्रोक्तः सामान्यत्वेन पार्वति ॥ ५८
न्यास-मेरुर्यन्त्र-मेरुरग्नि-मेरुस्तथैव च ।
प्रत्येकं त्रितयत्वेन त्रयाणां विद्धि पार्वति ॥ ५९
न्यास-मेरुर्यन्त्र-मेरुः प्रत्येकं द्वि-विधो मतः ।
बाह्याभ्यन्तर-भेदेन द्वि-विधत्वं प्रकीर्त्तितम् ॥ ६०
न्यास-मेरुस्त्रिधा देवि ! शृणु त्वं यत्नतः शिवे !
मेरु-प्रस्तार-विन्यासस्तथा कैलास-संज्ञकः ॥ ६१
भू-प्रस्तारस्तृतीयः स्याच्चान्तरत्वाच्चतुर्विधः ।
यन्त्र-मेरुस्तथा देवि ! षड्-विधः परि-कीर्त्तितः ॥ ६२
न्यासे तु बाह्य-न्यसनं मन्त्रस्तु भावना मता ।
यन्त्रे तु लेखनं बाह्ये मानसी भावना मता ॥ ६३

लय-मेरुर्योग-मेरुर्नाद-मेरुस्तृतीयकः ।
योग-वीणाख्य-मेरुस्तु तुरीयः प्रकीर्तितः ॥ ६४
कन्या-मेरुः पञ्चमः स्यात् पञ्चैते मेरवः स्मृताः ।
वह्नि-मेरुः पञ्चधा स्याद् बाह्याभ्यन्तरतो दश ॥ ६५
मन्त्र-मेरुर्वर्ण-मेरुर्द्वावेतौ तारिणी-मते ।
वर्ण-मेरौ तु कोष्ठानि शत-भेदेन सप्ततिः ॥ ६६
चतुः-शृङ्गाह्वये मेरौ वर्णाः सर्वे प्रतिष्ठिताः ।
अन्ये संसूचिता देवि ! तत्राग्नि-मेरवः शृणु ॥ ६७
वह्नि-मेरोर्लक्षणानि शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ।
चत्वारिंशत् तथाष्टौ च कुण्डानि कारयेत् प्रिये ॥ ६८
श्रीविद्या-भेद-युक्तानां मेरुः प्रोक्तस्त्वयं शिवे !
षोडश्युपासकानां तु शतं कुण्डानि चन्द्र-युक् ॥ ६९
चतुश्चरण-युक्तानामष्टोत्तर-शतं शिवे !
षट्-शाम्भव-प्रयुक्तानां कुण्डानि रश्मि-संख्यया ॥ ७०
मेधा-दीक्षादि-युक्तानां मेरुस्त्वभ्यन्तरो मतः ।
श्रीविद्योपास्ति-युक्तानां मेरुः संकथितो मया ॥ ७१
श्रीविद्या-रहितो यस्तु न मेरु-साधनं चरेत् ।
श्रीविद्या-रहितो यस्तु नाचार्यत्वं प्रगच्छति ॥ ७२
पूर्णाभिषेक-संयुक्तस्त्वाचार्यः कीर्तितो मया ।
ऊर्ध्वाम्नायादि-संयुक्तो द्वितीयः परि-कीर्त्तितः ॥ ७३
पूर्णाभिषेक-रहितस्त्वाचार्यत्वं करोति यः ।
तस्य नाशं करिष्यामि योगिनी-गण-भूषितः ॥ ७४
पूर्णाभिषेक-रहिते मेरु-संसाधनं नहि ।
प्रमादान्मोहतो दम्भात् तस्य पातो भविष्यति ॥ ७५
दुर्भिक्षं राष्ट्र-भङ्गं च पृथ्वी-कम्पादिकं शिवे !
जलाग्नि-वात-सम्भूता बाधा तद्-ग्रामगा भवेत् ॥ ७६
त्रि-वर्षैः पञ्च-वर्षैस्तु धूम-केतुर्भविष्यति ।
षष्ठि-नाडीमभिव्याप्य पलानि पञ्च-विंशतिः ॥ ७७

अहि-केतुस्ततो भूयादरि-केतुस्तदुत्तरम् ।
घट-केतुस्ततो देवि ! ततश्चैव ध्वजाभिधः ॥ ७८
वर्ष-मात्रेण देवेशि ! तत्-कुटुम्बं विनश्यति ।
वेद-बाह्यो यथा देवि ! द्विज-बाह्यस्तथा नरः ॥ ७९
कुटुम्बहा भवेत् सोऽपि प्रायश्चित्तेन शुद्धयति ।
तस्य संसर्ग-मात्रेण राज्यं नश्यति निश्चितम् ॥ ८०
दीक्षितो यस्तु कुरुते तस्य शोभां शृणु प्रिये !
अणिमाद्यष्टकं देवि ! वाक्-सिद्धिः काम-रूपता ॥ ८१
षष्टि-सिद्धीश्वरो भूत्वा शिव-तुल्यो नरो भवेत् ।
स देशो धन्यतां याति प्रसन्नाः सर्व-देवताः ॥ ८२
पञ्चाग्नौ द्वादशाग्नौ तु विशेषं शृणु शाम्भवि !
आदौ दृग्-दीक्षणं कार्यं ततो वाग्-दीक्षणं भवेत् ॥ ८३
स्पर्श-दीक्षा ततः प्रोक्ता ततो वर्ण-मयी भवेत् ।
ततः क्रिया-वती ज्ञेया ततः कलावती भवेत् ॥ ८४
आणवो तु ततो ज्ञेया ततः षड्-दर्शनी भवेत् ।
पञ्चायतन-दीक्षा स्यात् ततः श्रीपञ्च-पञ्चिका ॥ ८५
ततः पूर्णाभिषेकः स्यात् षडाम्नाय-क्रमेण च ।
एवं मेधान्त-संयुक्तः शिव एव न संशयः ॥ ८६
पञ्चायतन-पर्यन्तं द्वादशाग्न्याधिकारिता ।
गायत्र्युपासका ये च पञ्चायतन-दीक्षिताः ॥ ८७
तैः कार्यं साधनं देवि ! पञ्चाग्नि-सूर्य-संज्ञके ।
एकाग्निरपि नन्दाग्निर्धूम्र-पानं महेश्वरि ॥ ८८
जलाकाशाधि-वासो हि तैः कार्यः परमेश्वरि !
गायत्र्यामपि सङ्कार्यं तुर्याख्यायां महेश्वरि ॥ ८९
नान्यत्र कार्यं देवेशि ! मेरु-संसाधनं शिवे !
रहस्यातिरहस्यं च कथ्यते चान्यदेव हि ॥ ९०
न्यासे यन्त्रे काम-कला-रूप-संन्यसनं शिवे !
यथाग्नि-मेरौ देवेशि ! चांकुरारोपणं शिवे ॥ ९१

यथा काम-कला-ध्यानमंकुरारोपणं तथा ।
यथासनादि-संशुद्धिः तद्-वद्-वास्तु-प्रपूजनम् ॥ ९२
तत्-तत् कृत्वा महेशानि! चाधिकारी भवेद् ध्रुवम् ।
वास्तुं बिना यः कुरुते तस्य नाशो भविष्यति ॥ ९३

श्रीदेव्युवाच—

अथ वै सर्व-मेरूणां फलं किं वद शङ्कर !

श्रीशिव उवाच—

न्यास-मेरोः फलं देवि ! देह-सिद्ध्यादिकं शिवे ॥ ९४
यन्त्र-मेरोः फलं देवि ! त्रैलोक्य-विजयादिकम् ।
अग्नि-मेरोः फलं देवि! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ ९५
त्रैलोक्य-वश-कारित्वं लोक-सम्मोहनं शिवे !
अदृश्यत्वं निस्पृहत्वं सौख्यत्वं परमेश्वरि ॥ ९६
इन्द्रियाणां संयमनमग्नि-संसेवनाद् भवेत् ।
अग्नि-संसेवनाद् देवि ! दारिद्र्य-दहनं भवेत् ॥ ९७
वैराग्यत्वं वाक्-पटुत्वं चिर-जीवित्वमाप्नुयात् ।
यं यं कामयते कामं तत्तदाप्नोति निश्चितम् ॥ ९८
नाना-चमत्कार-करः सर्व-लोकेषु पूजितः ।
अग्नौ हुतं च दत्तं च तात्कालिक-फल-प्रदम् ॥ ९९
सदा चाग्निः सेवनीयः पुरश्चर्या-युतैर्नरैः ।
पुरश्चर्या-विहीनस्य नेदं साधनमीरितम् ॥ १००
न्यसने सात्विको मेरुर्यन्त्रे तु राजसो भवेत् ।
तामसस्तु महा-मेरुर्वह्नि-संसेवनाद् भवेत् ॥ १०१
सात्विकेन विलम्बेन फलं भवति पार्वति !
राजसे तु फलं माये! किञ्चित् कालेन जायते ॥ १०२
तात्कालिक-फलं देवि ! तामसे सर्वदा भवेत् ।
अधिकारादिकं दीक्षा तथा संज्ञादिकं शिवे ॥ १०३
फलादिकं तथा प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ?

• • •

दशमः पटलः

मेरु-कथनम्

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पूर्वोक्तं च रहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मेरु-प्रस्तार-निर्णयम् ॥ १
कथ्यते परमेशानि ! मूलमारभ्य पार्वति !
एकाग्निं तु समारभ्य श्रीमेधान्तं महेश्वरि ॥ २
प्रस्तारः कथ्यते देवि ! पारम्पर्य-क्रमेण च ।
एकाग्नि-साधनं चादौ सूर्य-संज्ञाभिधः स तु ॥ ३
पञ्चाग्निश्च ततो देवि! चतुः-कुण्डानि कारयेत् ।
पञ्चमः सूर्य-संज्ञः स्यान्नन्दाग्निं शृणु यत्नतः ॥ ४
अष्टौ कुण्डान्यष्ट-दिक्षु नवमः सूर्य-संज्ञकः ।
द्वादशाग्निस्ततो देवि ! कुण्डान्येकादश क्रमात् ॥ ५
द्वादशाग्निः सूर्य-संज्ञस्तत्-क्रमं शृणु पार्वति !
दक्षिणे वेद-कुण्डानि प्रत्यक्-प्राग्-वह्नि-युग्मतः ॥ ६
उत्तरस्यामेक-कुण्डं प्राक्-प्रत्यग्-व्यत्यये तथा ।
मेरु-कुण्डानि देवेशि ! भेद-द्वय-क्रमेण च ॥ ७
चत्वारिंशत् तथाष्टौ च तेषां न्यसनमुच्यते ।
षट्-कोणमादौ कृत्वा चाष्ट-कोणं ततश्चरेत् ॥ ८
दशारं द्वादशारं च भुवनार-क्रमेण तु ।
वस्वार-युग्मं षट्-कोणं दशारं वसु-युग्मकम् ॥ ९
वसु-मेरुर्निगदितो मध्यमं शृणु पार्वति !
आदौ विन्दुर्महेशानि ! चत्वर-द्वितयं ततः ॥ १०
तृतीय-चत्वरे देवि ! चतुः-कुण्डानि कारयेत् ।
चतुर्थ-चत्वरे देवि ! वसु-कुण्डानि कारयेत् ॥ ११

बाणाख्य-चत्वरे देवि ! कला-कुण्डानि कारयेत् ।
अथ षष्ठ-चत्वरे तु कुण्डानां विंशतिश्चरेत् ॥ १२
सप्तम-चत्वरे देवि ! चतुर्विंशति कारयेत् ।
अष्टम-चत्वरे देवि ! चाष्ट-विंशति कारयेत् ॥ १३
सप्त-कुण्डानि देवेशि ! सूर्यस्त्वेकोत्तरो मतः ।
एकोत्तर-क्रमे देवि ! महा-काल-मतं शृणु ॥ १४
आदौ विन्दुं प्रविन्यस्य द्वितीये कुण्ड-युग्मकम् ।
तृतीये वेद-संख्यानि चतुर्थे ऋतु-संख्यकम् ॥ १५
पञ्चमे वसु-संख्यानि षष्ठे तु द्वादशैव तु ।
प्राक् प्रत्यक् च प्रकुर्वीत दक्ष-वामे तु वेदकम् ॥ १६
दक्ष-वामेऽथवा देवि ! वसु-कुण्डानि कारयेत् ।
प्राग्-यामलं तथा प्रत्यक् कारयेत् परमेश्वरि ॥ १७
गिरि-संख्या-चत्वरे तु कुण्ड-विंशतिकं चरेत् ।
अष्टमे चत्वरे देवि ! कुण्ड-द्वाविंशतिं चरेत् ॥ १८
प्राच्यां तु गिरि-संख्यानि तत्-साम्मुख्ये तु सप्त वै ।
दक्षे तु वेद-संख्यानि तत्-साम्मुख्ये तु दक्ष-वत् ॥ १९
दक्ष-वामे च देवेशि ! गिरि-संख्यानि कारयेत् ।
तदा प्राच्यां प्रतीच्यां च वेद-संख्यानि कारयेत् ॥ २०
एवं मिलित्वा देवेशि! कुण्डानि दिग्-युग-द्वि-युक्।
नवमे चत्वरे देवि ! षड्-विंशतिः प्रकल्पयेत् ॥ २१
प्राच्यां तु वसु-संख्यानि प्रतीच्यां वसु-संख्यकम् ।
दक्षिणे बाण-संख्यानि तूत्तरे दक्ष-वद् भवेत् ॥ २२
दक्षोत्तरेऽथवा देवि ! वसु-संख्यानि कारयेत् ।
दक्षे तु वसु-संख्यानि वसु-संख्यानि वामके ॥ २३
प्राच्यां तु बाण-संख्यानि तत्-साम्मुख्ये तु पूर्व-वत् ।
एवं मिलित्वा जानीहि शत-कुण्डानि पार्वति ॥ २४

एकोत्तराख्यः सूर्यो हि किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ?
कैलासाख्य-क्रमेणायं मेरुः संकथितो मया ॥ २५
शृङ्खलाख्य-क्रमेणात्र कुण्डानि परि-कल्पयेत् ।
शुद्ध-कुण्डं शक्ति-कुण्डं शिव-शक्त्यात्मकं तथा ॥ २६
नव-कुण्डी-विधानेन कुण्डानि परि-कल्पयेत् ।
निर्वाण-दीक्षिते देवि ! त्वष्टोत्तर-शतैर्भवेत् ॥ २७
प्रथम-चत्वरे देवि ! श्री-विन्दुं पातयेत् प्रिये !
द्वितीय-चत्वरे देवि ! कुण्ड-त्रितयमाचरेत् ॥ २८
तृतीय-चत्वरे देवि ! वेद-कुण्डानि कारयेत् ।
चतुर्थ-चत्वरे देवि ! वसु-कुण्डानि कारयेत् ॥ २९
बाणाख्य-चत्वरे देवि ! कला-संख्यानि कारयेत् ।
ऋत्वाख्य-चत्वरे देवि ! कुण्ड-विंशतिकं चरेत् ॥ ३०
ऋष्याख्य-चत्वरे देवि ! तत्व-संख्यानि कारयेत् ।
वस्वाख्य-चत्वरे देवि ! द्वा-त्रिंशत्-कुण्ड-संहतिः ॥ ३१
शतं सप्त च कुण्डानि त्वष्टमः सूर्य ईरितः ।
अक्षोभ्यस्य मतं देवि ! शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ॥ ३२
विन्दु-स्थानं भवेदादौ द्वितीये चत्वरे चरेत् ।
तृतीय-चत्वरे देवि ! वेद-कुण्डानि कारयेत् ॥ ३३
चतुर्थ-चत्वरे देवि ! वसु-संख्यानि कारयेत् ।
रत्नाख्य-चत्वरे देवि ! कला-कुण्डानि कारयेत् ॥ ३४
अथ षष्ठ-चत्वरे तु कुण्ड-विंशतिकं चरेत् ।
सप्तम-चत्वरे देवि ! मर्म-संख्यानि कारयेत् ॥ ३५
अथाष्टमे चत्वरे च द्वा-त्रिंशत्-कुण्ड-संहतिः ।
अथ नीला-मते देवि ! नव-चत्वर-भेदतः ॥ ३६
तत्रादि-चत्वरे देवि ! विन्दु-स्थानं प्रकीर्त्तितम् ।
द्वितीय-चत्वरे देवि ! चन्द्र-संख्यानि कारयेत् ॥ ३७

तृतीय-चत्वरे देवि ! वह्नि-संख्यानि कारयेत् ।
चतुर्थ-चत्वरे देवि ! वेद-संख्यानि कारयेत् ॥ ३८
भूताख्य-चत्वरे देवि ! वसु-संख्यानि कारयेत् ।
रसाख्य-चत्वरे देवि ! कला-संख्यानि कारयेत् ॥ ३९
ऋष्याख्य-चत्वरे देवि ! कुण्डानां विंशतिश्चरेत् ।
अष्टम-चत्वरे देवि ! तत्त्व-संख्यानि कारयेत् ॥ ४०
नवम-चत्वरे देवि ! द्वा-त्रिंशत्-कुण्ड-संहतिः ।
तृतीय-मेरुं वक्ष्यामि नवोत्तर-क्रमे शिवे ॥ ४१
प्रथम-चत्वरे देवि ! विन्दु-स्थानं प्रकीर्त्तितम् ।
द्वितीय-चत्वरे देवि ! पूर्व-वज्रेत्र-संख्यकम् ॥ ४२
तृतीय चत्वरे देवि ! वेद-संख्यानि कारयेत् ।
चतुर्थ-चत्वरे देवि ! रस-संख्यानि कारयेत् ॥ ४३
पञ्चम-चत्वरे देवि ! वसु-संख्यानि कारयेत् ।
षष्ठे देवि ! कलाख्यानि दिग्-युगं सप्तमे भवेत् ॥ ४४
अष्टमे तत्त्व-संख्यानि मर्म-संख्या तु रन्ध्रके ।
नवोत्तर-क्रमेणैव मेरूणां त्रितयं शिवे ॥ ४५
त्रयाणामधिकारोऽस्ति कलौ तु यस्य कस्यचित् ।
अधिकार-विहीनस्य नेदं साधनमीरितम् ॥ ४६
इति संक्षेपतः प्रोक्तं करालाख्य-मतं शृणु !
अष्टोत्तर-शताख्यं तु मेरुं संशृणु पार्वति ॥ ४७
आदौ विन्दुं विधायाथ ततः कुण्ड-त्रयं चरेत् ।
तृतीय-चत्वरे देवि ! कला-संख्यानि कारयेत् ॥ ४८
चतुर्थ-चत्वरे देवि ! ऋतु-संख्यानि कारयेत् ।
बाणाख्य-चत्वरे देवि ! वसु-संख्यानि कारयेत् ॥ ४९
ऋत्वाख्य-चत्वरे देवि ! कला-संख्यानि कारयेत् ।
गिरि-संख्या-चत्वरे तु विंशत्-संख्यां तु कारयेत् ॥ ५०

रन्ध्राख्य-चत्वरे देवि ! षड्-विंशानि प्रकल्पयेत् ।
चतुर्विंशति-कुण्डानि पूर्व-वत् कारयेत् प्रिये ॥ ५१
कुण्ड-युग्मं प्रकुर्वीत दक्षिणोत्तरतः शिवे !
प्राक् प्रत्यक् वा प्रकर्त्तव्यं कुण्ड-युग्मं महेश्वरि ॥ ५२
अष्टमः सूर्य-संज्ञः स्यादेवमष्टोत्तरं शतम् ।
रत्न-गर्भ-क्रमेणैव मेरुं शृणु महेश्वरि ॥ ५३
आदौ विन्दुं प्रविन्यस्य द्वितीये कुण्ड-युग्मकम् ।
पृष्ठाग्रतः पार्श्वतो वा कुण्ड-युग्मं प्रविन्यसेत् ॥ ५४
कुण्ड-त्रयं तृतीये तु योनि-वत् विन्यसेच्छिवे !
चतुर्थ-चत्वरे देवि ! ऋतु-संख्यानि कारयेत् ॥ ५५
बाणाख्य-चत्वरे देवि ! वसु-कुण्डानि कारयेत् ।
रसाख्य-चत्वरे देवि ! कला-कुण्डानि कारयेत् ॥ ५६
मुनि-संख्या-चत्वरे तु कुण्ड-विंशतिकं चरेत् ।
वसु-संख्या-चत्वरे तु कुण्ड-विंशतिं कारयेत् ॥ ५७
रन्ध्राख्य-चत्वरे देवि ! मर्म-संख्यानि कारयेत् ।
शतं सप्त तु कुण्डानि जातानि परमेश्वरि ॥ ५८
अष्टमः सूर्य इत्युक्तस्त्वेवमष्टोत्तरं शतम् ।
चत्वराणां पताकानां तथा षट्-शाम्भवस्य च ॥ ५९
तोरणानां लक्षणं तु कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
क्रमात् क्रमादुन्नतोऽपि द्वि-द्वि-क्रम-प्रभेदतः ॥ ६०
त्रि-त्रि-क्रमादुन्नतः स्याद् वितस्ति-क्रम-भेदतः ।
उच्छ्रायो हस्त-मात्रं स्यात् त्रिगुणा एव हि प्रिये ॥ ६१
आयामः परमेशानि ! चतुर्विंश-वितस्ति-युक् ।
वंशः प्रोक्तो महेशानि ! क्रमान्मण्डप-वर्धनम् ॥ ६२
पताकानां चतुः-षष्टिस्तत्त्व-संख्यानि वा प्रिये !
पनसाश्वत्थ-चूतेन करवीरैश्च केतकैः ॥ ६३

नाना-चित्र-विचित्रैश्च तोरणानि प्रकल्पयेत् ।
जम्बु-दाडिम-बिल्वाद्यैर्बीज-पूरैस्तथाम्बरैः ॥ ६४
नव-वर्ण-मयैर्द्रव्यैश्चत्वराणां विभूषणम् ।
वाम-क्रमेण देवेशि ! दक्ष-मार्ग-क्रमेण च ॥ ६५
विन्दु-सर्गान्वितं कृत्वा सृष्टि-संहारतोऽपि वा ।
अष्ट-वर्ग-क्रमेणैव अष्टोत्तर-कला-क्रमात् ॥ ६६
पूजयेत् तत्र देवेशि ! स्वस्ति-वाचन-संयुतः ।
महा-विद्या-मण्डलं च विद्या-मण्डलमेव च ॥ ६७
चतुर्द्वीप-क्रमेणैव चतुर्वेद-क्रमेण च ।
चतुर्द्वारं तु सम्पूज्य बहिः प्राकार-चिन्तनम् ॥ ६८
महा-श्मशानं सञ्चिन्त्य तत्र देवीं विचिन्तयेत् ।
एवं यः कुरुते देवि ! होम-द्रव्यं च देव-वत् ॥ ६९
यत् प्राप्तं ऋतु-भेदेन काल-भेदेन पार्वति !
पुष्पं फलानि धान्यानि यत्-किञ्चिज्जगती-गतम् ॥ ७०
तत् तत्र होमयेद् देवि ! सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ।
आचार्यं तोषयेद् यत्नाद् गुरुं यत्नेन पूजयेत् ॥ ७१
ब्राह्मणान् पूजयेत् पश्चात् स्वर्ण-रत्नाम्बरादिभिः ।
अष्टाष्टकं चरेत् तत्र सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ७२
दुन्दुभीनां द्वादशं तु द्वारि कोणे प्रवादयेत् ।
नाना-वादित्र-घोषाद्यैश्चतुर्विंशति-वाद्यतः ॥ ७३
गन्धर्व-नील-वेषं वा कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।
षट्-पारायणमासाद्य सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ७४
ब्रह्माण्ड-गोलके याश्च याः काश्चिज्जगती-तले ।
समस्ताः सिद्धयो देवि ! तस्य पाद-गता भवेत् ॥ ७५
रहस्यादि-रहस्यं च गोपनीयं स्व-योनि-वत् ।
स-पताका-दुन्दुभिर्वा गले धारण-योगतः ॥ ७६
शक्र-कर्त्ता भवेत् सोऽपि धनदः किङ्करो गृहे ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ७७

एकादशः पटलः

षट्-शाम्भव-मेरु-विधौ सिद्ध-मत-रहस्यम्

श्रीदेव्युवाच—

वेवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यं कथ्यते देवि ! शृणु सावहिता भव ॥ १

दलाकाराणि सर्वाणि कुण्डानि कारयेत् प्रिये !
किंवा श्रीचक्र-वत् कार्यं तत् क्रमं शृणु पार्वति ॥ २
चत्वारा नव वै कार्याः प्रथमे विन्दु-सङ्क्रमः ।
तत्र त्रिकोणं कर्तव्यमष्टारं तदनन्तरम् ॥ ३
ततो दशारं देवेशि ! द्वितीयं च दशारकम् ।
मन्वस्रं च ततः कार्यं ततो नाग-दलं शिवे ॥ ४
षोडशाख्य-दलं देवि ! ततो वृत्त-त्रयं लिखेत् ।
चतुर्द्वारोप-शोभाढ्यं श्रीचक्रं मेरु-रूपकम् ॥ ५
क्रमात् क्रमादुन्नतं तु कृत्वा विरचयेत् सुधीः ।
तत्रोपरि महेशानि ! मण्डपं रचयेत् ततः ॥ ६
नव कुण्डानि जायन्ते तत्रैव क्रमशः शिवे !
तत्राग्निं चैव प्रज्वाल्य सुन्दरी-ध्यान-पूर्वकम् ॥ ७
तदायुध-विभूषाढ्यं मेरुं श्रीसर्वतोमुखम् ।
महा-मेरुरयं देवि ! दलाकारं तु कारयेत् ॥ ८
निःसप्तसु दलाकारं कीर्त्तितं परमेश्वरि !
एवं करोति यो देवि ! सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ९
सप्त-त्रिंशच्चत्वरान् हि क्रमात् क्रम-गतं चरेत् ।
सृष्टि-संहार-मार्गेण काल-चक्रं द्विधा भवेत् ॥ १०

सृष्टि-संहार-मार्गेण मुख्य-शाम्भव-योगतः ।
चतुर्विधो निगदितः काल-चक्रं समाचरेत् ॥ ११
तत्रोपरि महेशानि ! श्रीविद्या-चक्रमुत्तमम् ।
परा-चक्रं ततो देवि ! ततः षट्-शाम्भवाभिधम् ॥ १२
चतुर्विधं यद्-गदितं सम्वर्तेश-क्रमे शृणु ।
चत्वरं पुरुषाकारं कला-बाहु-मितं शिवे ॥ १३
उत्तरोत्तरतोच्चत्वं किं वा पुरुष-संहतिः ।
षट्-पञ्चाशद् भवेदादौ नव-कुण्ड-क्रमेण च ॥ १४
द्वितीये तु द्वि-पञ्चाशत् द्वि-षष्टिस्तु तृतीयके ।
पञ्चाशद् वेद-प्रमिता चतुर्थे परमेश्वरि ॥ १५
द्वि-सप्ततिः पञ्चमे तु चतुःषष्टिस्तु षट्-क्रमे ।
शिरो-बिन्दुर्महेशानि ! सम्वर्तेशं प्रपूजयेत् ॥ १६
अथवान्य-प्रकारेण क्रममन्यं शृणु प्रिये !
सूर्य-संख्या-चत्वराणि कृत्वा यत्नेन पार्वति ॥ १७
तत्र कुण्डानि देवेशि ! रचयेत् क्रमतः शिवे !
आदौ विन्दुर्महेशानि ! द्वितीये वह्नि-कुण्डकम् ॥ १८
तृतीय-चत्वरे देवि ! रस-संख्यानि कारयेत् ।
चतुर्थे वसु-संख्यानि कला-संख्यानि पञ्चमे ॥ १९
षष्ठे द्वा-विंशति शिवे! त्रिंशत् कुण्डानि सप्तमे ।
चतुस्त्रिंशति देवेशि ! वसु-संख्याभिधे भवेत् ॥ २०
अष्ट-त्रिंशद्-रन्ध्र-संख्ये द्वि-चत्वारिंशच्च दिक्-क्रमे ।
चत्वारिंशत् तथाष्टौ च रुद्र-संख्याभिधे भवेत् ॥ २१
द्वादशे पञ्च-पञ्चाशत् काम-संख्याभिधं शृणु ।
पञ्चाशद्-वसु-संख्यानि यथा-योगेन कारयेत् ॥ २२
शाम्भवाख्यो महा-मेरुर्महा-साम्राज्य-दायकः ।
तस्य विज्ञान-मात्रेण त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ॥ २३

इति संक्षेपतः प्रोक्तं रहस्याति-रहस्यकम् ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ॥ २४
स ज्ञानी स च विज्ञानी सर्व-देव-रहस्य-वित् ।
तारिण्यास्तु चतुः-षोढा काल्यास्तु पञ्च-षोढिका ॥ २५
सुन्दर्याः पञ्च-षोढा च विन्यस्तव्या प्रयत्नतः ।
शक्ति-न्यासे भवेदेकश्चक्र-न्यासेषु भिन्नता ॥ २६
सर्वमेकं महेशानि ! शक्ति-सङ्गम-तन्त्रके ।
पूर्णाभिषेकमारभ्य दिव्य-साम्राज्यतः शिवे ॥ २७
योगोऽयं गदितो देवि ! रहस्याति-रहस्य-कृत् ।
अहो धन्य-वतां धन्यो दिव्य-साम्राज्य-विन्नरः ॥ २८
पूर्णाभिषेक-संयुक्तो न प्रणामं समाचरेत् ।
सर्वदा ध्यान-सम्पन्नः सदा पूजन-तत्परः ॥ २९
तत्त्व-चिन्ता-परो भूत्वा देव-रूपो नरो भवेत् ।
आस्तिक्यं मनसः स्थैर्यं दातृत्वं च दयालुता ॥ ३०
गुरु-भक्तिर्देव-भक्तिर्भक्त-भक्ति-परो भवेत् ।
परापवादं तद्-द्रोहं पर-निन्दां विवर्जयेत् ॥ ३१
स्त्रीषु निन्दां प्रहारं च सर्वथा परिवर्जयेत् ।
पर-द्रव्यं पर-स्त्रीं च परान्नं सर्वथा त्यजेत् ॥ ३२
पर-शक्तिं वर्जयेच्च पर-हस्तं विवर्जयेत् ।
एकान्ते निवसेन्नित्यं पर्वते च विशेषतः ॥ ३३
योषिद्-रूपं स्मरेत् सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सदानन्द-परो भूत्वा देव्यानन्द-परायणः ॥ ३४
सिन्दूर-तिलकी स्वच्छः स्वेच्छाचारी जितेन्द्रियः ।
क्रोधं लोभं मदं दम्भं मात्सर्यं चञ्चलत्वताम् ॥ ३५
वार्त्तालापं वर्जयेच्च बहु-वार्तां विशेषतः ।
आसनस्य जयं देवि ! तथा निद्रा-जयं शिवे ॥ ३६

इन्द्रियाणां जयं देवि ! सर्वथा कारयेद् बुधः ।
आहारस्य जयं देवि ! खेचरी-मुद्रिकां भजेत् ॥ ३७
यत्र कुत्र वसेन्नित्यं यत्र कुत्र स्मरेच्छिवाम् ।
पूजयेद् विपिने घोरे कामिनी-मण्डले शिवे ॥ ३८
वेश्या-मण्डलगो भूत्वा सर्वदा चिन्तयेच्छिवाम् ।
मित-वाक्यो मिताहारो मित-ग्रासो महोत्तमः ॥ ३९
तेजो-रूपं तु सम्भाव्य जगदेतच्चराचरम् ।
विभाव्य प्रजपेन्नित्यं मायां यत्नेन सन्त्यजेत् ॥ ४०
कोऽहं कस्य किमात्मत्वं किं-रूपोऽहं कथं स्थितिः ।
कुत्रोत्पन्नः कथं जातः किं रूपः किं ममास्ति च ॥ ४१
किमाज्ञप्तमिति ध्यात्वा सर्वं तु तृण-वत् त्यजेत् ।
अहं तारा भवाम्यद्य तारा-रूपोऽहमेव सा ॥ ४२
तत्-कृतं कारितं यद्-यत् सूचितं स्मारितं च यत् ।
प्रेरितं दर्शितं यद्-यद् दापितं दीयते च यत् ॥ ४३
तया तत् क्रियते सर्वं नान्यः कर्त्ताऽस्ति भू-तले ।
पूर्णाभिषेक-संयुक्तो यस्मिन् देशे विराजते ॥ ४४
स देशो धन्यतां याति समन्ताल्लक्ष-योजनम् ।
पूर्णाभिषेक-हीनानां दीक्षा नहि फल-प्रदा ॥ ४५
सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
शीतोष्ण-समतां कृत्वा सदा तद्-गत-मानसः ॥ ४६
देवतायां लयं कृत्वा देव-रूपो नरो भवेत् ।
पूर्णाभिषेक-हीनानां दीक्षा पूजा च निष्फला ॥ ४७
आशीर्ग्राह्या महेशानि ! पूर्ण-दीक्षा-युतस्य च ।
तन्नतिर्नैव संग्राह्या तत्-तोषं च समाचरेत् ॥ ४८
तस्य तोषण-मात्रेण सन्तुष्टाः सर्व-देवताः ।
सर्व-मन्त्राधिकारो हि तस्य हस्ते व्यवस्थितः ॥ ४९

महा-विद्या-स्वरूपो हि स एव परि-कीर्त्तितः ।
नीला वक्त्रे वसेत् तस्य काली हस्त-गता भवेत् ॥ ५०
सुन्दरी गेहगा तस्य कमला नेत्र-गोचरा ।
बगला तस्य क्रोधे तु बालाम्बा हृदये स्थिता ॥ ५१
एवमन्या महा-विद्या सिद्ध-विद्याश्च पार्वति !
सर्वास्तद्धस्त-गा देवि ! नात्र कार्या विचारणा ॥ ५२
पूर्णाभिषेक-युक्तस्य न कोपं कारयेत् शिवे !
तस्य कोपेन देवेशि ! जगदेतद् विनश्यति ॥ ५३
तस्य तोषण-मात्रेण त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत् ।
पञ्च-वर्ष-भवो बालः पूर्ण-दीक्षा-समन्वितः ॥ ५४
सर्व-ज्येष्ठो महेशानि ! न ज्येष्ठो वयसाधिकः ।
अपि चण्डाल-जातिस्तु पूर्ण-दीक्षा-समन्वितः ॥ ५५
ब्राह्मणादपि स ज्येष्ठो दीक्षा-मार्गाख्य-कर्मणि ।
न वयस्त्वे न जातित्वे न विद्यात्वे महेश्वरि ॥ ५६
पण्डितत्वे न देवेशि ! राज्यत्वे नापि पार्वति !
तस्यापमानो देवेशि ! न कर्तव्यः कदाचन ॥ ५७
प्रमादात् कुरुते यस्तु तस्य पातो भविष्यति ।
अज्ञानात् मोहतो दम्भात् गर्वादपि महेश्वरि ॥ ५८
सदा तं पूजयेद् यत्नान्नान्यथा तारिणी-वचः ।
तस्य नाशं करिष्यामि ताराहं भैरवेण च ॥ ५९
पूर्णाभिषेक-युक्तस्य स्थापनं देव-वच्चरेत् ।
यथा देवालये देवः सदा वसति पार्वति ॥ ६०
तथा पूर्णा-युते देवि ! विद्या तिष्ठति सर्वदा ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ॥ ६१
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ?

• • •

द्वादशः पटलः

सिद्ध-प्रयोगः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ।
पूर्वं संसूचितं यन्मे तन्मे कथय शङ्कर ॥ १

श्रीशिव उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च तारा-योग-रहस्यकम् ।
कथ्यते देव-देवेशि शृणु ! सावहिता भव ॥ २

तारा-योगो योग एव तथा तारा-जपो जपः ।
तारा-मन्त्रो महा-मन्त्रः सर्व-मन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ ३

स धन्यः स च विज्ञानी स व्रती स च दीक्षितः ।
स चात्मा स महा-देवः सर्व-देवाधिकः प्रभुः ॥ ४

परमात्मा स एवात्र सर्व-देव-नमस्कृतः ।
स दर्शनी स विज्ञानी ब्रह्मानन्द-परायणः ॥ ५

तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोपमः ।
तारा-जापी पूर्ण-दीक्षा-संयुक्तस्तारिणी स्वयम् ॥ ६

सर्वेश्वरः सर्वगश्च सर्व-मन्त्र-परायणः ।
सर्व-तन्त्रार्थ-वेत्ता च सर्व-तन्त्र-परायणः ॥ ७

पञ्च-पारायणासक्तः पञ्च-रत्न-प्रजापकः ।
यं कञ्चिन्मन्त्रमालोक्य जपेद् दीक्षा-युक्तो यदि ॥ ८

ततः सिद्धिर्विजानीयात् नात्र कार्या विचारणा ।
पुस्तके लिखिता मन्त्रा जपे जापे न सिद्धिदाः ॥ ९

तस्य दर्शन-मात्रेण मन्त्र-क्षोभ-विनाशनम् ।
मूको जडोऽपि देवेशि ! पूर्ण-दीक्षा-युतस्य च ॥ १०

जलं वस्त्रं स्पृशेद् यो हि महा-कवि-वरो भवेत् ।
सिद्ध-मन्त्रं पुरस्कृत्य तारायाः परमेश्वरि ॥ ११
घटे हस्तं यदा दद्यात् तदा घट-सरस्वती ।
सर्वं वदति देवेशि ! प्रहर-द्वयमेव च ॥ १२
एतद् योग-फलं प्रोक्तं तव प्रीत्या महेश्वरि !
इतोऽपि वाच्यो किं देवि! किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥१३

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पूर्वोक्तं यद् रहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यातिं-रहस्यं च तव प्रीत्या निगद्यते ॥ १४
महापदि महा-घोरे प्राप्ते प्राणस्य सङ्कटे ।
राज्य-हानौ द्रव्य-नाशे सुत-नाशे समागते ॥ १५
महा-मारी-भये प्राप्ते राष्ट्र-भङ्गे महेश्वरि !
राज्य-रक्षण-योगं च पर-राज्य-विनाशकम् ॥ १६
महा-प्रीति-करं योगं षट्-कर्म-साधनं परम् ।
तत् कथ्यते महेशानि ! शृणु सावहिता भव ॥ १७
आदौ पञ्चाक्षरीं तारां कुल्लुका-सहितां जपेत् ।
अधिष्ठात्री चण्ड-घण्टा कूर्च-बीजाह्वया परा ॥ १८
काल्याः शक्तिः सैव शिवे! तारा-बीजं तदेव तु ।
तारा-प्रणव-नामाख्या तदेव परि-कीर्त्तितम् ॥ १९
छिन्ना चैकाक्षरी-मन्त्रः स एव परि-कीर्त्तितः ।
एकस्मिन् त्रितये देवि ! महा-क्रोधाभिधं ततः ॥ २०
चतुर्विद्या-रूप-धरं कूर्च-बीजाह्वयं शिवे !
चण्ड-घण्टेति विख्याता कूर्च-बीजाह्वया भवेत् ॥ २१
केवलं यस्य जापेन त्रिशक्ति-जप-भाग् भवेत् ।
कूर्च-बीजं परं शक्तिरन्त्यं कीलकमुच्यते ॥ २२

यथा प्रीत्या महेशानि ! त्रिशक्तिर्देवता मता ।
काली-बीजं तथा तारा छिन्ना चैकाक्षरी तथा ॥ २३
त्र्यक्षरी परमा विद्या त्रैलोक्य-विजयाभिधा ।
तारा काली तथा छिन्ना तारा छिन्ना च कालिका ॥ २४
काली छिन्ना तथा तारा छिन्ना काली च तारिणी ।
छिन्ना तारा कालिका च षट्-भेदा विजया कला ॥ २५
मन्त्र-श्रवण-सन्तुष्टा त्रैलोक्य-राज्य-दायिनी ।
देवता तारिणी पूर्वा प्रति-देवी तु घण्टिका ॥ २६
अधि-देवी तु विजया त्र्यक्षरी परमा कला ।
यद्-बीजमादौ देवेशि ! तदेवायुध-भूषणे ॥ २७
मध्य-बीजं स्वरूपं स्यादन्त्य-बीजं च वाहनम् ।
नवाक्षरी परा विद्या वेदार्णा वा महेश्वरि ॥ २८
त्रिंशदर्णा महा-तारा त्रि-शक्तेर्मुखमीरितम् ।
त्रैलोक्य-विजया विद्या स्मृत-मात्र-वर-प्रदा ॥ २९
त्रैलोक्य-विजयास्त्राख्यं तदेव परि-कीर्त्तितम् ।
यद्-बीजमादौ देवेशि ! तदेव यन्त्रमीरितम् ॥ ३०
अथवा यत्र भक्तिः स्यात् तत्-पीठे पूजनं शिवे !
एतत्-प्रयोगे देवेशि ! छिन्ना-बाणः प्रकीर्त्तितः ॥ ३१
संहारास्त्रं महेशानि ! बाणाग्रं परि-कीर्त्तितम् ।
सैव चार्द्र-पटी विद्या शुष्क-वस्त्रा तु जीवहा ॥ ३२
शुभाशुभ-प्रवक्त्रा तु श्री-वार्त्ता-कथनी भवेत् ।
त्रैलोक्य-वार्त्ता-कथनी महा-पद्मावती कला ॥ ३३
ऊन-विंशाक्षरी विद्या त्रैलोक्य-ज्ञान-गोचरा ।
किञ्चिज्जपेन्मूल-विद्यां तदान्यां प्रजपेत् शिवे ॥ ३४
सर्वासां तु महेशानि ! जप-पूजादिकं बलिम् ।
अनुलेपन-गन्धं च दद्याद् यत्नेन पार्वति ॥ ३५

त्रि-मासाभ्यास-योगेन उदयास्त-मितं जपेत् ।
चल-स्थिरासनत्वेन यज्जातं तन्निवेदयेत् ॥ ३६

एतत्-प्रयोग-योगेन किं तद् यन्न करे स्थितम् ।
साम्राज्य-मुद्रिका-योगात् किन्न सिद्धयति भू-तले ॥ ३७

काली तारा-मयी प्रोक्ता बटुकस्य स्वरूपिणी ।
प्रणवं च तथा माया सम्बद्ध-दान-युग्मकम् ॥ ३८

कुरु-युग्मं बोज-युग्मं स्वाहान्ता चैक-विंशतिः ।
एतस्य धारिणी देवी पताका-स्थान-गोचरा ॥ ३९

पताकायां लिखेद् यन्त्रं बटुकं मध्य-कोष्ठके ।
बटुकं बाल-वेषं च नाग-यज्ञोपवीतिनम् ॥ ४०

कपाल-शूल-भूषाढ्यं स्व-यूथैः परि-वेष्टितम् ।
कुक्कुरैर्नव-वर्णैश्च वेष्टितं ब्रह्म-रूपिणम् ॥ ४१

द्वादशार-स्थितं देवं प्रत्यक्ष-फलदं कलौ ।
प्रेतासन-समासीनं त्रैलोक्य-जयदं विभुम् ॥ ४२

एतत् पताकां सन्धार्य त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ।
महा-राज्य-पदं जित्वा त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ॥ ४३

पञ्चाङ्गाख्य-पुरश्चर्या-क्रमेण तु विशेषतः ।
कृष्ण-सारं च हरिणं जाति-मात्रं परि-त्यजेत् ॥ ४४

कुञ्जरं च हयं नारं प्रीत्यर्थं तारिणी-मनोः ।
बलि-दानं प्रकुर्वीत यदेव पच्यते शिवे ॥ ४५

महिषत्वेन कूष्माण्डं छागत्वेन तु कर्कटी ।
बोजपूरं नरत्वेन रम्भा-पुष्पं हयः स्मृतः ॥ ४६

मूलकं मत्स्य-भेदेन यथा-योगेन कारयेत् ।
सात्विकं राजसं देवि ! तामसं तु तृतीयकम् ॥ ४७
त्रि-विधं बलि-दानं तु कीर्त्तितं परमेश्वरि !

श्रीदेव्युवाच—

बटुके को विशेषोऽस्ति का शक्तिः किं-स्वरूप-धृक्॥ ४८
शिव-शक्त्यात्मको वापि ब्रह्म-विष्ण्वात्मकोऽपि वा।
भर्ता पुत्रोऽथवा भ्राता का क्रिया तद् वद प्रभो ॥ ४९
अत्र मे संशयो जातः संशयं मेऽत्र नाशय ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च रहस्याति-रहस्यकम् ॥ ५०
कथं तत् कथ्यते देवि ! शपथं कुरु पार्वति !

श्रीदेव्युवाच—

शपे त्वच्चरणाभ्यां तु हिमाद्रि-शिरसा शपे ॥ ५१
स एव विमुखो भूयात् किमन्यैर्बहु-जल्पितैः ।

श्रीशिव उवाच—

शपथेन प्रहृष्टोस्मि तत्-कथा कथ्यते शृणु ॥ ५२
वेतालाः प्रेत-कूष्माण्डा यक्ष-राक्षस-किन्नराः ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ग्रहाश्चान्ये महेश्वरि ॥ ५३
सञ्जाताः परमेशानि ! तैर्ग्रस्तं तु चराचरम् ।
केचिद् विरिञ्चि सेवन्ते शिवं विष्णुं तथापरे ॥ ५४
महा-विद्यां भजन्त्यन्ये न ते वै सिद्धि-भागिनः ।
वेतालाद्या महा-देवि ! जप-पूजादि-हारकाः ॥ ५५
तेषां विनाशनार्थाय भक्तानुग्रहणाय च ।
बटुकोऽयं महेशानि ! तारा-काल्या विभावितः ॥ ५६
पञ्चाशद् वै महा-पद्म महा-मन्त्रा महेश्वरि !
पञ्चाशत्-कोटि-गणना योगिनीनां तु कोटिशः ॥ ५७
भैरवाणां कोटि-कोटिर्महा-विद्यास्त्वनेकशः ।
त्रि-खर्व-संख्या तारा स्यात् काली दशार्बुदा शिवे ॥ ५८
कला-कोटि-प्रभेदा तु सुन्दरी तेन संयुता ।
बाला त्रि-कोटि-संख्याभिश्छिन्ना षोडश-खर्वतः ॥ ५९

षट्-त्रिंशल्लक्ष-ब्रह्मास्त्रैश्चन्द्र-षोडशमायुता ।
कोटि-द्वादशभिर्देवि ! भुवनांशेन पार्वती ॥ ६०
धूम्र-कला लक्ष-भेदैः सिद्ध-विद्याख्य-तत्त्वतः ।
चतुरशीति-लक्षैश्च मातङ्गी-मन्त्रतः शिवे ॥ ६१
एतत् सर्व-मयं तेजः सर्व-ब्रह्माण्ड-रूप-धृक् ।
सर्व-तेजः-समुद्भूतं बटु-रूपं सनातनम् ॥ ६२
सत्त्व-रजस्तमो-युतैः ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरैः ।
तच्छक्तिभिर्महेशानि ! रूप-त्रय-धरं परम् ॥ ६३
तत्रापि दशधा भिन्नं बटु-रूपं सनातनम् ।
महोग्र-तारया दत्तमुपवीतं महेश्वरि ॥ ६४
कपालं छिन्नया दत्तं काल्या कालो निवेदितः ।
दत्तं त्रिशूलं कालेन यन्मूले तु त्रि-शक्तयः ॥ ६५
काली तारा तथा छिन्ना शूल-रूपेण सन्ति च ।
अन्ये देवाः सिद्धयश्च यक्ष-गन्धर्व-किन्नराः ॥ ६६
रूपं कौक्कुरमासाद्य सम्भजन्ति निरन्तरम् ।
एवं बटुक-रूपं तु सञ्जातं परमेश्वरि ॥ ६७
यदारभ्य धृतं रूपं बटुकाख्यं शिवेन तु ।
तदा प्रभृति देवेशि ! वेतालाद्या न दुःखदाः ॥ ६८
सिद्धिं संलेभिरे स्वां स्वां देवता-दर्शनोत्सुकाः ।
एवं बटुकं पूज्य वास्तु-पूजार्थमेव वा ॥ ६९
ये पूजयन्ति देवेशि ! ते नराः शिव-रूपिणः ।
सर्व-सिद्धीश्वरा देवि ! साधकाः सम्भवन्ति च ॥ ७०
वेतालादेः किङ्करत्वं यक्षिणी-पादुका-गणः ।
खड्गाञ्जन-विलासाद्याः पर-काय-प्रवेशनम् ॥ ७१
तदारभ्य महेशानि ! साधकस्य करे स्थितम् ।
सर्वं तु शाबराद्यं तु यत् स्मृत्या कर-गं भवेत् ॥ ७२

एवं तु बटुको जातः सर्व-सिद्धि-प्रदः शुभः ।
दश-विद्या योग-रूपं समासाद्य वसन्ति च ॥ ७३
ज्येष्ठी या दशमी शुद्धा दश-योग-समन्विता ।
बटुकस्य तिथिः प्रोक्ता बटुकोत्पत्ति-कारिणी ॥ ७४
देव्याः पुत्रत्वतां यातो बटुकः परमेश्वरि !
त्वां विहाय च ये मां च सम्भवन्ति युगे युगे ॥ ७५
तेषां न सिद्धिर्देवेशि ! कोटयर्बुद-युगैरपि ।
खड्ग-शूल-धरं काल्या तारायां पूर्वमीरितम् ॥ ७६
द्वि-चतुर्वसु-हस्ताढ्यं बटुकं परमेश्वरि !
रहस्याति-रहस्यं च रहस्याति-रहस्यकम् ॥ ७७
सर्व-सिद्धि-प्रदो देवि ! सर्व-साम्राज्य-दायकः ।
सर्वापत्-तारणो योगो स्व-सैन्य-रक्षकः परः ॥ ७८
पर-सैन्यस्य राष्ट्रस्य विद्रावी नाशकः परः ।
पर-राज्ये महेशानि ! नानोपद्रव-कारकः ॥ ७९
अहोरात्रेण देवेशि ! वीर-साधन-योगतः ।
बटुकस्तु प्रसन्नः स्यात् तारा काली तथा शिवे ॥ ८०
अन्य-प्रयोगा देवेशि! क्वचित् सिद्धयन्ति वा न वा ।
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ८१

त्रयोदशः पटलः

वीर-रात्र्यादि-निर्णयः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि वीर-रात्र्यादि-निर्णयम् ।

श्रीशिव उवाच—

वीर-रात्रिर्महा-रात्रिः काल-रात्रिस्तथैव च ॥ १
मोह-रात्रिर्घोर-रात्रिः क्रोध-रात्रिस्तथैव च ।
तथैव चाबला-रात्रिस्तारा-रात्रिस्तथैव च ॥ २
शिव-रात्रिर्दिव्य-रात्रिर्दारुणा च यथा-क्रमात् ।
कथ्यते परमेशानि ! शृणु सावहिता भव ॥ ३
चतुर्दशी-संक्रमश्च कुलर्क्ष-कुल-वासरः ।
अर्ध-रात्रौ यथा योगो वीर-रात्रिः प्रकीर्त्तिता ॥ ४
शुक्लाष्टमी चाश्विनस्य नव-रात्रं तु तस्य वै ।
महा-रात्रिर्महेशानि ! काल-रात्रिं शृणु प्रिये ॥ ५
दीपोत्सवं चतुर्दश्यां त्वमाया योग एव च ।
काल-रात्रिर्महेशानि ! तारा-काली-प्रियङ्करी ॥ ६
जन्माष्टमी महेशानि ! मोह-रात्रिः प्रकीर्त्तिता ।
कृष्णावतार-पर्यन्तं तारायाः शाप ईरितः ॥ ७
जाते कृष्णावतारे तु निर्मुक्ता तारिणी परा ।
उत्पत्तौ विन्ध्य-वासिन्या विद्युद्-रूपे समागते ॥ ८
श्रीमहा-तारिणी विद्या महारण्य-परायणा ।
स्मरणादेव संसिद्धा स्मृति-पुष्टि-करी परा ॥ ९
चैत्रे मासि नवम्यां च शुक्ल-पक्षे च भू-सुते ।
क्रोध-रात्रिर्महेशानि ! तारा-रूपा भविष्यति ॥ १०

मासे मार्गशिरे प्राप्ते कृष्णाष्टम्यां महेश्वरि !
महाकाल-स्वरूपा च घोर-रात्रिः प्रकीर्त्तिता ॥ ११
प्राप्ते फाल्गुनके मासि कृष्णैकादशिका तु या ।
भृगु-भौम-युता चेत् स्यादबला-रात्रिरीरिता ॥ १२
ज्येष्ठी या दशमी शुद्धा भृगु-वासर-संयुता ।
दश-योग-समायुक्ता रात्रावेकादशी यदि ॥ १३
सा तिथिर्दिव्य-रात्रिश्च कीर्त्तिता परमेश्वरि !
ज्येष्ठी या दशमी शुद्धा दश-योग-समन्विता ॥ १४
बटुकस्य तिथिः प्रोक्ता बटुकोत्पत्ति-कारिणी ।
अमा-भौम-समायुक्ता संक्रमेण समन्विता ॥ १५
कुल-ऋक्ष-समायुक्ता ग्रहणं यदि चेद् भवेत् ।
तारा-रात्रिस्तु सम्प्रोक्ता भाग्यादेव तु लभ्यते ॥ १६
फाल्गुने कृष्ण-पक्षे तु ह्यर्ध-रात्रौ भृगौ शिवे !
शिव-रात्रिस्तु सञ्जाता सर्व-सिद्धि-प्रदायिनो ॥ १७
अमा-भृगु-समायुक्ता सूर्य-ग्रहण-युक् यदि ।
अपराह्णे यदा योगो मृत-सञ्जीवनी तिथिः ॥ १८
स्नान-दानादि-होमान्तमनन्त-फलदं भवेत् ।
अष्टमी चैत्र-मासी या संक्रमेण समन्विता ॥ १९
सिद्धि-रात्रिरिति ख्याता तारा-काली-समाकुला ।
तृतीया माधवे शुद्धा कुल-वारर्क्ष-संयुता ॥ २०
दारुणा कीर्त्तिता देवि ! सर्व-सिद्धीश्वरी परा ।
क्रमेण कथितं सर्वं पर्व-राजाभिधं शृणु ॥ २१
तृतीया पौष-मासीया भृगु-वासर-संयुता ।
साऽपि चेन्मकराक्रान्ता कुल-नक्षत्र-संयुता ॥ २२
चतुर्थी-सहिता चेत् स्यात् रेवती-सहिता क्वचित् ।
पर्व-राजाभिधं पर्वं सर्व-पर्वोत्तमोत्तमम् ॥ २३

तृतीया चैत्र-मासीया रेवती-संयुता यदि ।
ऋद्धि-योगो महेशानि ! होम-कर्मणि शस्यते ॥ २४
प्रति-मासे पौर्णमासी मास-नक्षत्र-संयुता ।
कुल-वार-समायुक्ता सा तिथिः सुन्दरी भवेत् ॥ २५
अष्टमी प्रति-मासस्य कृष्ण-पक्षस्य पार्वति !
भौम-युक्ता तथा ऋक्ष-युक्ता वा केवला च वा ॥ २६
देवी-रात्रिरिति ख्याता सर्व-सिद्धि-प्रदायिनी ।
चतुर्थी माघ-मासस्य मकरात्का भवेद् यदि ॥ २७
गणपस्य तु सा रात्रिरिति ख्यातेति औडवः ।
नवमी कृष्ण-पक्षस्य कुल-ऋक्ष-समन्विता ॥ २८
वार-युक्ताऽथवा देवि! सिद्धि-रात्रिः प्रकीर्त्तिता ।
चतुर्थी कृष्ण-पक्षस्य कुल-वारर्क्ष-संयुता ॥ २९
केवलं भौम-युक्ता वा बाल-रात्रिः ससंक्रमे ।
अमा-भौम-समायुक्ता कुलर्क्ष-संयुता यदि ॥ ३०
कृष्ण-रात्रिरिति ख्याता अक्षोभ्य-प्रीति-कारिणी ।
अमार्क-श्रवणे जाते युक्तश्चेत् पौष-माघयोः ॥ ३१
अर्द्धोदयः स विज्ञेयः किञ्चिन्न्यूनो महोदयः ।
धर्म-रात्रिर्महेशानि ! कीर्तितेयं सुरर्षिभिः ॥ ३२
अमा-भौमेन सोमेन योगेन भृगुणाऽथवा ।
गुरुणा रविणा देवि ! कुल-ऋक्ष-समन्विता ॥ ३३
दिव्य-माण्डलिको योगः सूर्य-पर्व-शताधिकः ।
माघ-मासे शुक्ल-पक्षे सप्तमी या प्रकीर्त्तिता ॥ ३४
सौरी तिथिस्तु सा ज्ञेया जप-होमादिकं चरेत् ।
रवि-युक्ता कुलर्क्षैस्तु वासरेणापि संयुता ॥ ३५
महा-सौरीति विज्ञाता त्रैलोक्योत्पत्ति-कारिका ।
सप्तमी प्रति-मासस्य रवि-युक्ता यदा भवेत् ॥ ३६

हंसी तिथिस्तु विज्ञेया मोक्ष-धर्म-परायणा ।
बुधाष्टमी महेशानि ! प्रति-मासस्य या भवेत् ॥ ३७
विष्णु-रात्रिरिति ख्याता भाद्रे मासि विशेषतः ।
माघे मासि शुक्ल-पक्षे पञ्चम्यां भृगु-वासरे ॥ ३८
वसन्त-पञ्चमी प्रोक्ता काम-सञ्जीवनी तिथिः ।
आरात्रिकं जपो होमः कीर्त्तनं काम-नर्त्तनम् ॥ ३९
श्रावणे पौर्णमास्यां तु तदृक्षे परमेश्वरि !
पवित्रारोपणं कार्यं रक्षां दश-विधां चरेत् ॥ ४०
पौर्णिमा चैत्र-मासीया तस्यां मदन-पूजनम् ।
प्रति-विद्या-विधौ देवि ! प्रोक्त-योगे प्रपूजनम् ॥ ४१
एतद् योग-पूजनाद्धि सिद्धिं विन्दन्ति किं पुनः ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ४२

चतुर्दशः पटलः

तारा-कल्पाङ्ग-सिद्धिः

श्रीदेव्युवाच—

देव-देव ! महा-देव ! सर्वेषां सुख-वर्द्धन !
केन सिद्धि ददात्याशु तारा त्रैलोक्य-तारिणी ॥ १
श्रीमहा-दक्षिणा काली सिद्धिं किं नः प्रयच्छति ?
तन्मे वद महा-देव ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ २

श्रीशिव उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च कथं त्वयि निवेद्यते ?
शपथं कुरु देवेशि ! तर्हि तत्वं वदाम्यहम् ॥ ३

श्रीदेव्युवाच—

शपे त्वच्चरणाभ्यां च सैव मे विमुखी भवेत् ।

श्रीशिव उवाच—

शपथेन प्रहृष्टोऽस्मि कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ ४
सिद्धिर्मधु-मती नाम्ना प्रादुर्भूता तवाज्ञया ।
काली-तारा-मयं धाम त्वत्-सकाशादभूच्छिवा ॥ ५
श्रीविद्यया मुखं दत्तं काल्या कर-युगं शिवे !
तारया चांगुलिर्दत्ता भुवनेश्या हृदम्बुजम् ॥ ६
छिन्नया चरण-द्वन्द्वं मातंग्या नयन-द्वयम् ।
लक्ष्म्या ललाटं दत्तं च तथैव सिद्ध-विद्यया ॥ ७
केशा दत्ता महेशानि ! गुल्फौ ब्रह्मास्त्र-विद्यया ।
हासस्तु बालया दत्तो वाजी दत्तो महेश्वरि ॥ ८
श्रिया च रुचकं देवि ! धूमावत्या तु निग्रहः ।
अन्य-देवास्तु केशान्ते ब्रह्माण्डं हृदयाम्बुजे ॥ ९
एवं सर्वांशतो जाता तेजो-राशि-समुद्भवा ।
महा-मधुमती सिद्धिस्त्रैलोक्याकर्षणी परा ॥ १०

पार्वत्यरुन्धती दुर्गा मृत-सञ्जीवनी परा ।
सर्वमाकर्षयेत् तूर्णं त्रैलोक्याकर्ष-कारणात् ।। ११
काली-तारा-मयं धाममाविर्भूतमभूच्छिवा ।
महा-पायस-सन्तुष्टा पायसान्न-परायणा ।। १२
महा-मधुमती विद्या त्रैलोक्याकर्षणी परा ।
भैरवाकर्षणी विद्या वेतालाकर्षणी तथा ।। १३
किन्नराकर्षणी देवि ! देवाकर्षण-कारिणी ।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि त्रैलोक्याकर्षणं परम् ।। १४
'प'-पञ्चमं पावक-युक् नाद-विन्दु-विभूषितम् ।
महा-काम-कला-युक्ता प्रोक्ता त्वेकाक्षरी कला ।। १५
मधुमतीं समुद्धृत्य नान्तं काम-समन्वितम् ।
स्थावरेति समुद्धृत्य जङ्गमाकर्षणीति च ।। १६
'ठ'-युग्मान्ता वह्नि-जाया चित्-कलार्णा प्रकीर्त्तिता ।
अष्टादशाक्षरी विद्या त्रैलोक्याकर्षणी परा ।। १७
काम-देवो ऋषिः प्रोक्तो निवृद्-गायत्रिका ततः ।
च्छन्दः प्रोक्तं महेशानि ! देवता सैव कीर्त्तिता ।। १८
'स्त्रीं' बीजं च तथा स्वाहा शक्तिः प्रोक्ता महेश्वरि!
स्थावर-जङ्गमाकर्षे विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।। १९
षड्-दीर्घ-भाजा बीजेन कुर्यादङ्गानि षट्-क्रमात् ।
ततो ध्यानं प्रकुर्वीत वक्ष्यमाणं महेश्वरि ।। २०
गौराङ्गीं शरदिन्दु-सुन्दर-मुखीं पीतांशुकां पीवराम्,
प्रोत्तुङ्ग-स्तन-मण्डल-प्रविलसज्जाम्बू-नदैकावलीम् ।
श्वेतोत्तुङ्ग-तुरङ्गगां त्रि-नयनां पीताङ्ग-राग-स्रजाम्,
ध्यायेत्पायस-लालसां मधुमतीं दोर्भ्यां दधानां सृणिं ।।२१
दिग्बन्ध-भूत-शुद्ध्यादीन् काली-वत् समुपाचरेत् ।
यन्त्रावरणकं नास्ति केवलं पूजयेच्छिवे ।। २२
सर्वं त्रि-शक्ति-वत् प्रोक्तं विशेषः कथ्यते शृणु ।

एवं ध्यात्वा जपेद् विद्यां सर्वाकर्षण-कारिणीम् ॥ २३
पुरश्चरण-सिद्धचर्थं सहस्राणां तु सप्ततिः ।
सिद्ध-मन्त्रे सिद्ध-चर्या प्रोक्ता देवि ! मया तव ॥ २४
कदली-वनमासाद्य वर्ष-मात्रं महेश्वरि !
सर्व-कालं जपेन्मन्त्रं पायसान्न-परायणः ॥ २५
वीर-साधन-वद् देवि ! लक्ष-मात्रं जपेत् ततः ।
ततः सप्तति-साहस्रं प्रत्यक्षार्थं महेश्वरि ॥ २६
पायसं कदली-पत्रे पायसं घृत-शर्करम् ।
भुक्त्वा मोचा-वने वीत-जने कुर्यादतन्द्रितः ॥ २७
गन्धर्व-वेशो गत-भीर्विभागैः पायसं चरेत् ।
अंश-द्वयं पुरा कृत्वा तत् क्रमं शृणु पार्वति ॥ २८
एकांशे चांश-युग्मं च एकांशं पूर्णमेव च ।
परस्यांशस्य पूर्वांशं स्वयं च भक्षयेच्छनैः ॥ २९
एकस्मिन् कदली-पत्रे 'स्त्री'मित्युत्सर्गमालिखेत् ।
प्रथम-सप्तके याति तूष्णीं नैव यथा तथा ॥ ३०
द्वितीय-सप्तके देवि ! प्रतिमां काञ्चनीमिव ।
तृतीय-सप्तके देवि ! प्रत्यक्षाश्नाति पायसम् ॥ ३१
वरं ददाति हठतः साधकस्य यथेप्सितम् ।
तिष्ठत्यहर्निशं सार्धं साधकस्य यथेप्सितम् ॥ ३२
आकर्षयत्यम्बु-निधेः सुमेरोश्च दिगन्ततः ।
पातालादिन्द्र-लोकाच्च हैम-श्रीशैल-भूरुहात् ॥ ३३
अलभ्यानि च वस्तूनि दूराद् भूमि-तलादपि ।
नदीं पुरीं च रत्नानि समाकर्षति तत्क्षणात् ॥ ३४
वृत्तान्तं च पुरस्थानां राज्ञां च कथयत्यपि ।
रहस्यं विद्विषां चापि सत्यं सत्वरमाविशेत् ॥ ३५
त्रैलोक्याकर्षणी विद्या न देया यस्य कस्यचित् ।
बटुकेमां गृहाण त्वं सिद्धिदो मेऽस्तु सर्वदा ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं मन्त्र-भेदश्च साधनम् ॥ ३६

पञ्चदशः पटलः

मधुमती-सिद्धि-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि मन्त्रानन्यांश्च साधनम् ।

श्रीशिव उवाच—

एकाक्षरी चाद्य-वीजा ठ-युग्मा त्र्यक्षरी भवेत् ॥ १
ठ-हीना स्वाहया युक्ता त्र्यक्षरी काम-पूजिता ।
बीज-सम्बोधन-युता पञ्चार्णा परि-कीर्त्तिता ॥ २
बीज-सम्बोधन-युता ठ-द्वयान्ता मुनि-प्रिया ।
बीज-सम्बोधन-युता स्वाहान्ता ऋषि-पूजिता ॥ ३
सम्बोधन-ठ-युग्मान्ता षड्-वर्णा सकलार्थदा ।
सम्बुद्धिः स्वाहया युक्ता सर्वाकर्षण-कारिणी ॥ ४
बीज-कर्मान्तगा विद्या दशार्णा विश्व-रूपिणी ।
कर्माद्या ठ-द्वयान्ता च रुद्रार्णा परमेश्वरि ॥ ५
कर्माद्या वह्निजायान्ता विद्याद्या परि-कीर्त्तिता ।
बीज-कर्म-ठ-द्वयान्ता महा-विद्या प्रकीर्त्तिता ॥ ६
बीज-कर्म ततः स्वाहा सिद्ध-विद्या प्रकीर्त्तिता ।
बीज-सम्बोधन-पदं कर्मान्ता च परा कला ॥ ७
बीज-सम्बोधन-पदं कर्म-ठ-द्वय-संयुतम् ।
बीज-सम्बोधन-पदं कर्म-स्वाहान्विता परा ॥ ८
बीज-सम्बोधन-पदं ठ-युक्-स्वाहान्विता परा ।
बीजं ठ-युक् ततः स्वाहा विद्यान्या परि-कीर्त्तिता॥ ९
सम्बोधनं ठ-युक् स्वाहा विद्या सर्वार्थदा परा ।
बीज-कर्म ठ-युक् स्वाहा विद्या सर्वाङ्ग-सुन्दरी ॥ १०
सम्बोधनं ततः कर्म ठ-द्वयान्ता परा भवेत् ।
सम्बोधनं ततः कर्म ठ-युक्-स्वाहान्विता परा ॥ ११

सम्बोधनं ततः कर्म स्वाहान्ता शिव-सुन्दरी ।
चतुर्विंशति-भेदैस्तु गदिता परमा कला ॥ १२
बाला मधुमती भिन्ना तथैव सुन्दरी-मनोः ।
निधि-सिद्धौ भवेद् भिन्ना त्रि-भेदा सा प्रकीर्त्तिता ॥ १३
एवं त्रिंशतिधा प्रोक्ता त्रैलोक्याकर्षणी परा ।
विजने कदली-पत्र-वने गत्वा निशा-मुखे ॥ १४
शुभ-लग्ने शुभ-दिने सङ्कल्पं कामनान्वितम् ।
अष्टादशाक्षरस्यास्य महा-मधुमती-मनोः ॥ १५
मन्त्र-सिद्धचर्थमित्युक्त्वा चाद्य-प्रभृति चोच्चरेत् ।
एक-विंशति चोद्धृत्य दिवसान्तं समुच्चरेत् ॥ १६
जप-रूपं ततः प्रोच्चैः पुरश्चरणमुच्चरेत् ।
षडङ्ग-युग्ममाद्येन कृत्वा ध्यात्वा प्रपूज्य च ॥ १७
गो-दुग्ध-पायसं कृत्वा कदली-पत्र-गोचरम् ।
बीजं मधुमतीत्युक्त्वा चतुर्थ्यन्तं समुद्धरेत् ॥ १८
पायसं तत्र दत्वा च निवेद्य च पुनः पुनः ।
तस्यां सम्भुक्त-वत्यां तु पुनराचमनीयकम् ॥ १९
दद्यात् ताम्बूलं सन्दर्श्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।
पायसार्द्धं पृथक् स्थाप्य शेषार्द्धं भक्षयेत् स्वयम् ॥ २०
रक्त-माल्यादिभिर्देवि ! दिव्याम्बर-विभूषितम् ।
गन्धर्व-वेशं कृत्वा च प्रत्यहं त्रि-सहस्रकम् ॥ २१
त्रि-शतं च चतुस्त्रिंशत् एक-विंशति-वासरान् ।
प्रजपेत् परमेशानि ! देवता वरदा भवेत् ॥ २२
बटुकस्य च संयोगात् सिद्धचत्येव न चान्यथा ।
श्रीतारोपासको यस्तु कालिकोपासकस्तु यः ॥ २३
इमां विद्यां साधयित्वा सिद्धिमाप्नोति नान्यथा ।
यान् यान् प्रार्थयते कामांस्तांस्तान् कामान् क्षणे क्षणे॥ २४

ददाति सा परा विद्या सर्वाकर्षण-कारिणी ।
लोह-प्राकार-सन्नद्ध-दुर्गाद् देवालयाच्छिवे ।। २५
धनदं शङ्करं विष्णुं पार्वतीं चाप्यरुन्धतीम् ।
एवं दश-महा-विद्यां समाकर्षति त क्षणात् ।। २६
लङ्कां समुद्रान् द्वीपांश्च सिद्ध-यक्ष-महोरगान् ।
अश्रुतान्यपि वस्तूनि समाकर्षति तत्क्षणात् ।। २७
किन्नरान् यातुधानादीन् निधीन् सिद्धीः क्षणेन च ।
सुमेरुं चैव कैलासं क्षणादाकर्षयेच्छिवे ।। २८
तत्तद्-देश-स्थितं देवि ! त्रैकाल्य-ज्ञानमेव च ।
सर्वं वदति देवेशि ! सावधानं करोति यः ।। २९
त्रैलोक्याकर्षणी विद्या न देया यस्य कस्यचित् ।
आदौ विद्यां च संसाध्य ततः सिद्धिं प्रसाधयेत् ।। ३०
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ।। ३१

षोडशः पटलः

श्रीदेव्युवाच— क्रम-दीक्षा-विनिर्णयम्

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि क्रम-दीक्षा-विनिर्णयम् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यातिरहस्यं च कथं तत् कथयामि ते ॥ १
तथापि तव सद्-भक्त्या कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
चन्द्राग्नि-पक्ष-षोढाख्या परा निर्वाण-तत्परा ॥ २
षट्-शाम्भवं ततो देवि ! चक्र-सम्भेदनेन च ।
स्व-चक्र-देह-विज्ञानं पर-काय-प्रवेशनम् ॥ ३
एतज्ज्ञानाद् भवेन्मेधा दीक्षा प्रोक्ता मया तव ।
हादाविदं निगदितं शृणु कादौ महेश्वरि ॥ ४
चन्द्राग्नि-रस-राज्ञी च महा-राज्ञी ततः शिवे !
महा-काम-कला काली गुह्य-काली ततः शिवे ॥ ५
गुह्य-काली द्विधा प्रोक्ता सकला निष्कला क्रमात् ।
दश-वक्त्रा तु सकला प्रोक्ता वाशिष्ठिका कला ॥ ६
उग्रा सौम्या महा-क्रूरा त्रिविधा सा प्रकीर्त्तिता ।
निष्कला गुह्य-शब्दान्ता काली-भेदेन कीर्त्तिता ॥ ७
केवलेयं भवेन्मेधा प्रीत्या साम्राज्य-दायिनी ।
चन्द्राग्नि-वेद-पञ्चार्णा तथा नीला-क्रमेण च ॥ ८
हंस-तारा महा-नीला तदन्ते चीन-शाम्भवी ।
केवला तु भवेन्मेधा सिद्धि-ऋद्धि-क्रिया द्विधा ॥ ९
तृतीया दिव्य-साम्राज्य-मेधा दीक्षा प्रकीर्त्तिता ।
देव-रूपा दिव्य-रूपा मन्त्र-रूपा महत्-परा ॥ १०
सर्व-रूपा सर्व-पूर्वा महत्-साम्राज्य-मेधया ।
सिद्धि-ऋद्धि-क्रमेणैव भेद-बाहुल्यमीरितम् ॥ ११
विद्या-राज्याभिधां दीक्षा छिन्नमस्ता-विधौ स्मृता ।
चन्द्र-वह्नि-रसो रक्तं श्यामा च षोडशी तथा ॥ १२

परा-षोढा सप्त-दशी तदतीता परा भवेत् ।
दीपिनी मालिनी कुल्ला क्रमाद् विद्यादि-राज्यता॥ १३
बगलाख्या महेशानि ! साम्राज्य-पारमेष्ठिता ।
चन्द्र-वेद-सूक्ष्म-मेरुं मन्त्र-हीनं शिवात्मकम् ॥ १४
हृदयं च शताणां च पञ्चास्त्रं कुल्लुका तथा ।
गायत्री-क्रम-योगेन साम्राज्य-पारमेष्ठ्य-धृक् ॥ १५
एतत् पञ्चक-संयुक्तः सर्व-साम्राज्य-बुद्धि-धृक् ।
श्रीदिव्य-सर्व-साम्राज्य-दीक्षा सर्वोत्तरा भवेत् ॥ १६
ततोऽपि दीक्षा देवेशि ! नास्ति ब्रह्माण्ड-गोलके ।
दश-विद्या-प्रभेदाश्च महा-विद्या-प्रभेदजाः ॥ १७
सिद्धि-विद्या-प्रभेदाश्च महा-मन्त्रास्तथैव च ।
तदङ्ग-मन्त्रा देवेशि ! शाबरं दश-शाबरम् ॥ १८
काल-शाबरकं देवि ! तथैव सिद्ध-शाबरम् ।
त्रिधा दर्शन-मन्त्राश्च तथाम्नाय-क्रमोद्भवाः ॥ १९
कादि-हादि-कहत्वेन ऊर्ध्वाम्नायाः कलौ शिवे !
तथायतन-मन्त्राश्च यत्-किञ्चिन्मन्त्र-जालकम् ॥ २०
सर्वाधिकारो देवेशि ! एतद्-दीक्षा-विधौ भवेत् ।
एतद्-दीक्षा-समायुक्तः साक्षात् श्रीकालिका स्वयं ॥ २१
प्रहराष्ट-क्रमेणैव दश-विद्या-स्वरूप-धृक् ।
काम-कलाभिधा विद्या सभेदा वृत्ति-देवता ॥ २२
अङ्ग-मन्त्रास्तथान्येऽपि तस्य वक्त्र-गताः सदा ।
क्रम-दीक्षा महेशानि ! पञ्च-विद्यासु भेदतः ॥ २३
तदङ्ग-मन्त्रा गायत्री कुल्लुका-पञ्चकः शिवे !
अन्य-विद्या-विधौ प्रोक्तं रहस्याति-रहस्यकम् ॥ २४
क्रम-दीक्षां विना देवि ! यो जपेत् साधकाधमः ।
स दरिद्रो महा-पापी सुत-हारी प्रजायते ॥ २५
श्रीविद्यायां कालिकायां तारायां परमेश्वरि !
क्रम-दीक्षां विना देवि ! यो जपेत् साधकाधमः ॥ २६

स दरिद्रो महा-घोरो लक्ष्मी-हीनस्तु निर्दिन्तः ।
अन्धः काणः कृशः कुब्जः पंगुः षण्ढस्तु कुष्ठ-युक् ॥ २७
सर्व-रोग-युतो भूयादाधि-चिन्ता-समाकुलः ।
सुत-हारी च स्त्री-हारी कन्या-राज्य-विनाशकः ॥ २८
अथवा वातुलो भूयान्मन्त्र-क्षोभमवाप्नुयात् ।
देवता-शापमाप्नोति दारिद्र्यं तद्-गृहे सदा ॥ २९
विशेषाद् देव-देवेशि ! स्त्री-हारी विकलः सदा ।
क्रम-दीक्षा-समायुक्तो राजा भवति निश्चितम् ॥ ३०
महा-विभव-संयुक्तः सर्व-सिद्धि-समन्वितः ।
विजयी विनयी साधुः सिद्धश्च सिद्धिदः शुभः ॥ ३१
प्रहृष्टात्मा सत्य-वेत्ता त्रिकालज्ञः कविः सुखी ।
कोटि-सिद्धीश्वरः शूरः सुन्दरः काम-मोहनः ॥ ३२
आनन्दात्मा परात्मा च परातीगुत-णोत्तारः ।
राज-राजेश्वरः साक्षात् महा-काल-समः कलौ ॥ ३३
एतद्-विद्योपासकस्य दारिद्र्यं दीनता क्वचित् ।
गुरु-हीनात् क्रम-त्यागात् सम्प्रदाय-वियोगतः ॥ ३४
दारिद्र्यं प्रथमं भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
चिन्तामणि-गृहं यत्र यत्र रत्नस्य मन्दिरम् ॥ ३५
नव-रत्नात्म्य-सोपानं सर्वैश्वर्य-मयं गृहम् ।
कल्प-वृक्ष-वनं यत्र पारिजात-वनं तथा ॥ ३६
स्पर्श-मणेस्तु प्राकारो दारिद्र्यं तत्र कुत्र वै ।
तस्मात् क्रम-विहीनस्य दारिद्र्यं तु पदे पदे ॥ ३७
क्रम-युक्तं गुरुं प्राप्य क्रमं सम्प्रार्थयेत् सुधीः ।
अन्यथा गुरुमौढ्येन दारिद्र्यमवाप्नुयात् ॥ ३८
अल्पायुर्वा भवेद् देवि ! नात्र कार्या विचारणा ।
विधेर्लिपिं तु सम्मार्ज्य तस्यायुः क्षीणतां व्रजेत् ॥ ३९
इति संक्षेपतः प्रोक्तं क्रम-हीनस्य वै फलम् ।
गोपनीयं गोपनीयं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ४०

सप्तदशः पटलः

सूत्र-निर्णयः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पूर्वोक्तं यद्रहस्यकम् ।
गोपनीयं गोपनीयं तदेव कथय ध्रुवम् ॥ १

श्रीशिव उवाच—

रहस्यादि-रहस्यं च यन्न कस्यापि कीर्तितम् ।
तदेव कथ्यते देवि ! शृणु सावहिता भव ॥ २
उत्सर्जनमुपाकर्म पवित्रारोपणं तथा ।
विधि-वत्तु प्रकर्त्तव्यं रक्षा-बन्धस्तदुत्तरम् ॥ ३
क्रमेण परमेशानि ! साधकः कारयेत् सदा ।
चैत्रे मासि पौर्णमास्यां मदनारोपणं चरेत् ॥ ४
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते पवित्रारोपण-क्रियाम् ।
न कुर्य्यात् साधको यस्तु निष्फलाः सकलाः क्रियाः ॥५
वर्ष-मात्रं कृतं जापं होम-पूजादि-सत्-क्रियाम् ।
सर्वं हन्ति महेशानि ! तस्मादेतत् समाचरेत् ॥ ६
आदौ नित्यं महेशानि ! ततो नैमित्तिकं चरेत् ।
उपाकर्माभिधं कर्म नित्य-वत् परि-कीर्तितम् ॥ ७
नैमित्तिकं पवित्राख्यं काम्यो रक्षा-विधिर्भवेत् ।
नैमित्तिक-द्वयं यत्र तदन्त्यं काम्यमुच्यते ॥ ८
काम्य-द्वयं यत्र भवेत्तदाद्यं च निमित्तजम् ।
नित्य-द्वयं यत्र भवेत् तदन्त्यं काम्य-नित्य-युक् ॥ ९
आश्वलायनं श्रवणे पूर्णा कात्यायने भवेत् ।
पौर्णमास्यां सामगानां पञ्चम्यां हस्तजेऽपि च ॥ १०
उपाकर्म प्रकर्त्तव्यं तदन्ते नित्य-पूजनम् ।
ततः पवित्र-पूजा स्यात्ततो रक्षा-विधिर्भवेत् ॥ ११

सूतक-द्वितये देवि ! ग्रहणे संक्रमे परे ।
उपाकर्माणि देवेशि ! कुर्य्यात् भाद्रपदे नरः ॥ १२
पवित्र-रक्षणं शान्ति कुर्यात् भाद्र-पदे सदा ।
पञ्चम्यां च दशम्यां च चतुर्दश्यां तथैव च ॥ १३
पौर्णमास्यां विशेषेण कुल-योगे विशेषतः ।
ग्रहणं तत्र चेद् भूयात् रक्षा-योगं समाचरेत् ॥ १४
तत्र नित्यं प्रकर्त्तव्यं उपाकर्म ततो भवेत् ।
इति चन्द्र-ग्रहे देवि ! सूर्य-वेधं समुत्सृजेत् ॥ १५
अधिवास्य चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां प्रपूजयेत् ।
दशैक-विंशति-ग्रन्थि सप्त-विंशतिरेव च ॥ १६
चतुः-पञ्चाशद् देवेशि ! शतमष्टोत्तरं तथा ।
पञ्च-विंशति वा ग्रन्थिं त्रि-शतं वा सहस्रकम् ॥ १७
अष्टादश-रशिम-संख्यं व्युत्क्रमात् परि-कीर्त्तितम् ।
उत्तमादि-क्रमेणैव पवित्रं त्रि-विधं भवेत् ॥ १८
सूत्रं पट्ट-स्वर्ण-मयं कुशजं लोमजं च वा ।
रत्नजं रौप्यजं देवि ! ताम्रजं शान्ति-कर्मणि ॥ १९
सार्ध-ग्रन्थि-द्वयं वापि सार्ध-ग्रन्थि-त्रयं च वा ।
एक-ग्रन्थिं च वा देवि ! क्रमेण कारयेत् प्रिये ॥ २०
सार्ध-ग्रन्थि-द्वयं देवि ! नाग-पाशः प्रकीर्त्तितः ।
सार्ध-ग्रन्थि-त्रयं देवि ! ब्रह्म-ग्रन्थिः प्रकीर्त्तितः ॥ २१
चन्द्र-ग्रन्थिर्महेशानि ! सूत्राणि ग्रन्थि-संख्यया ।
पट्टेन सूत्र-नियमः स्वर्णे रौप्येऽपि नास्ति च ॥ २२
स्वर्ण-सूत्र-मये पट्टे स्वर्णजे ग्रन्थिरोरितः ।
ग्रन्थिं कृत्वा महेशानि ! पूजयेद् ग्रन्थि-देवताम् ॥ २३
सूत्रजं वैष्णवे प्रोक्तं शैवे पट्ट-समुद्भवम् ।
स्वर्णजं शक्ति-मन्त्रे स्यात् तद्-द्वयोक्तं तु सर्वतः ॥ २४

पञ्च-सिद्धि-विधौ देवि ! रत्नजं परि-कीर्त्तितम् ।
वृत्तं त्रिकोणं भू-बिम्बं षट्-कोणं च षडस्रकम् ॥ २५
दलाष्टकं च वस्वारं दशारं भुवनारकम् ।
द्वादशारं षोडशारं पञ्च चारं चतुर्दशम् ॥ २६
दन्ताब्जं च कलाब्जं वा यन्त्राण्येतानि कारयेत् ।
मध्ये यन्त्रं च परितो रत्नानि विविधानि च ॥ २७
धारयेत् परमेशानि ! पवित्र-रक्षण-क्रमात् ।
स्वर्णादौ शृङ्खला-रूपा ग्रन्थयः परि-कीर्त्तिताः ॥ २८
उत्तमादि-क्रमेणैव कारयेत् परमेश्वरि !
माणिक्यं च तथा रत्नं कुरुविन्द-मणिस्तथा ॥ २९
हीरके चैव वैडूर्ये गोमेदे पुष्प-रागके ।
पद्म-रागे नील-मणौ हरिते च गरुत्मके ॥ ३०
करिके परिशे कीटे शिव-रत्ने च विष्णुजे ।
बिन्दु-रत्ने च मायूरे पाचे कुक्कुट-संज्ञके ॥ ३१
रासे कृष्णे चन्द्र-मणौ प्रवाले मौक्तिकाम्बरे ।
रक्षा-यन्त्र-फलं देवि ! कोष्ठ-रत्न-समं भवेत् ॥ ३२
यन्त्राण्येतानि विलिखेत् सर्व-कार्यार्थ-सिद्धये ।
श्रीविद्यायां कालिकायां तारा-छिन्ना-विधौ शिवे ॥ ३३
मातङ्ग्यां भुवनेश्वर्यां कमलायां च कारयेत् ।
चतुर्दले महेशानि ! चतुर्वर्णात्मको मनुः ॥ ३४
चतुरक्षर-मात्राणि कारयेत् परमेश्वरि !
यथा दलानि कोष्ठानि तथा विद्याक्षराणि च ॥ ३५
विलिखेत् परमेशानि ! बीज-मात्रं च वा लिखेत् ।
वयः-शोभा यथा देवि ! यथाप्युक्ता समाचरेत् ॥ ३६
यदा बध्नाति मन्त्रेण त्वां पवित्रेण वा प्रिये !
आपदुद्धारकेणापि मूलेन विद्यया क्रमात् ॥ ३७

रक्षणं बन्धयेद् देवि ! रक्षा सर्व-कृता भवेत् ।
बलि-मुखं च रक्षार्थं ज्ञानार्थं गौतमादिभिः ॥ ३८
मोक्षार्थं कपिलाद्यैश्च शक्त्यर्थं शङ्करादिभिः ।
सूत्रे भेदाः क्रमेणैव यथा-योगेन वै शृणु ॥ ३९
श्वेते रक्ते तथा पीते नीले च हरितेऽपि च ।
कर्बूरे बहु-चित्रे च यथा-योगेन कारयेत् ॥ ४०
सूत्राणि कामना-भेदात् यथा-योगेन कारयेत् ।
सर्व-सिद्धीश्वरो भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ४१
प्रति-विद्या-विधौ देवि ! पवित्रारोपणं भवेत् ।
प्रति-विद्या-विधौ देवि ! रक्षा वर्ण-क्रमाद् भवेत् ॥ ४२
अष्ट-गन्ध-भवं सूत्रं जीव-चक्र-भवं च वा ।
पुष्प-राज-सार-भवमम्बरोत्थं च वा प्रिये ॥ ४३
तथैवागुरु-सारोत्थं सूत्रं प्रोक्तं महेश्वरि !
रहस्याति-रहस्यं च रहस्याति-रहस्यकम् ॥ ४४
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ।
ब्रह्माण्ड-गोलके याश्च याः काश्चिज्जगती-तले ॥ ४५
समस्ताः सिद्धयो देवि ! रक्षा-धारक-साधके ।
सम्भवन्ति महेशानि ! नात्र कार्या विचारणा ॥ ४६
वाञ्छा-सिद्धिर्भवेद् देवि ! नात्र कार्या विचारणा ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ४७

अष्टादशः पटलः

क्रम-दीक्षा-पवित्रारोपणम्

श्रीदेव्युवाच—

देवेश! श्रोतुमिच्छामि गोप्याद् गोप्य-तरं महत् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यादि-रहस्यं च कथ्यते शृणु साधनम् ॥ १
पूर्णाभिषेक-दीक्षादि-युक्तानामपि पार्वति !
पवित्रारोपणं रक्षा समैव परि-कीर्त्तिता ॥ २
सद्योऽधि-वासनं वापि पूर्वाधि-वासनं च वा ।
कृत्वा पवित्रं कर्त्तव्यं सर्व-कामार्थमेव च ॥ ३
सर्व-रत्ने च परिशे तथा गरुड-रत्नके ।
सर्व-रक्षा-सुसिद्धचर्थं रक्षणं बन्धनं चरेत् ॥ ४
तारा श्री-काम-वाङ्-माया काली छिन्ना च तारिणी ।
बगला विमला धूम्रा वसोर्धारा षडङ्गकम् ॥ ५
त्रि-तारं पञ्च-तारं च सप्तर्षि-रन्ध्र-योगतः ।
आकर्षिण्यां परां मायां परा-प्रासादकेऽपि च ॥ ६
बीजान्येतानि बाणाश्च प्रेत-फेत्कार-कामतः ।
एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षडर्ण-क्रम-योगतः ॥ ७
विद्यां संयोजयेद् यन्त्रे सर्व-सिद्धचर्थमेव च ।
श्रावण्यां पौर्णमास्यां तु रक्षां दश-विधां चरेत् ॥ ८
गो-रक्षा हय-रक्षा च गज-रक्षा तृतीयका ।
जन-रक्षा देश-रक्षा गृह-रक्षा रसाभिधा ॥ ९
धन-रक्षा बाल-रक्षा क्षेत्र-रक्षा परा मता ।
सर्व-रक्षा च दशमी रक्षा दश-विधा मता ॥ १०
अष्टम्यां च नवम्यां च पञ्चम्यां दशमी-दिने ।
चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ ११

उपाकर्म भवेदादौ ततः पवित्र-धारणम् ।
रक्षा-बन्धस्तदन्ते स्यात् क्रमात् त्रितयमाचरेत् ॥ १२
चतुर्थ्यामधि-वासो हि गणेशे परि-कीर्त्तितः ।
पञ्चम्यां धारणं कार्यं मातङ्ग्यामधि-वासनम् ॥ १३
दशम्यां धारणं कार्यं सप्तम्यामधि-वासनम् ।
अष्टम्यां पूजनं कार्यं धार्यं सौरे महेश्वरि ॥ १४
अष्टम्यामधि-वासो हि नवम्यां धारणं शिवे !
शक्तेः प्रोक्तमिदं देवि ! पाञ्च-रात्र-क्रमं शृणु ॥ १५
नवम्यामधि-वासो हि दशम्यां धारणं शिवे !
वैष्णवे चैव द्वादश्यां त्रयोदश्यां विधारणम् ॥ १६
अधि-वासश्चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां प्रपूजनम् ।
शैवे प्रोक्तमिदं देवि ! श्रीविद्यायां च पौर्णिमा ॥ १७
चान्द्रेऽपि पौर्णमास्यां च पवित्र-धारणं चरेत् ।
कुशैः काशैः सदा कार्यं पवित्रं ब्रह्म-चारिणाम् ॥ १८
वनस्थानां शण-भवं त्रसरीस-भवं च वा ।
यतीनां गैरिकाक्तं च सर्व-वर्णं गृही चरेत् ॥ १९
राज्ञां सुवर्ण-सूत्रोत्थं क्षत्रियाणां च रौप्यजम् ।
द्विजानां सूत्र-सम्भूतं क्रमेण परि-कीर्त्तितम् ॥ २०
तथैव रक्षणं देवि ! सर्वथा सममत्र च ।
अत्रार्थे देव-देवेशि ! इतिहास-त्रयं शृणु ॥ २१
पुरा श्रीकार्तिकेयाय पार्वत्या रक्षणं कृतम् ।
शच्या देवेन्द्र-वश्यार्थं जयाय वृत्र-नाशने ॥ २२
महा-विद्यादिभिः पूर्वं रक्षितो बटुकः पुरा ।
पूर्वं कृते-युगे देवि ! नहुषः क्षत्रियेश्वरः ॥ २३
उपाकर्म विधायाथ पवित्रारोपणे स्थितः ।
कृत्वा पवित्रं यत्नेन देवेन्द्र-सदनाद् गृहम् ॥ २४

तन्मार्ग-मध्ये देवेशि ! बिना रक्षां च योऽधमः ।
बुद्धेर्विपर्ययो जातो रक्षा-हीनो नराधिपः ॥ २५
रक्षा-बन्धन-मात्रेण मास-द्वादश-रक्षणम् ।
अकृते देवे-देवेशि ! मति-भ्रष्टो नरो भवेत् ॥ २६
वर्ष-मात्र-कृता रक्षा रक्षा-बन्धन-योगतः ।
अङ्कु-यन्त्रैर्महा-देवि ! बीजाङ्कैरपि पार्वति ॥ २७
अङ्कु-बीजैः पताकाद्यैः सर्वत्र रक्षणं भवेत् ।
वेद-संस्कार एवात्र चोपाकर्म प्रकीर्त्तितम् ॥ २८
गृहीत-वेद-मन्त्रस्य रक्षणं तु पवित्रकम् ।
तदधिष्ठातृ-रक्षार्थं रक्षा-बन्धनमीरितम् ॥ २९
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन रक्षा-बन्धनमाचरेत् ।
विना रक्षां महेशानि ! वर्ष-मात्रं कृता क्रिया ॥ ३०
सकला निष्फला देवि ! देवता विमुखी भवेत् ।
सर्वस्वैरपि देवेशि ! रक्षा-बन्धनमाचरेत् ॥ ३१
सर्व-रक्षा तदा देवि ! भवत्येव न संशयः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रमात् त्रितयमीरितम् ॥ ३२
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ?

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ॥ ३३

श्रीशिव उवाच—

किं तद् रहस्यं देवेशि ! तद् वदस्व प्रियम्वदे !

श्रीदेव्युवाच—

पवित्रारोपणं कर्म मदनारोपणं तथा ॥ ३४
कथ्यतां देवेश ! यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच—

आषाढ उत्तमो मासः श्रावणो मध्यमः स्मृतः ॥ ३५

हीनो भाद्र-पदो मासः पक्षौ सितसितेतरौ ।
प्रशस्तः शुक्ल-पक्षस्तु तदभावे परः स्मृतः ॥ ३६
पञ्चमी चाष्टमी चैव नवमी दशमी तिथौ ।
द्वादश्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामथापि वा ॥ ३७
पट्ट-सूत्र-विशिष्टं तु कार्पास-जनितं तथा ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य प्रक्षाल्यामल-वारिणा ॥ ३८
पश्चिमास्योक्त-मनुभिर्दक्षिणैः शोधयेत् ततः ।
मन्त्रैरथ पवित्राणि मनोरम्याणि कारयेत् ॥ ३९
अष्टोत्तर-शतं श्रेष्ठं मध्यमं तु तदर्धकम् ।
तदर्धं च कनिष्ठं स्यात् यथा-शक्त्या तु पूर्व-वत् ॥ ४०
पूर्वोक्त-तन्तु-भेदेन द्रव्य-भेदेन वा प्रिये !
कृत्वा पवित्रं यत्नेन ग्रन्थि दत्वा विधानतः ॥ ४१
उत्तरास्योदितैर्मन्त्रैर्दश-ग्रन्थींस्तु कारयेत् ।
चित्र-वैचित्र्य-संयुक्तं कुंकुमादिभिरद्रिजे ॥ ४२
पवित्र-दान-दिवसे पूर्वोक्तमधि-वासनम् ।
सद्योऽधि-वासनं वापि कुर्यात् तु परमेश्वरि ॥ ४३
रात्रौ समयिभिः साकं नित्य-पूजामनन्तरम् ।
ऊर्ध्व-सिंहासनैर्मन्त्रैः सूत्र-पातस्तु वामतः ॥ ४४
प्रार्थयित्वा स्तवेनापि रक्षां कृत्वावगुण्ठनैः ।
दन्त-काष्ठं तथा गन्धं यज्ञ-चन्दन-मृत्तिकाम् ॥ ४५
सिद्धार्थश्च तथा धात्री-फलं शृङ्गार-भूषणम् ।
नकुलमष्टसु पट्टा विज्ञेया उत्तरोत्तरम् ॥ ४६
पूर्वादि-दिक्षु क्रमतः पवित्रं सूत्र-भाजनम् ।
अश्वत्थ-पत्र-पात्रेषु प्रक्षिपेत् सिद्धि-हेतवे ॥ ४७
'हुं'-कार-सोम-स्वाहेश-ब्रह्म-नाग-शिखि-ध्वजाः ।
सूर्यः सदा-शिवः सर्वा देवताः स्युर्नवाः पराः ॥ ४८

सूत्रेषु पूजयेद् ब्रह्म-विष्ण्वीशांश्च त्रि-सूत्रके ।
कृपा च पौरुषी वाणी गायत्री चापराजिता ॥ ४९
विजया च जया देवि ! मुक्तिदा च सदा-शिवा ।
मनोन्मनी च नवमी दशमी सर्वतोमुखी ॥ ५०
ग्रन्थिस्था देवताः पूज्या उपचारैः कलात्मकैः ।
मूल-मन्त्रेण चामन्त्र्य पवित्रेषु कला यजेत् ॥ ५१
नित्याः षोडश देवेशि! श्रीविद्यां च स्मरेत् प्रिये !
अष्टौ ताराश्चाष्ट-वाणीः कला-स्थाने प्रपूजयेत् ॥ ५२
काल्यां काल्यादि-नित्याश्च पूजयेत् परमेश्वरि !
अधिवास-विधिः प्रोक्तः पश्चादाराधनं भवेत् ॥ ५३
नित्यार्चनानन्तरं तु नैमित्तिकमिदं भवेत् ।
समभ्यर्च्य पवित्राणि कन्यकाभ्यश्च भोजनम् ॥ ५४
स्व-गुरुं पूजयेत् पश्चात् वस्त्रालङ्कार-गो-धनैः ।
यथा-शक्त्या नमस्कृत्य देवी-रूपेण चिन्तयेत् ॥ ५५
आरोपयेत् पवित्रं च वित्त-शाठ्य-विवर्जितः ।
गुरुं सम्पूजयेत् तत्र तत्तत्-कर्म-फलावहम् ॥ ५६
स चेन्न पूज्यते यत्र क्रिया सा निष्फला सदा ।
गुरोरभावे तत्-पुत्रं पुत्राभावे तदङ्गनाम् ॥ ५७
तदभावे च तत्-पौत्रं दौहित्रं तदसम्भवे ।
सर्वाभावेऽर्चयेदन्यं गुरोर्गोत्र-समुद्भवम् ॥ ५८
पूजयेद् दीक्षितं यत्र तत्रैताः सफलाः क्रियाः ।
न पूज्यते निष्फलास्ता भवन्ति परमेश्वरि ॥ ५९
हुत्वा पूर्णाहुतिं पश्चादग्निं दध्वा पवित्रकम् ।
चक्रमभ्यर्च्य सिद्धाग्रे पूजयेत् तन्निवेदयेत् ॥ ६०
न करोत्यर्चनं ह्यग्नौ तस्य धर्मो विनिष्फलः ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ६१

ऊन-विंशः पटलः

उपाकर्म-पवित्रारोपण-रक्षा-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि इतिहासं पुरातनम् ।

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम् ॥ १
भक्ति-श्रद्धा-परायास्ते नाकथ्यं विद्यते मम ।
न चाख्येयं त्वयान्यत्र प्राणेषु विगतेष्वपि ॥ २
रहस्यमेतद् देवानां सर्व-सिद्धिमभीप्सिताम् ।
न च विद्या-मयो योगो न विधानं न चार्चनम् ॥ ३
नान्यः प्रयोगो न जपो न होमो न च पूजनम् ।
वक्ष्यमाण-रहस्यस्य सहस्रांशं न चार्हति ॥ ४
सिद्धिमीयुः पुरैस्तस्याः प्रसादात् पार्थिवर्षयः ।
पौरवो बृहदश्वश्च सोमदत्तो वृहद्रथः ॥ ५
अजमीढः कार्त्तवीर्यो भद्रसेनः पुरूरवाः ।
पृथुग्रीवो रन्तिदेवो मान्धाता नहुषो रघुः ॥ ६
विदूरथश्च भरतो दिवोदासः प्रतर्दनः ।
कृशाश्वो जमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः ॥ ७
पैठीनसिर्वीति-हव्यः कश्यपो भृगुरङ्गिराः ।
सम्वर्त्तश्च वसिष्ठोऽत्रिर्व्यासः शातातपस्तथा ॥ ८
उद्दालको भरद्वाजो जाबालो जैमिनिस्तथा ।
सप्त-द्वीपेश्वरत्वं च चक्र-वर्तित्वमेव च ॥ ९
प्रापुः पूर्व-महीपालाश्चिर-जीवित्वमप्यलम् ।
योग-सिद्धिं तथान्येऽपि तपस्यां सर्व-साधिकाम् ॥ १०
शापानुग्रह-सामर्थ्यं प्राप्त-वन्तो महर्षयः ।
त्रैलोक्याधि-पतित्वं च यत्-प्रसादात् करे स्थितं ॥ ११

तारक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली तथैव च ।
एते ह्यासन् कृत-युगे दैतेया भ्रातरस्त्रयः ॥ १२
तेऽतप्यन्त तपो घोरं दिव्यं वर्षायुतं प्रिये !
ततः प्रजा-पतिस्तेभ्यो वरं सम्प्रार्थितं ददौ ॥ १३
चतुर्वर-द्वयं दैत्याः सौन्दर्य-मद-गर्विताः ।
एकस्तेषामवध्यत्वं सर्व-भूतेभ्य उत्थितम् ॥ १४
द्वितीयं योजनानां हि त्रि-त्रि-लक्षान्तर-स्थितम् ।
त्रयाणां त्रि-पुरं भूमौ न लङ्घ्यं दैवतैरपि ॥ १५
वरं दत्वा च तद्-धाता सर्वं शृणुत पुत्रकाः ।
सर्व-प्रकारैः कस्यापि नावध्यत्वं जगत्-त्रये ॥ १६
एकेनापि प्रकारेण घट-मानेन सर्वथा ।
सर्वे स्वकीयं निधनमङ्गी-कुरुत दानवाः ॥ १७
ते विधार्यावदन् सर्वे शरेणैकेन यत्-क्षणात् ।
दहेत् त्रयाणां त्रि-पुरं स नो मृत्युर्भविष्यति ॥ १८
तथेत्युक्त्वा ययौ वेधा ब्रह्म-लोकं सुरैर्युतम् ।
तेऽपि सर्वे तथा चक्रुर्यथा पूर्वं विचारितम् ॥ १९
तारक्षस्य तु सौवर्णं पुरं सर्वोपरि स्थितम् ।
योजनायुत-विस्तीर्णं तावदेवायतं प्रिये ॥ २०
राजतं कमलाक्षस्य योजनायुत-विस्तृतम् ।
दश-साहस्र-विस्तीर्णं विद्युन्मालिन आयसम् ॥ २१
त्रि-त्रि-लक्षोत्तरं तेषां पुरं गगन-सीमनि ।
प्राकार-परिखोपेतं तथाट्टालक-शोभितम् ॥ २२
ध्वज-गोपुर-निःश्रेणि-पताका-यन्त्र-शोभितम् ।
खड्ग-पाशांकुशारिष्ट-गदा-कार्मुक-धारिभिः ॥ २३
पाश-शूल-भुशुण्डचष्ट्रा-चक्र-मुद्गर-शोभिभिः ।
त्रिंशन्निखर्व-षट्-वृन्द-नवत्यर्बुद-कोटिभिः ॥ २४

एकैकं पुरमाक्रान्तं दानवैर्युद्ध-दुर्मदैः ।
दृष्ट्वा तु तादृशीमृद्धिं देवाः सर्वे स-वासवाः ॥ २५
पलायां चक्रिरे केचित् केचिच्च शापितं ययुः ।
केचिच्च युयुधुर्देवास्तत्यजुस्त्रि-दिवं परे ॥ २६
केचित् समुद्रं प्रविशुः केचिच्च गिरि-कन्दरम् ।
जह्नुः केचिद् भिया प्राणान् ययुः केचिच्चतुर्दिशं ॥ २७
दृष्ट्वा सुराणामधिपो देवानामीदृशीं दशाम् ।
रुद्रं जगाम शरणं पुरोधाय प्रजा-पतिम् ॥ २८
दण्ड-वत् प्रणता भूत्वा ते देवाः स-पितामहाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा पिनाकिनमुमा-पतिम् ॥ २९
तपस्यया वरं धातुः सम्प्राप्य त्रिपुरासुराः ।
बाधन्तेऽस्मान् महेशान ! शैल-गह्वरगानपि ॥ ३०
त्वत्तः शरण्यो नास्माकं विद्यते देव ! कश्चन ।
अतो निवेदयामस्ते प्रमथाधिपते ! प्रभो ॥ ३१
देवाङ्गनाः समाहृत्य नयन्ति स्व-पुरं प्रति ।
निरध्वरं जगज्जातं निष्कल्पतरु नन्दनम् ॥ ३२
निर्मनुष्या मही सर्वा निर्देवाप्यमरावती ।
निस्तोया निम्नगा जाता नी-रत्नाः सप्त-सागराः ॥ ३३
पादपानां कोटरेषु कन्धरेषु महीभृताम् ।
लीना भूत्वा वयं सर्वे तिष्ठामस्तद्-भयार्दिताः ॥ ३४
तेषां हि शास्ता त्रैलोक्ये त्वदन्यो नास्ति कश्चन ।
तान् निहत्यासुरान् स्वर्गे पुनरस्मान् निवेशय ॥ ३५
इत्युक्तः प्रणतैः सर्वैर्विहस्य वृषभ-ध्वजः ।
प्रत्युवाच सुरान् सर्वान् रथो मे कल्प्यतामिति ॥ ३६
ततो ब्रह्माऽब्रवीत् स्मितं कुर्वन् महेश्वरम् ।
निर्मातव्यो रथो देव ! कस्त्वदारोहण-क्षमः ॥ ३७

तद्-वोढुं रथ-निर्माणे सामर्थ्यं नैव विद्यते ।
स्व-योग्यं स्यन्दनं चास्त्रं कवचं चोटिकामपि ॥ ३८
त्वमेव कल्पयस्वाद्य बुद्धिः कस्यास्ति शङ्कर !
इत्युक्तो ब्रह्मणा शम्भुरवदत् हर्षयन् सुरान् ॥ ३९
चत्वारो वाजिनो वेदास्ते चोपाकर्मणा तपः ।
वेदाः क्रिया-वतां यान्ति शङ्खासुर-विमर्दिताः ॥ ४०
ताराक्षस्य तपस्तेन चोपाकर्म-प्रभावतः ।
क्षीणं भवति भो ब्रह्मन् ! कामलाक्षं पवित्रतः ॥ ४१
वर्ष-मात्रं कृता शान्तिः पवित्रमृषिभिः स्मृतम् ।
कमलाक्ष-तपः क्षीणं पवित्रेण प्रजायते ॥ ४२
सर्व-स्वस्त्ययनं नाम पवित्रारोपणं मतम् ।
चत्वारो वाजिनो वेदाः सम्पूर्णा मेदिनी रथः ॥ ४३
सूर्या-चन्द्रमसौ चक्रे कूबरो गन्ध-मादनः ।
विन्ध्यो गिरिर्नाभिरस्तु कैलासोऽक्षत्वमेव च ॥ ४४
मेरुर्मे ध्वज-दण्डं स्यात् सारथिर्भगवान् विधिः ।
प्रणवस्तु प्रतोदः स्यात् पुराणानि च रश्मयः ॥ ४५
धनुर्मे मन्दरो भूयाच्छिञ्जिनी वासुकिर्भवेत् ।
विष्णुः शरो मे भवतु बाह्वोर्वायुर्विशन्त्वपि ॥ ४६
यमो मृत्युश्च कालश्च फणा-मध्ये विशन्तु च ।
वासवः शर-पृष्ठे स्यात् कुबेर-वरुणावुभौ ॥ ४७
भवतः पुङ्ख-संस्थाने मस्तके सर्व-देवताः ।
नासत्यौ वटिनी-संस्थौ यज्ञाः सर्वे पदातयः ॥ ४८
अष्टाङ्गे दश-विद्याश्च शत-स्थाने शतास्त्रकम् ।
षड्-त्रिंशदंगुलो वंशो मनु-बन्धन-संयुतः ॥ ४९
मन्वंगुलादित्य-रूपाः शरा मैनाक-गोचराः ।
पिनाक-चाप-लक्षं च वेत्ति काली सदा-शिवम् ॥ ५०

स्वेच्छयान्यच्च सरलं कल्पयामास शङ्करः ।
अस्त्रं च कवचं षोढां लब्ध्वा रक्षां विना शिवः ॥ ५१
स्व-योग्यं रक्षणं शम्भुरलब्ध्वा चिन्तितो भवेत् ।
निमील्य त्रीणि नेत्राणि चिरं तस्थौ जगत्-पतिः ॥ ५२
अथ ध्यान-वतो भूत्वा तुष्टाव विश्व-तारिणीम् ।
स्तुत्वा सम्प्रार्थयामास रक्षां दश-विधां पराम् ॥ ५३
ततः सापि दिदेशास्मै रक्षां दश-विधां पराम् ।
दश-विद्या-मयी रक्षा त्रैलोक्य-विजयाभिधा ॥ ५४
वेद-सन्दीपनाद् ब्रह्मन् ! दीपकास्त्रं प्रकीर्त्तितम् ।
चतुरशीति-भेदानां राज्ञी विद्या परात्परा ॥ ५५
इत्याम्नायैर्नव-विधैर्युक्ता ब्रह्माण्ड-भेदिनी ।
स्तम्भनास्त्राभिधा स्वर्गे त्रैलोक्य-विजया भुवि ॥ ५६
आकर्षणास्त्रा पाताले त्रिपुरासुर-घातिनी ।
काली-मुखाभिधा वैरि-जने वादि-जने तथा ॥ ५७
तारा-मुखाभिधा प्रोक्ता छिन्ना-रूपा तु सर्वतः ।
त्रि-शक्ति-विद्या-रूपा तु त्रैलोक्य-विजयाभिधा ॥ ५८
त्रयाणां नाशनार्थं च त्रि-शक्ति-रक्षणं परम् ।
प्राप्तो जगाम सन्तुष्टः शङ्करस्त्रिपुरं प्रति ॥ ५९
अस्त्रं पाशुपतं चापि सन्धाय वृषभ-ध्वजः ।
पुराणि त्रीणि दैत्यानां बिभेदैकेन पत्रिणा ॥ ६०
क्षणेन भस्मसाद् भूत्वा जग्मुर्दैत्या यमालयम् ।
ततः प्रभृति श्रीदेवि ! रक्षा रक्षेति विश्रुता ॥ ६१
लोकोत्तराभिधा रक्षा मत्-स्मृत्या प्रभविष्यति ।
इति वृत्तं पुरा-वृत्तं तेन रक्षा प्रकीर्तिता ॥ ६२
विद्याभि-मन्त्रितं सूत्रं यस्तु धारयते नरः ।
रक्षा भवति सर्वेषां दुष्टानां विप्र-कारिणाम् ॥ ६३

महा-विषं महा-भूत-पूतना-राक्षसादयः ।
दैत्याश्च दानवाः क्रूरा नश्यन्ति क्षण-मात्रतः ॥ ६४
इयमेव पुरा रक्षा बटुकाय प्रकाशिता ।
महा-विद्यादि-दशकैर्बध्वा बटुक-भैरवे ॥ ६५
यन्त्रं पताकां सूत्रं च मन्त्र-वर्ण-विदर्भितम् ।
सर्वथा बन्धयेद् देवि ! रक्षा सर्व-कृता भवेत् ॥ ६६
श्रावणे मासि सम्वृत्तं वृत्तमेतत् पुरा शिवे !
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ६७

विंशः पटलः

मदनारोपणम्

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि मदनारोपण-क्रियाम् ।

श्रीशिव उवाच—

पवित्रारोपणं यद्-वत्तद्-वन्मदन-पूजनम् ॥ १
चैत्रादयस्त्रयो मासः पक्षौ सित-सितेतरौ ।
एतेषां पूर्व-पूर्वस्तु कालः सर्वोत्तमो भवेत् ॥ २
अष्टम्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामथापि वा ।
पूर्व-रात्रौ प्रकुर्वीत सद्यो वासाधि-वासनम् ॥ ३
आमन्त्र्य मदनं वेद्यां चतुः-कल्प-लतादिभिः ।
'काम-नेत्र-समद्भूत रति-नेत्र-जलाप्लुत ॥ ४
ऋषि-गन्धर्व-सिद्धानां विमोहक ! नमोऽस्तु ते ।
शिव-प्रसाद-सम्भूत ! अत्र सन्निहितो भव ॥ ५
शिवाकार्यं समुच्छिद्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया ।'
इत्यामन्त्र्य रति-कामौ तत्र सम्पूजयेत् सुधीः ॥ ६
स्वयमुत्पाटय मदनं स-मूलं पल्लवैर्युतम् ।
आनीतं ह्यथवान्येन मौल्यादानीतमीश्वरीम् ॥ ७
वामेन स्थापयेद् देवि ! सर्वतोभद्रकाम्बुजे ।
वस्वारे मदनं पात्रे स्थापयेत् पूजयेत् पुनः ॥ ८
प्रणवं भुवनेशानि ! रतये नम इत्यपि ।
रति-मन्त्रो महेशानि ! काम-मन्त्रस्तु कथ्यते ॥ ९
प्रणवं काम-बीजं च कामाय नम इत्यपि ।
मन्त्राभ्यां पूजयेत् तत्र मदनं कर्णिका-गतम् ॥ १०
ततस्तत्-पद्म-पूर्वादि-दलेषु पुटिकां न्यसेत् ।
अष्टस्वष्टाष्टभिर्मन्त्रैरष्ट-द्रव्य-युतां क्रमात् ॥ ११

कामो भस्म-शरीरश्च तथानङ्गश्च मन्मथः ।
वसन्त-सख-नामा च स्मर इक्षु-धनुर्धरः ॥ १२
पुष्प-बाणस्तु ताराद्यास्तुङ्ग-दन्ताः प्रकीर्त्तिताः ।
कर्पूरं रोचना-युग्मं कस्तूरीं च ततः प्रिये ॥ १३
अगुरुं कुंकुमं धात्री-फलं चन्दनमेव च ।
पुष्पैः सुगन्धिभिः कुर्यादष्ट-द्रव्याणि पार्वति ॥ १४
सम्पूज्य मदनं सम्यग् गन्ध-पुष्पाक्षतादिभिः ।
जपेदनङ्ग-गायत्रीं यथा-शक्त्या प्रसन्न-धीः ॥ १५
काम-देवाय इत्युक्त्वा विद्महेति वदेत् ततः ।
भवेदनङ्ग-गायत्री तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ॥ १६
नमोऽस्तु पुष्प-बाणाय जगदानन्द-कारिणे ।
मन्मथाय जगन्नेत्र-रति-प्रीति-प्रियाय च ॥ १७
अनेन मनुना देवि ! नमस्कुर्यात् ततः परम् ।
अथ विज्ञापनं कुर्यात् दिव्यैर्मदन-पाणि-युक् ॥ १८
आमन्त्रितासि देवेशि ! सद्यः काले मया शिवे !
कर्त्तव्यं तु यथा-लाभं पूर्व-पूर्वं तवाज्ञया ॥ १९
विज्ञापनाख्य-मन्त्रेण त्रि-शक्तिं परि-तोषयेत् ।
ततः सम्पूज्य देवेशि ! गन्ध-पुष्पाक्षतादिभिः ॥ २०
षोडशार्णं - जगन्मातर्वाञ्छितार्थ - फल - प्रदे !
कृत्यान् पूरय मे देवि ! कामान् कामेश्वरेश्वरि ॥ २१
अनेन प्रार्थयेद् देवि ! पश्चान्मदनमीश्वरि !
वर्मावगुण्ठनं कुर्यादस्त्रेणापि तु रक्षितम् ॥ २२
ततो जागरणं कुर्यात् सद्यश्चेत् जागरो न हि ।
अथ प्रातः समुत्थाय कुर्याच्च नित्य-पूजनम् ॥ २३
ततो नैमित्तिकं कुर्यान्मदनस्य प्रपूजनम् ।
तेनैव महतीं पूजां मध्यमं पुष्पमीरितम् ॥ २४

मनोहरं च विधि-वत् कृत्वा नैवेद्यमुत्तमम् ।
स-कर्पूरं च ताम्बूलं दद्यात् सम्प्रार्थयेत् ततः ॥ २५
'समस्त-चक्र-चक्रेशि ! सर्व-विद्या-शरीरिणि !
देव-मातर्ममैतत् तु भवत्विष्टं तवाज्ञया' ॥ २६
ततः स्व-गुरुमभ्यर्च्य पुष्प-धूपाम्बरादिभिः ।
दत्वा मदनकं तस्मै नमस्कृत्य प्रसाद्य च ॥ २७
जल-केलिं ततः कुर्यात् सार्धं समयिभिः सुखम् ।
अन्न-दानं प्रकुर्वीत सुहृत्-सङ्घ-समन्वितः ॥ २८
एवं यः कुरुते विद्वान् मदनारोपण-क्रमम् ।
तस्य साम्वत्सरी पूजा त्रि-शक्ति-प्रीतिदा भवेत् ॥ २९
इति संक्षेपतः प्रोक्तमितिहासं विशेषतः ।
सामान्यं च प्रवक्ष्यामि येन सिद्धिं प्रविन्दति ॥ ३०
तपो-भङ्गाय मदनो मम शैल-भवे ! यदा ।
भस्मीभूतस्तदा देवि ! रति-प्रीती सु-दुःखिते ॥ ३१
तन्नेत्र-वारि-सम्भूता मदनस्य लता शिवे !
तत्-सौरभं च सौभाग्यं महदासीत् सुलोचने ॥ ३२
तेन सन्तुष्टो हृदयाद् वरो दत्तो मया प्रिये !
रत्यै प्रीत्यै च तस्मात् तु मदनः प्रकटीकृतः ॥ ३३
मदनेन च यो मन्त्री वर्षमर्धेन पूजयेत् ।
तस्य साम्वत्सरी पूजा मदनाय भविष्यति ॥ ३४
इति तस्मै वरो दत्तो मयैव सुर-वन्दिते ।
अन्यथा तत् फलं सर्वं कृतं कामाय जायते ॥ ३५
तस्मान्मदन-पूजादि कर्तव्यं वीर-वन्दिते !
स्व-मूलं मदनं गृह्य स्थापयेत् पात्रकेऽम्बुजे ॥ ३६
मदनं नवधा कृत्वा पूजयेत् तदनन्तरम् ।
आनन्द-स्वर-बीजेन नवधा विन्दुना सह ॥ ३७

नव-प्रकार-रत्नाद्यैर्मदनं पूजयेत् क्रमात् ।
अघोर-विद्यया पश्चात् अभिषिञ्चेत् तमेव हि ॥ ३८
पूर्वोक्तं वा दक्षिणस्यां दिशि सिंहासनस्थया ।
अस्त्रेण रक्षणं कुर्यात् कवचेनावगुण्ठनम् ॥ ३९
बद्ध-त्रिशूल-मुद्रां च भ्रामयेन्मदनोपरि ।
चैत्रे मासि चतुर्दश्यां मदनारोपणं भवेत् ॥ ४०
ऊर्ध्व-वक्त्रास्त्र-मन्त्रेण हृदयेन प्रपूजयेत् ।
श्रीखण्ड-मूल-देशेषु ह्यधि-वासं च कारयेत् ॥ ४१
प्रथमे दिवसे कुर्यादधि-वासनमुत्तमम् ।
सद्योऽधि-वासनं वापि वर्ष-पूजा-फलाप्तये ॥ ४२
प्रातः-काले चतुर्दश्यां नित्यार्चनं चरेत् ततः ।
नव-कोणं विरच्याथ सिन्दूरेण महा-प्रभम् ॥ ४३
पात्राणि नव संस्कार्य हेम-रौप्यादि-पूरितम् ।
एकं वा कलशं रम्यं स्थापयेद् देशिकोत्तमः ॥ ४४
दक्षतो मण्डलं कृत्वा कुंकुमाद्यैर्विचित्रितम् ।
अशोक-तरुमालिख्य त्रिकोणं मण्डलं लिखेत् ॥ ४५
तन्मध्ये पूजयेत् कामं वरुणं वारुण-प्रभम् ।
रक्त-वस्त्रं रक्त-भूषं वाम-दक्षिणयोः प्रिये ॥ ४६
रति-प्रीति-विशोभाढ्यं पञ्च-बाण-धनुर्धरम् ।
वसन्त-सहितं कामं पूजयेत् सर्व-सिद्धये ॥ ४७
वाग्भवं भुवनेशानि ! श्रियं कामात्मकेन च ।
कामाय नमः उद्धृत्य नवार्णं वर-वर्णिनी ॥ ४८
काम-बीज-त्रयं प्रोक्तं पूर्वमात्मकमालिखेत् ।
रत्यै नमश्चाष्ट-वर्णो रति-मन्त्रो वरानने ॥ ४९
प्रीतिं वदेत् रति-स्थाने प्रीति-मन्त्रोऽष्ट-वर्णकः ।
गौर-श्याम-रति-प्रीती भ्रामणे माल-भूषणे ॥ ५०

पद्म-ताम्बूल-वर्णे च रक्त-वस्त्र-विराजिते ।
वाम-दक्षिणयोर्ध्यात्वा कामस्य हृदयान्तरम् ॥ ५१
वसन्तं पूजयेत् पश्चात् कदम्ब-वन-मध्यगम् ।
गौर-वर्णं वाम-हस्ते सुधा-पूर्ण-घटान्वितम् ॥ ५२
दक्ष-हस्तेन दधतं नाना-पुष्प-समुच्चयम् ।
साङ्गं कामं प्रपूज्याथ धूप-दीपादि दर्शयेत् ॥ ५३
सम्यक् प्रपूज्य देवेशि ! सर्व-देव-शरीरिणम् ।
क्रमं समर्चयेत् सम्यक् कुमारीं भोजयेत् ततः ॥ ५४
सुवासिनीं च सम्पूज्य योगिनी-गणमर्चयेत् ।
ब्राह्मणाः परितः पूज्या नाना-दर्शन-मानवाः ॥ ५५
तदङ्ग-हवनं पश्चात् गुरुं रत्नादि-भूषणैः ।
स्वर्ण-भार-सहस्रैस्तु दिव्य-वस्त्रैर्मनोरमैः ॥ ५६
पूजयित्वा ततो देवि ! मदनारोपणं मतम् ।
तस्य साम्वत्सरी पूजा सफला शैल-कन्यके ॥ ५७
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ?

एक-विंशः पटलः

काम-धेन्वादि-योगः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यमपरं वरम् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यमपि देवेशि ! समय-क्रम-योगतः ॥ १
समयं सम्प्रवक्ष्यामि तन्त्र-लेखन-भेदतः ।
षट्-गुरोः स्वामिनः पञ्च भ्रातृ-वर्ज्य-त्रयं भवेत् ॥ २
एवं क्रमेण सम्प्रोक्तमेकैकं पुत्र-भार्ययोः ।
सप्त-देवे महेशानि ! द्वे पुत्रे द्वि-गुणं रिपौ ॥ ३
फलान्यपि महेशानि ! यथा-योगेन वै शृणु ।
गुरौ सप्त-पञ्च-वर्ज्यं शत्रूणां द्वितयं भवेत् ॥ ४
वेद-संख्यां महच्छत्रौ एकैकं पुत्र-भार्ययोः ।
नव-नाथे महेशानि ! यथा-योगेन कारयेत् ॥ ५
ताम्बूल-समयं तत्र शृणु देवि ! यथा-क्रमम् ।
शत-पर्णानि देवेशि ! चक्रवर्त्ति-वराय च ॥ ६
गुरुभ्यः सम्प्रदातव्या द्वा-त्रिंशत् पर्ण-वीटिका ।
अष्टा-विंशति भूपेभ्यो बान्धवेभ्यो दशाष्टकम् ॥ ७
जामात्रे पक्ष-पर्णानि वसु द्वादश वा प्रिये !
पञ्च-विंशति शक्तिभ्यः पुत्रेभ्यस्तत्व-संख्यकान् ॥ ८
षट् पर्णानि च शत्रुभ्यस्तुरीयं दानमुत्तमम् ।
पर्ण-त्रयं शत्रु-पक्षे दश-पर्णारि-वश्ययोः ॥ ९
वीरेभ्यः षोडश शिवे ! दिव्यौघे वसु-पीठ-युक् ।
तदर्धं चैव सिद्धौघे मानवौघे तदर्धकम् ॥ १०
भृत्येभ्यः सप्त पर्णानि कन्यायै पञ्च-विंशतिः ।
चन्द्र-युक्तं महेशानि ! पौत्रेभ्यो दश पञ्च च ॥ ११

स्नुषायै त्रिंशति शिवे ! दास्यै चैव चतुर्दश ।
अन्येभ्यः परमेशानि ! विंशत्-पर्णानि दापयेत् ॥ १२
अग्र-दानं च शत्रुभ्यो वक्त्रं दानं सुमित्रके ।
तिर्यग्-दानं सेवकादौ यथा-योगेन योजयेत् ॥ १३
इति संक्षेपतः प्रोक्तं सिद्धि-योगं शृणु प्रिये !
पत्नी पुत्री तथा दासी दासश्चैव चतुर्थकः ॥ १४
परि-वेत्ता पारि-वेत्ता षट् ताम्बूल-प्रदायकाः ।
म्लेच्छ-हस्ताच्छत्रु-हस्ताच्छङ्कितस्य तथैव च ॥ १५
अथ वैदग्ध-हस्तस्य ताम्बूलो हि निषिध्यते ।
आद्य-पाकोऽभि-योक्तव्यो द्वितीयस्त्वन्यता मता ॥ १६
तृतीयो गृह्यतां यत्नात् त्रितयं त्रितयं त्रिषु ।
पत्रं फलं खादिरं च चूर्णं चैव चतुर्थकम् ॥ १७
पञ्चमं तु मुखं प्रोक्तं रागः षष्ठ उदाहृतः ।
षडङ्गमिति सम्प्रोक्तं षडैश्वर्य-प्रदायकम् ॥ १८
षडैश्वर्यं यत्र वसेत् तत्र लक्ष्मीर्निरन्तरम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ १९

श्रीदेव्युवाच—

नाग-वल्ली कथं जाता समुत्पन्ना कथं वद ।

श्रीशिव उवाच—

जनमेजय-यज्ञान्ते नागानामष्टकं शिवे ॥ २०
कृत्वा तु भस्म-साद् देवि! शापं दत्वा सुदारुणम् ।
सिस-वृक्ष-फलं भुक्त्वा नाग-निर्मूलनं कृतम् ॥ २१
तदुद्धारार्थमुद्युक्तः शिवोऽहं भैरवः स्वयम् ।
दूती-यागः कृतस्तेन तद्-गता घर्म-सम्भवाः ॥ २२
बिन्दवः पतिता यत्र यद्-देशे भस्म-सञ्चयः ।
भस्म सम्प्लावितं नीरैस्तच्चैक्यं समजायत ॥ २३

नाग-वल्ली-लता नाम तत्र जाताति-सुन्दरी ।
मागधे हिम-वाहे च बङ्गाले च कलिङ्गके ॥ २४
कर्नाटके च सौराष्ट्रे चौल-मालव-देशके ।
मध्य-देशे केरले च समुद्रस्य तटे तथा ॥ २५
नाना-देशे समुत्पन्ना नाना-गुण-समुद्भवा ।
स्थूल-सूक्ष्म-प्रभेदेन ज्ञातव्याः पर्ण-जातयः ॥ २६
ताम्बूलेन महा-देवि ! मन्त्र-सिद्धिमवाप्नुयात् ।
ताम्बूल-शपथं नैव कर्त्तव्यं शुभमिच्छता ॥ २७
ताम्बूलेन विना देवि ! यो मन्त्रं दशधा जपेत् ।
इह क्षोभमवाप्नोति परत्र नरकं व्रजेत् ॥ २८
ताम्बूलेन विना देवि ! दीक्षाद्या निष्फला मताः ।
ताम्बूलोऽपि व्रतस्थानां यतीनां ब्रह्म-चारिणाम् ॥ २९
न मया कथितो देवि ! किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ?
एकाकी सम्विदानन्दी मुक्त-केशी दिगम्बरः ॥ ३०
शय्यास्थो वा श्मशानस्थः केवलं तिमिरालये ।
लतां पश्यन् जपेद् रात्रौ सैव कल्प-लता भवेत् ॥ ३१
बालामानीय कौमारीं चञ्चलां चारु-लोचनाम् ।
सम्पूज्य प्रजपेद् रात्रौ एकाकी दीप-वर्जितः ॥ ३२
रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्प-लता भवेत् ।
अर्ध-रात्रौ महेशानि ! मङ्गले वासरे निशि ॥ ३३
सम्पूज्य बालां यत्नेन सैव कल्प-लता भवेत् ।
दीपं प्रज्वाल्य परितो मध्ये यन्त्रं प्रपूजयेत् ॥ ३४
दीपावल्यां चरेन्नेवं सैव कल्प-लता भवेत् ।
शक्तिमाहूय तद्-गात्रे विन्यस्य न्यास-जालकम् ॥ ३५
स्पृष्ट्वा तां प्रजपेद् रात्रौ सैव कल्प-लता भवेत् ।
प्रसून-तूलिका-मध्ये शक्तिं स्थाप्य विधानतः ॥ ३६

शक्तिं संचुम्ब्य प्रजपेत् सैव कल्प-लता भवेत् ।
बालामानीय देवेशि ! यथोक्तां शुभ-लक्षणाम् ॥ ३७
तामालिंग्य जपेद् रात्रौ सैव कल्प-लता भवेत् ।
पर्वते विपिने गत्वा शक्तिमाहूय पार्वति ॥ ३८
तां सन्तोष्य समालिंग्य जपेद् रात्रौ निरन्तरम् ।
सैव भूयात् काम-धेनुः सर्व-सिद्धेश्वरो भवेत् ॥ ३९
गाने कर्णं ततो दत्वा लक्षं जप्यान्निशाकरे ।
बालामानीय देवेशि ! दिवा जप्याद् दिवाकरः ॥ ४०
तद्-योनि-रूपं यन्त्रं च स-बीजं यन्त्रमीरितम् ।
तत्र नाडी-त्रयं वीक्ष्य विद्या-यन्त्रं विभाव्य च ॥ ४१
सम्पूज्य तल्लिहेद् देवि! साक्षात् कालो-समो भवेत् ।
विद्या-मात्रे कार्यमेतत् सर्व-सिद्धयर्थमम्बिके ॥ ४२
एतत्-क्रम-रतो देवि ! मम रूपो न संशयः ।
बालां शक्तिं समानीय सुन्दरीं शुभ-लक्षणाम् ॥ ४३
न्यासान् विधाय तद्-देहे ततः सावृति-देवताम् ।
मूल-देवीं च सम्पूज्य सौगन्ध-तैल-योगतः ॥ ४४
तस्याः पादौ च प्रक्षाल्य मस्तके तैल-लेपनम् ।
ततः केशैस्तत्-पदानां मार्जनं प्रोक्षणं चरेत् ॥ ४५
मूलं जपेत् ततो देवि ! त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ।
जलेन पादौ प्रक्षाल्य स्नानं तज्जलतश्चरेत् ॥ ४६
त्रैलोक्य-विजयी भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
तस्या मुखं समालोक्य जप्त्वा त्रैलोक्य-नायकः ॥ ४७
तस्या हस्ते करं दत्वा जपात् त्रैलोक्य-सिद्धि-भाक् ।
तिथि-सिद्धिर्जाप-सिद्धिः पीठ-सिद्धिश्च षट् शिवे ॥ ४८
स्थिति-सिद्धिस्तथा द्रव्य-प्राप्ति-सिद्धयादिकं भवेत् ।
आद्यं यामं षट्-घटिकां त्यक्त्वान्त्यं पूर्व-संख्यकम् ॥ ४९

नाडी-चतुष्टये देवि ! नाडी-युग्मेऽपि मध्यके ।
काम-धेनु-समायोगो ब्रह्माण्डे सिद्धि-दायकः ॥ ५०
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ५१

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि योगं चिन्ता-मणि-प्रभम् ।

श्रीशिव उवाच—

चिन्ता-मणिं स्पर्श-मणिं द्वयं शृणु महेश्वरि ॥ ५२
बालामानीय चार्वङ्गीं संशोध्य न्यास-जालतः ।
उच्च-पीठे तु संस्थाप्य योनिं मुख-गतां चरेत् ॥ ५३
मुखेन चोष्य सञ्जप्य प्रविकाश्य प्रयत्नतः ।
तत्रत्यं विलिहन् देवि ! जपश्चिन्ता-मणिर्भवेत् ॥ ५४
बालामानीय चपलां मैथुनानन्द-मानसाम् ।
योनौ चक्रं स्व-लिङ्गं तु सङ्कोच-द्रव्य-लेपतः ॥ ५५
लिखित्वा विपरीतां तां जपं कुर्यादधः शिवे !
योनिं सर्वान्ते स्व-मुखे पूर्व-वत् क्रममाचरेत् ॥ ५६
तद्-योनि-लिहनादेव मुखादुच्चार्यते च यत् ।
तदेव सत्यं भवति प्रोक्तः स्पर्शः किमिच्छसि ॥ ५७

॥ इति श्री शक्ति-सङ्गम-महा-तन्त्रराजे उत्तर-खण्डे
प्रथम-खण्डे एक-विंशति-पटले काली-खण्डः सम्पूर्णः ॥